

इंदुसंचेतना



हिंदी साहित्य की त्रैमासिक सृजन परिक्रमा

वर्ष-2 , अंक-4, जून-जुलाई 2016

इंदुसंचेतना

हिंदी साहित्य की त्रैमासिक सृजन परिक्रमा



इंदुसंचेतना

हिंदी साहित्य की त्रैमासिक सृजन परिक्रमा

वर्ष-2 , अंक-4, जुलाई-सितंबर 2016

संपर्क - हिंदी विभाग, क्वान्ग्तोंग वैदेशिक अध्ययन विश्वविद्यालय,पाय यून ताताओ पेई, क्वान्ग्चौ, 510420, चीन

संपर्क (भारत) - 9/48, साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग, महमूदाबाद(अवध), सीतापुर, 261203, उत्तर प्रदेश, भारत

ईमेल- dr.gunshekhar@gmail.com, gpsharma@gdufs.edu.cn,
संवेदन-sparsh@gmail.com
दूरभाष संख्या - +86-2036204385, +91-9454112975

अंक में|||

सम्पादकीय

श्रद्धांजलि

आलेख

कविता

गजल

कहानी

शोध

रिपोर्ताज/ व्यंग्य/ लघुकथा/ ग़ज़ल

लीक से हटकर

संपादक की कलम से...



हिंदी सेवा की ज़ादूगरी और तिलिस्म

अपने देश जाता हूँ तो ज़गह-ज़गह भाषा के ज़ादूगर तमाशा दिखाते हुए मिल जाते हैं। बड़े-बड़े संस्थानों और विश्विद्यालयों के भव्य मंचों से लेकर तहसील/कचहरी/कलेक्टरी कहाँ-कहाँ इनका ज़ादू नहीं पसरा है। जहाँ छोटे-मोटे ज़ादूगर लाल रंग लगाकर गर्दन काटने की शैली में दर्शकों को विश्वास दिलाते हैं कि इनसे बड़ा हिंदी सेवक कोई नहीं है, वहीं बड़े-बड़े ज़ादूगर हिंदी के सामने दूसरी भाषाओं के जहाज डुबाते हुए दिखाते हैं। दर्शक गद्गद् होकर तालियां पीटते-पीटते हथेलियां लाल कर लेते हैं। इनके लिए द्वार पर भी सेवक और पहरेदार लट्ठ लिए खड़े मिलते हैं । बाहर निकलते समय हाथ देखे जाते हैं । किसके हाथ कितने घायल हैं इसके हिसाब उन्हें भाषा-भक्ति का प्रमाणपत्र मिलता है। इसलिए जो ज़्यादा तालियां नहीं पीट पाते हैं उन्हें इनसे बच-बचा के निकलना पड़ता है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो पकड़ में आने पर हाथ नहीं कुछ और लाल कराके जाना पड़ सकता है। सभा या आयोजन स्थल से निकलते हुए लगता है कि अब नहीं तब धर ही लिए जाएंगे।लगता है कि पकड़े गए तो पक्का फोड़ देंगे कपार।

हमारी हिंदी सेवा की मौखिक परीक्षा भारत-चीन के आवागमन के समय वायुयान में ही आरंभ हो जाती है। प्राय: सभी की प्रश्नावली क्या करते हैं से शुरू होती है। परिचय में हिंदी शिक्षण की बात आते ही सबके पास एक जैसे ही प्रश्नों की देशी छर्रों और बारूद से लोडेड एकनाली बंदूक होती है । इन सभी की एकनाली बंदूकों में जो बारूद भरी रहती है, वह देश प्रेम की होती है । सभी एक ही सवाल दागते हैं। चीन में भी लोग हिंदी पढ़ते हैं क्या? इस 'क्या' पर वे इतना ज़ोर लगाते हैं कि कभी-कभी प्राण वायु और अपान वायु में प्रतियोगिता -सी हो जाती है। उन्हें किस मीडियम से पढ़ाते हो? इसके बाद वे क्यों पर आते हैं? ये काफी पढ़े-लिखे किस्म के लोग होते हैं। ये लोग दूसरों को हिंदी पढ़वाने का आनंद लेते हुए स्वयं को आंग्ल लोक में प्रतिष्ठापित कर चुके होते हैं। इनके बच्चे अमेरिका या किसी यूरोपीय देश में होते हैं। लेकिन वे अंग्रेज़ी माध्यम से विज्ञान पढ़कर चिकित्सक या अभियंता बन कर वहाँ गए हुए होते हैं। यही लोग हिंदी की ज़ादूगरी करते हुए मिलते हैं। औरों से कहते हैं हिंदी से प्रेम करो और अपने को उस नियम का अपवाद बनाए रखते हैं। मैं तो अपने देश के इन हिंदी सेवकों से बहुत डरता हूँ। इनकी भक्ति बडी भावुक किस्म की होती है। उनसठ,

उन्हत्तर, उन्यासी और नवासी में अभेद भाव रखने वाले ये हिंदी भक्त जब भी परीक्षा पर उतर आते हैं तो परीक्षार्थी की जान लेके ही छोड़ते हैं। मसलन 'वहाँ हिंदी किस मीडियम से सिखाते हैं? शुरू में क्या सिखाते हैं? क्या क,ख, ग घ से शुरू करते हैं?" जब हम कहते हैं कि 'नहीं' तो वे फिर से नया सवाल दाग देते हैं, "फिर कहाँ से शुरू करते हैं?" मैं कहता हूँ 'अ आ इ ई से'। इसपर वे शर्मिंदा नहीं होते बल्कि डांटते हुए कहते हैं ,"बात एक ही है न चाहे अ आ इ ई से शुरू करो चाहे क ख ग घ से ।" जब मैं कहता हूँ कि आप ही ने पूछा था कि कहाँ से शुरू करते हैं, सो मैंने आपके प्रश्न के उत्तर में यह बात कही है। इसमें क्या है आगे से हम 'क ख ग घ' से शुरू कर देंगे। मेरी बातों को वे बहुत हलके में लेते हैं । इतने हल्के में कि अगर वे तिनके के साथ हों तो फूंक मारने पर तिनके से पहले उड़जाएं । इसी व्यन्जना में बातें करते हुए मंद-मंद मुस्काते जाते हैं। इस मुस्कान से वे बताना चाहते हैं कि ऐसा तुच्छ हिंदी ज्ञान लेकर वायुयान में बैठे लोगों को मेरे द्वारा यह बताया जाना कि, 'मैं दूसरे देश में हिंदी सिखाता हूँ, उनका ही नहीं वायुयान का भी अपमान है।' एक ही नहीं कई तरह से वे 'क ख ग घ 'पर ज़ोर देकर मेरी औकात बताते हैं। मैं भी भीतर-भीतर जान जाता हूँ कि इनका आशय क्या है पर बाहर से अनभिज्ञ बना रहता हूँ और उनके धन की गुरुता का भार महसूसता रहता हूँ।

देश के भीतर खूब आंकड़े इकट्ठे किए जाते हैं कि किस देश में कितने लोग हिंदी जानते हैं। दुनिया की दूसरी या तीसरी भाषा सुनकर खुशी से लोग झूमने लगते हैं। लेकिन कोई इस सच्चाई को कबूलने के लिए तैयार ही नहीं रहता कि यह संख्या उन गरीब और मध्यम वर्ग के कारण है जिन्हें हिंदी या अंग्रेज़ी के राज-काज में कोई फर्क नहीं दिखता । आज भी इनमें से अधिकांश को तो अंगूठा लगाना होता है फिर उनका नाम अंग्रेज़ी में हो या हिंदी में इस बात से उन पर क्या फर्क पड़ता है। इनकी गिनती पर अपनी जय बुलवाने वाले ज़ादूगर नहीं तो और क्या हैं?

पत्रिका के वर्तमान अंक के लिए सोचा कि कोई विज्ञापन आ जाए तो बोझ कुछ कम हो जाएगा । इस हेतु यहाँ स्थित भारत की दो राष्ट्रीयकृत बैंकों में से एक को पत्र लिखा और दूसरी से मौखिक अनुरोध किए। मैंने इस तरह भी बात की कि, 'आपकी आर्थिक सहायता मेरी पत्रिका के लिए प्राणवायु का काम करेगी। 'लेकिन उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि, "ऊपर के अधिकारियों ने मना कर दिया है। "ये ही वे लोग हैं जो हमें फिर से 10 जनवरी को 'विश्व हिंदी दिवस' पर बुलाकर फूल मालाएं चढ़ाएंगे, चित्र खींचेंगे और अपने मुख्यालय (दिल्ली-मुंबई स्थित हेड क्वार्टर) भेज देंगे। हिंदी सेवक होने के नाते इनके यहाँ पहले की तरह फिर अपने किराए से जाऊंगा । ये लोग खूब लंबी-चौडी हाँकेंगे । मैं शांत भाव से सुनूंगा तो पर पहले की तरह अपने भाषण में हेड क्वार्टर भेजे जाने के लिए इनकी हिंदी सेवा की झूठी तारीफें न रिकार्ड करवा पाऊंगा। भले ही ये लोग समझें न समझें अगले संबोधन में मैं

पक्का यही बोलने वाला हूँ कि 'हिंदी की सबसे बड़ी सेवा यही है कि शब्दों की आत्मा को जिएं खुद उनकी निर्मम हत्या करके लाश न ढोएं। '

शब्दों की लाश ढोने वाले ये ज़ादूगर हिंदी के भितरघाती शत्रु हैं। इनके पास पहुंचकर देव वाणी के अमृत शब्द भी कितनी ज़ल्दी मृत हो जाते हैं यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है। हिंदी दिवस पर भी 'हिंदी डे' बोल सकते है। आपके लिए 'ग्रीन टी' या 'लेमन टी' मंगा सकते हैं। अगर आप भीतर से हिम्मत जुटाकर 'हरी चाय' या 'नींबू चाय 'कहें तो आप पर ठठाकर हंस सकते हैं और आपकी हिंदी को 'डिफिकल्ट' और आकवर्ड कहकर हिंदी की इस अनुपयोगिता पर लंबा व्याख्यान भी दे सकते हैं। इस तरह से ऐसे अवसरों पर ये जाने-अनजाने हिंदी का मज़ाक बना सकते हैं। उसके सरल रूप को वे इतना सरल बना देने की वकालत भी करने लग सकते हैं कि बस गूगल के लिप्यंतरण से काम चल जाए ।

मुझे हिंदी के लिए अपने अभियान में लगे देखकर अनेक चीनी और कुछ भारतीयों ने देखा-सुना तो उनमें से कुछ नेक जन आगे आए और अनेकश: तारीफें कीं । मैं गद्गद् हुआ। कई अवसरों पर फूलकर कुप्पा भी हुआ। लेकिन हर बार यही अंदेशा रहता रहा है कि यह सेवा कब तक कर पाऊंगा और कब तक झूठी-सच्ची तारीफों की हवा से कुप्पा होता रहूंगा। कभी हवा सुर्र से निकल गई तो 'कुप्पा' से कुप्पी भी तो हो सकता हूँ और मेरा मुखर स्वर मौन या चुप्पी में भी तो बदल सकता है। सही भी है बिना पैसों के पत्रिका तो निकलती नहीं। वे पैसे जो मैं इस व्यसन(?)पर लगाता हूँ उनपर सिर्फ मेरे साहित्यिक शौक का ही नहीं मेरे बाल-बच्चों का भी अधिकार है।

इस मिशन में मुझे उन हिंदी सेवकों से भी मिलने का सुवसर मिला जो ज़ादूगर नहीं है। उनके पास न तो जहाज गायब करने का सम्मोहनी ज़ादू है और न ही हिंदी के लिए तरबूज-सा लाल-लाल गला काट के दिखा देने वाला काला ज़ादू। लेकिन उनके पास समर्पण भाव का ज़ादू है। उन्हीं में से एक हैं । यहाँ की सहायक प्रोफेसर थ्यान खफिंग। एक दिन सुबह-सुबह आईं और पत्रिका निकालने के मेरे ज़ुनून को बल दे गईं। वे बार-बार मना करने पर भी ज़बरन पांच सौ युआन का सहयोग कर गईं। वे न नाम चाहती थीं और न यश । बस सेवा भाव से आई थीं और बिना चाय पिए ही उल्टे पांव निकल गईं। यह भी तो उन्हें नहीं पता था कि कहीं उनका नाम भी लिया जाएगा।सही अर्थों में वे गुप्त दान करके चली गई थीं । यह तो मेरी नालायकी है जो उनकी आस्था का अवमूल्यन कर रहा हूँ और उनके दान का अवगोपन कर रहा हूँ। इनके अतिरिक्त मेरे दो और मित्र हैं। एक रणवीर सिंह राठी और दूसरे शर्मा जी रेस्टोरेंट वाले। इनका हिंदी से बस दूर-दूर का ही नेह-नाता है पर अपने देश और समाज की भाषा के उत्थान के लिए यह जानते हुए भी कि यह पत्रिका उनके व्यापार में कहीं से सहायक नहीं है, हमारे कंधों के बोझ को महसूस ही नहीं किया

थोडा-बहुत उतारा भी। अब मैं सोचता हूँ कि हिंदी का भला, भला किन्ही तिलस्मियों और ज़ादूगरों के तिलस्म या ज़ादूगरी से होगा या फिर इन सच्चे सेवकों के ऐसे उदार और व्यावाहरिक सहयोग से।

हिंदी सेवा के सबसे बड़े ज़ादूगर वे साहित्यकार हैं जो हिंदी सेवा में हवाई यात्राएं कर-करके थक चुके हैं और चार-पांच मुक्तकों को चार-पांच बार पगुराने के पांच लाख रुपए लेते हैं और बिजनेस क्लास का टिकट ऊपर से। कुछ बेचारे साहित्य निर्माता इकोनोमी में भी बैठकर तकलीफें उठाते हुए देश-विदेश्के हिंदी आयोजनों में जाते हैं। हिंदी साहित्य की यह सेवा इन दिनों खूब हो रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी इन सुविधाओं के द्वारा हिंदी भाषा और उसके साहित्य में बेहतरी लाने में मदद कर रहा है। मुझे लगता है कि यदि इनकी ही तरह भारतेंदु हरिश्चंद्र, मुंशी प्रेमचंद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, अज्ञेय, मुक्तिबोध, डा० राम विलास शर्मा, दुश्यंत, धूमिल, भगवत रावत, अदम गोंड्वी और भी अनेक कवियों/लेखकों को अगर यह सुविधा मिली होती तो वे हिंदी की सरस अंगूरी बेल को क्या से क्या और कितना से कितना न कर देते। कहाँ-कहाँ तक नहीं फैला देते और वे वहीं नहीं बस जाते यह सब करके समय पर वापस लौट भी आते। उसके बाद तो बस उस फैली हुई बेल की लतरों से अंगूर तोड़-तोड़ के खाने भर रह जाते।

हमारे पाठक यह न समझें कि मैं आलसी हूँ । इस लिए उन्हें यह अवश्य बता देना चाहता हूँ कि इसमें संकलित सामग्री बड़े जतन से आई है। इसलिए पूरी पत्रिका पढ़ें । हर लेखक या कवि पठनीय है। कोई छोटा या बडा नहीं है। ऐसे बडे को भी लेकर हम-आप क्या करेंगे जो पढ़ने को ही न मिले। मैं बड़े-बड़े नाम जानता हूँ । चाहता हूँ कि उन बडों में से अधिकांश इसमें छपें उसके लिए कोशिश भी करता हूँ। उनसे पत्राचार भी खूब किया है। एकाध पत्राचार आप भी देखें-

प्रिय अग्रज जी! आपने मुझसे कुछ वादा किया था। और उसे नियमित रखने का भी वायदा किया था। शायद याद हो । 'इंदु संचेतना' पत्रिका के लिए कुछ भेजिए । व्यंग्य/ कहानी, संस्मरण या आलेख कुछ भी भेजिए । उत्कृष्ट न सही उच्छिष्ट ही भेजिए। बडों का उच्छिष्ट भी ग्राह्य और पवित्र होता है। इस पत्रिका को तारिए जगन्नाथ! आपके लेखन से जग तर रहा है और मैं ही अभागा अछूत पडा रहूं । यह आप जैसे करुणा के सागर को शोभा नहीं देता । कब तक ऐसे अतरे रखोगे? अब तो पार उतारो, तारो प्रभु! उपकृत करो दीनानाथ! मैं मानता हूँ कि आपको पत्रिका अपने स्तर की नहीं लगने का संकोच होगा। सच में पत्रिका आपके स्तर की नहीं है। लेकिन जब आप छपेंगे तभी न पत्रिका आपके स्तर की होगी।

यह भाषा किसी एक को लक्ष्य करके नहीं लिखी गई है और न ही किसी को कष्ट पहुंचाने के इरादे से लिखी गई है। यह विशुद्ध अविधा में है। व्यंजना में भी नहीं लिखी गई है। इसलिए इसपर हमारे साहित्यकार मित्र क्रुद्ध न हों यह मैं जिन-जिन को भी लिखा हूँ उन्हें वास्तव में हिंदी का बड़ा सेवक मानता हूँ और उनके उत्कृष्ट या उच्छिष्ट तक को स्वीकारने को तैयार भी हूँ पर जब वे तैयार हों तब न ! इनमें से अधिकांश हमारी टाइम लाइन पर बड़े गर्व से प्रकट होते हैं। कभी -कभी बड़ी धज के साथ अवतार लेते हैं और अपना उच्छिष्ट भू उंडेलते हैं। लेकिन मेरे संपादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका में छपने से गुरेज़ करते हैं।'गुड खाए और गुल्गुले से परहेज वाली प्रवृत्ति मुझे अखरती है। फिर मुझे यह भी लगता है कि कहीं मैं गलत न होऊं।जब उनसे पूछ ही नहीं तो उन्हें हिंदी का सेवक कैसे मान सकता हूँ । यह भी तो संभव है कि जिन्हें मैं हिंदी के सेवक माने बैठा हूँ कहीं वे खुद को उसका स्वामी न मानते हों। उनके अपने-अपने विधागत साम्राज्य हैं। वे उनके सिंहासनों पर विराजमान भी हैं । बाबा तुलसीदास भी कह गए हैं 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'। इस ध्रुव सत्य के आस-पास खड़े होकर सोचें तो हो सकता है कि न्याय मिले। हो सकता है कि वे ज़ंज़ीर खींच-खींचकर रचनाएं मांगने और बेहाल हो जाने पर करुणा की भीख देकर ज़हांगीरी न्याय करना चाहते हों। कभी-कभी और कहीं-कहीं ही नहीं बल्कि प्राय: हर बड़े साहित्यकार के दर पर इस तरह से भी हो रही है हिंदी सेवा और उसकी ज़ादूगरी।

कुछ महान साहित्यकार तो अपनी 'तिलिस्म-रचना' के कारण ही महान हो गए। इनके तिलस्म और व्यूह रचना को समझना इतना आसान नहीं है। कवियों और लेखकों ने कुछ आलोचक पैदा किए और फिर इन आलोचको ने कुछ कवि और कथाकर । इन सबने मिलकर साहित्य के एक मायावी दुर्ग की रचना की जिसमे कोई अपरिचित कवि और लेखक घुसता ही नहीं था। इस तरह बड़े आलोचकों ने कुछ बड़ी कविताएं और कहानियां चुनीं और फिर उन बडों की बड़ी बात सबके ब्र्हमा की लकीर हो गई । ये बड़ी रचनाएं उन्ही बड़े कवियों/कहानी कारों की थीं जो उन आलोचकों के निर्माता थे। आगे चलकर उनकी कविता इसलिए और भी बड़ी हो गई कि उन्हीं बड़े आलोचकों के चयन पर उन्हे बड़े-बड़े सम्मान मिल गए।इस तरह जब तक उनके तिलिस्म को तोड़ने वाला कोई नहीं आया वे बेताज़ बादशाह भी बने रहे।

सितंबर का महीना हिंदी के ज़ादूगरों के लिए नए-नए करतब दिखाने का महीना होता है। इन दिनों कोने में पड़े-पड़े सड़ रहे बैनर के भी दिन बहुरते हैं। उसकी काई छूट जाती है और फाइलों की धूल। इसी महीने हिंदी की कुछ किताबों की खरीद भी हो जाती है और वे बच्चों को पुरस्कार के रूप में मिल भी जाती हैं । हमारे हिंदी सेवकों की यह सेवा इस अर्थ में उल्लेखनीय है कि कम से कम इसी बहाने वे हिंदी किताबों को हाथ लगाते हैं। उनके पवित्र हाथ हिंदी के इसी श्राद्ध मास में हैरी पाटर से गोदान और 'पूस की रात' तक पहुंचते हैं।

चेतन भगत से कबीर, तुलसी, सूर, निराला, महादेवी की कविताओं और मन्नू भंडारी के महाभोज तक भी पहुंच जाते हैं।

खैर! मैं भी यह अच्छी तरह से जानता हूँ कि मेरी यह आवाज़ 'नक्कारखाने में तूती की आवाज़' की तरह आसानी से खो सकती है। इन ज़ादूगरों/तिलस्मियों के सामने मुझ जैसे छुटभैए हिंदी सेवकों की बिसात ही क्या है या इनके प्रभापूर्य सूर्य के प्रताप से आशीषित पत्रिकाओं के आगे 'इंदु संचेतना'जैसी पत्रिकाओं को कौन घास डालेगा । अपने इन प्रभावशून्य शब्दों से मैं उन ज़ादूगरों का बिगाड़ -उखाड़ भी क्या लूंगा ? लेकिन यह भी उतना ही सच है कि लाख नगाड़े बज रहे हों फिर भी उनके बीच किसी सिरफिरे को कोई अपनी पिपिहरी बजाने से भी नहीं रोक सकता।

जय हिंद !! जय हिंदी !!!!



श्रद्धांजलि

हिंदी साहित्य के 'बागी साहित्यकार' 'मुद्रा राक्षस'

लेखक दयानंद पांडेय के ब्लॉग 'सरोकारनामा' से



नहीं रहे हिंदी के बाग़ी साहित्यकार मुद्राराक्षस जी,

विनम्र श्रद्धांजलि, लाल सलाम!!!--हिंदी के चंबल का एक बाग़ी मुद्राराक्षस"-- दयानंद पांडेय

अगर मुद्राराक्षस के लिए मुझ से कोई एक वाक्य में पूछे तो मैं कहूंगा कि हिंदी जगत अगर चंबल है तो मुद्राराक्षस इस चंबल के बाग़ी हैं । जन्मजात बाग़ी । ज़िंदगी में उलटी तैराकी और सर्वदा धारा के ख़िलाफ़ चलने वाला कोई व्यक्ति देखना हो तो आप लखनऊ आइए और मुद्राराक्षस से मिलिए। आप हंसते , मुसकुराते तमाम मुर्दों से मिलना भूल जाएंगे। हिप्पोक्रेटों से मिलना भूल जाएंगे । मुद्राराक्षस की सारी ज़िंदगी इसी उलटी तैराकी में तितर-बितर हो गई लेकिन इस बात का मलाल भी उन को कभी भी नहीं हुआ । उन को कभी लगा नहीं कि यह सब कर के उन्हों ने कोई ग़लती कर दी हो । वास्तव में हिंदी जगत में वह इकलौते आदि विद्रोही हैं। बहुत ही आत्मीय किस्म के आदि विद्रोही। पल में तोला, पल में माशा ! वह अभी आप से नाराज़ हो जाएंगे और तुरंत ही आप पर फ़िदा भी हो जाएंगे । वह कब क्या कर और कह बैठेंगे, वह ख़ुद नहीं जानते। लेकिन जानने वाले जानते हैं कि वह सर्वदा प्रतिपक्ष में रहने वाले मानुष हैं ।

वह जब बतियाते हैं और अतीत में जाते हैं तो लगता है कि कोलकाता में ज्ञानोदय की नौकरी का समय उन के जीवन का गोल्डन पीरियड था। हालांकि वह ऐसा शब्द या कोई भावना व्यक्त नहीं करते । लेकिन जब एक बार मैं नवभारत टाइम्स में था तब बातचीत में जो भाव उन के शब्दों में आए, उन से मैं ने यह निष्कर्ष निकाला है । हो सकता है मेरा यह आकलन सही भी हो, हो सकता है मेरा यह आकलन ग़लत भी हो । कुछ भी हो सकता है । पर कोलकाता के ज्ञानोदय और उस में अपनी नौकरी का ज़िक्र वह तब के दिनों बड़े गुमान से करते मिले थे । मुद्राराक्षस ने आकाशवाणी की गरिमामयी नौकरी भी की है । तब के

दिनों वह असिस्टेंट डायरेक्टर हुआ करते थे । पर यूनियनबाज़ी में वह गिरिजा कुमार माथुर से मोर्चा खोल बैठे । झगड़ा जब ज़्यादा बढ़ गया तो वह नौकरी से बेबात इस्तीफ़ा दे बैठे । नौकरी में समझौता कर के जो रहे होते मुद्राराक्षस तो बहुत संभव है वह डायरेक्टर जनरल हो कर रिटायर हुए होते । नहीं डायरेक्टर जनरल तो डिप्टी डायरेक्टर जनरल हो कर तो रिटायर हुए ही होते । जैसे कि उन के साथ के तमाम लोग हुए भी । अच्छी ख़ासी पेंशन पा कर ऐशो आराम की ज़िंदगी गुज़ार रहे होते । लेकिन मुद्रा का चयन यह नहीं था । सुभाष चंद्र गुप्ता उर्फ़ मुद्राराक्षस तो जैसे संघर्ष का पट्टा लिखवा कर आए हैं इस दुनिया में । घर में, बाह, साहित्य और ज़िंदगी में भी । मुद्रा तो जब दिनकर की उर्वशी की जय जयकार के दिन थे तब के दिनों उन्हों ने अपनी लिखी समीक्षा में उर्वशी की बखिया उधेड़ दी थी । नाराज हो कर दिनकर ने उन से कहा कि कुत्तों की तरह समीक्षा लिखी है । तो मुद्रा ने पलट कर दिनकर से कहा कि कुत्तों के बारे में कुत्तों की ही तरह लिखा जाता है । दिनकर चुप हो गए थे । ऐसा मुद्रा ख़ुद ही बताते हैं ।

मुद्राराक्षस शुरुआती दिनों में लोहियावादी थे । लोहिया के मित्र भी वह रहे । इतना कि रंगकर्मी शिराज जी से मुद्राराक्षस का विवाह भी लोहिया ने ही करवाया। लेकिन यह देखिए बाद के दिनों में लोहिया से मुद्रा का मोहभंग हो गया । मुद्रा वामपंथी हो गए । लोहिया को फासिस्ट लिखने और बताने लग गए मुद्राराक्षस । बात यहीं नहीं रुकी मुद्रा जल्दी ही वामपंथियों के कर्मकांड पर टूट पड़े । माकपा एम को वह भाजपा एम कहने से भी नहीं चूके । सब जानते हैं कि मुद्राराक्षस एक समय अमृतलाल नागर के शिष्य थे । न सिर्फ़ शिष्य बल्कि उन का डिक्टेशन भी लेते थे । नागर जी की आदत थी बोल कर लिखवाने की । बहुत लोगों ने नागर जी का डिक्टेशन लिया है । मुद्रा भी उन में से एक हैं । मुद्रा नागर जी के प्रशंसकों में से एक रहे हैं । लेकिन कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के एक कार्यक्रम में अमृतलाल नागर पर जब उन्हें बोलने के लिए कहा गया तो मुद्राराक्षस ने जैसे फ़तवा जारी करते हुए कहा कि अमृतलाल नागर बहुत ही ख़राब उपन्यासकार थे । उपस्थित श्रोताओं, दर्शकों में उत्पात मच गया । नागर जी के तमाम प्रशंसक मुद्राराक्षस पर कुपित हो गए । लेकिन मुद्रा अड़ गए तो अड़ गए । नागर जी को वह ख़राब उपन्यासकार बताते ही रहे । इसी तरह एक समय मुद्राराक्षस भगवती चरण वर्मा को जनसंघी बताते नहीं थकते थे । लेकिन सब कुछ और सारे जीवट के बावजूद मुद्राराक्षस इस सब में बिखर गए । मुद्रा इस अकेले किए जाने के दुष्चक्र और अपमान की आह में बिन कुछ बोले घुलते गए हैं । तिस पर उन की उलटी तैराकी और धारा के विरुद्ध चलने, और एकला चलो की ज़िद उन्हें निरंतर पथरीली राह पर ढकेलती रही है । जवानी में तो सब कुछ संभव बन जाता है । कैसे भी, कुछ भी हो जाता है । लेकिन उम्र के साथ बदलते समय से मुद्राराक्षस ने आज भी समझौता नहीं किया है । एकला चलो की उन की ज़िद और जीवन शैली उन्हें शायद आज भी कहीं सहेजती है, ताकत देती है उन्हें । पर बिखरने से बचा नहीं पाती । तिस पर उन पर

किसिम-किसिम के आक्रमण भी दाएं-बाएं से जब-तब होते ही रहते हैं । ख़ास कर प्रेमचंद को दलित विरोधी कह कर जैसे उन्हों ने बर्रइया के छत्ते में हाथ ही डाल दिया था । फिर तो क्या-क्या नहीं कहा गया । यह भी कि वह सुनार भी हैं ।

सच यह है कि लखनऊ में एक समय यशपाल, भगवती चरण वर्मा और अमृतलाल नागर की त्रिवेणी कही जाती थी । मतभेद उन में भी थे । होते ही थे । स्वाभाविक है । लेकिन वह लोग अपने मतभेद भी एक गरिमा के तहत ही निपटा लिया करते थे । वाकये कई सारे हैं । पर प्रसंगवश एक वाकया सुनाता हूं यहां । लखनऊ के महानगर कालोनी में भगवती चरण वर्मा का घर तब के दिनों बन चुका था । यशपाल जी का घर निर्माणाधीन था । भगवती बाबू के घर चित्रलेखा में कई सारे लेखक एक दिन बैठे थे । यशपाल और नागर जी भी थे । किसी ने यशपाल जी को सलाह दी कि आप भी अपने घर का नाम दिव्या रख लीजिए । यशपाल जी सुन कर भी टाल गए यह बात । लेकिन जब यह बात फिर से दुहराई गई तो यशपाल जी ने बहुत धीरे से प्रतिवाद किया और कहा कि मैं ने सिर्फ़ दिव्या ही नहीं लिखा है । बात आई, गई हो गई । किसी ने किसी की बात का बुरा भी नहीं माना । और नागर जी के पास तो जीवन पर्यंत अपना घर नहीं हो पाया । किराए के घर में ही वह अंतिम सांस लिए । ख़ैर, मैं मानता हूं की इस त्रिवेणी के विदा होने के बाद भी लखनऊ में एक त्रिवेणी पुनः उपस्थित थी । श्रीलाल शुक्ल, मुद्राराक्षस और कामतानाथ की त्रिवेणी । तीनों ही बड़े लेखक हैं । पर दुर्भाग्य से यह त्रिवेणी अपनी वह गरिमा शेष नहीं रख पाई । जो यशपाल, भगवती चरण वर्मा और अमृतलाल नागर की त्रिवेणी ने विरासत में छोड़ी थी । इस में श्रीलाल शुक्ल की जो एक्सरसाइज थी, सो तो थी ही, मुद्राराक्षस की एकला चलो की ज़िद, धारा के विरुद्ध चलने की अदा भी कम नहीं रही है । जैसे कि मुझे याद है कि जब कामतानाथ की पचहत्तरवीं जयंती मनाई गई तो उस कार्यक्रम की अध्यक्षता मुद्राराक्षस को ही करनी तय हुई थी । पर ऐन वक़्त पर मुद्रा ने आने से इंकार कर दिया । ऐसे और भी तमाम वाकये मुद्राराक्षस के जीवन में उपस्थित हैं । जैसे कि वह मुद्रा के आला अफसर की बहार के दिन थे । तब सोवियत संघ का ज़माना था । दर्पण के लोगों द्वारा आला अफसर के मंचन का कार्यक्रम सोवियत संघ के कई शहरों में बनाया गया । सोवियत संघ के ख़र्च पर । सभी कलाकारों के पासपोर्ट आदि बन गए । तारीखें तय हो गईं । सब ने जाने की अप्रतिम तैयारी कर ली । ऐन वक्त पर मुद्राराक्षस बिदक गए । सोवियत संघ में एक परंपरा सी थी कि नाटक के मंचन के लिए लेखक की लिखित अनुमति भी ज़रूरी होती थी । मुद्राराक्षस ने लिखित अनुमति देने से साफ इंकार कर दिया । दर्पण के लोगों ने बहुत समझाया । मनुहार किया । कहा कि आप को भी चलना है । मुद्रा बोले, मुझे जाना ही नहीं है । सोवियत संघ में आला अफ़सर का वह मंचन रद्द हो गया । दर्पण के लोग इस बाबत आज भी मुद्राराक्षस को माफ़ नहीं करते । मुद्रा का नाम आते ही किचकिचा पड़ते हैं ।

गरिया देते हैं । असल में मुद्रा के यहां असहमतियां बहुत हैं और उन से असहमत लोग भी बहुत हैं । बेभाव कहिए या थोक के भाव कहिए ।

लेकिन मुद्राराक्षस तो ऐसे ही हैं । वह अमूमन किसी के शादी-व्याह में या पारंपरिक कार्यक्रम में भी कहीं नहीं देखे जाते । वह बुलाने पर भी नहीं जाते । एक समय एक फीचर एजेंसी राष्ट्रीय फ़ीचर्स नेटवर्क में मैं संपादक था । इस का कार्यालय तब विधानसभा मार्ग पर आकाशवाणी से सटा हुआ था । एक बार वहां मुद्राराक्षस अचानक आ गए । मैं बहुत ख़ुश हुआ । उन से लिखने का आग्रह किया । वह तुरंत मान गए । यह वर्ष 1994 -1995 का समय था । वह पहले हफ्ते में एक लेख लिखते थे । बाद में दो लेख लिखने लगे । विविध विषयों पर । बस उन की शर्त होती थी कि हर हफ़्ते भुगतान मिल जाना चाहिए । लेख चाहे जब छपे । तो वह हफ़्ते में तीन बार आते । दो बार लेख देने, एक बार भुगतान लेने । मुझ पर प्यार भी बहुत लुटाते । इसी प्यार के वशीभूत एक बार पारिवारिक कार्यक्रम में बुलाते हुए निमंत्रण पत्र दिया उन्हें । उन्हों ने आने से साफ इंकार कर दिया । कहने लगे ऐसे किसी कार्यक्रम में नहीं आता-जाता । मैं चुप रह गया था तब । बहुत बार किसी के निधन आदि पर अंत्येष्टि में भी वह अनुपस्थित होते हैं। हां , लेकिन तीन बार अभी तक मैं ने उन्हें लोगों के निधन पर ज़रूर देखा है । एक अमृतलाल नागर के निधन पर वह बहुत ग़मगीन मिले भैसाकुंड पर । दूसरी बार राजेश शर्मा की आत्महत्या के बाद उन के घर पर उन के परिवार को सांत्वना देते हुए । और तीसरी बार श्रीलाल शुक्ल के निधन पर फिर भैसाकुंड पर । बहुत विचलित मुद्रा में । मुद्राराक्षस को जितना परेशान और विचलित श्रीलाल शुक्ल के निधन पर देखा, उतना परेशान और विचलित मैं ने उन्हें कभी नहीं देखा । लगता था कि जैसे उन से, उन का क्या छिन गया है । ऐसे जैसे वह किसी गहरी यातना में हों । उन के चेहरे पर छटपटाहट की वह अनगिन रेखाएं मेरी आंखों में जैसे आज भी जागती मिलती हैं । तो इस का कारण भी है । श्रीलाल शुक्ल और मुद्राराक्षस दोनों का विविध विषयों पर अध्ययन लाजवाब था । विद्वता की प्रतिमूर्ति हैं दोनों । हिंदी , अंगरेजी , संस्कृत और संगीत पर दोनों की ही अद्भुत पकड़ थी, है ही । फ़र्क बस यह रहा कि मुद्राराक्षस ने कई बार अपने अतिशय अध्ययन का अतिशय दुरूपयोग किया है । ध्वंस की हद तक दुरुपयोग किया है । और उसे एकला चलो की ज़िद पर कुर्बान कर दिया है । बारंबार । श्रीलाल जी ने अपने अध्ययन का सुसंगत उपयोग किया है । कहूं कि मैनेज किया है । और इसी ' मैनेज ' के दम पर अनगिन बार मुद्राराक्षस को वह प्रकारांतर से उकसाते रहे हैं और मुद्राराक्षस अतियों की भेंट चढ़ते गए हैं । निरंतर ।

मुद्राराक्षस से जब मैं पहली बार मिला तब बीस साल का था । यह 1978 की बात है । गोरखपुर में मैं विद्यार्थी था । संगीत नाटक अकादमी की नाट्य प्रतियोगिता में मुद्राराक्षस बतौर ज्यूरी मेंबर गोरखपुर गए थे । लखनऊ से विश्वनाथ मिश्र और दिल्ली से देवेंद्र राज

अंकुर भी बतौर ज्यूरी मेंबर पहुंचे थे गोरखपुर । अमृतलाल नागर ने उद्‌घाटन किया था । मुद्रा उन दिनों हाई हिल का जूता, मोटी नाट वाली टाई बांधे छींटदार बुश्शर्ट और कोट पहने मिले थे । सब लोग होटल में ठहरे थे पर मुद्राराक्षस परमानंद श्रीवास्तव के घर पर ठहरे थे । तब मुद्रा से मैं ने एक इंटरव्यू भी किया था । और उन से मिल कर एक नई ऊर्जा से भर गया था । उन दिनों वह रामसागर मिश्र कालोनी में रहते थे, जो अब इंदिरा नगर है । उन से चिट्‌ठी-पत्री होने लगी थी । वह इंटरव्यू दैनिक जागरण के संपादकीय पृष्ठ पर तब के दिनों छपा भी था । उन्हीं दिनों मैं परिचर्चाएं भी बहुत लिखता था । रंगकर्मियों को ले कर एक परिचर्चा खातिर उन्हों ने तब न सिर्फ़ कई सारे नाम सुझाए बल्कि सब के पते भी लिखवाए । बंशी कौल, सुरेका सीकरी, मनोहर सिंह, उत्तरा बावकर जैसे कई रंगकर्मियों के पते उन्हें तब जुबानी याद थे । कहा कि सब को मेरा नाम भी लिख सकते हैं, जवाब आएगा । सचमुच सब का जवाब आया था तब । बाद के दिनों मैं लखनऊ आता तो शाम के समय काफी हाऊस में प्रबोध मजूमदार, राजेश शर्मा के साथ वह एक कोने की मेज पर बैठे मिल जाते थे ।

मुद्राराक्षस ने राजनीतिक जीवन भी जिया है । दो बार चुनाव भी लड़ा है इसी लखनऊ में और अपनी ज़मानत भी ज़ब्त करवाई है । लेकिन राजनीति में भी कभी उन्हों ने समझौता नहीं किया है । कभी किसी के पिछलग्गू नहीं बने हैं । किसी की परिक्रमा नहीं की है । गरज यह कि साहित्य और ज़िंदगी की तरह वह राजनीति में भी सर्वदा अनफिट ही रहे हैं । नरसिंहा राव तब के दिनों प्रधानमंत्री थे । मनमोहन सिंह वित्त मंत्री थे । डंकल प्रस्ताव की दस्तक थी । पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह लखनऊ के एक सेमिनार में आए थे । सहकारिता भवन में आयोजित डंकल प्रस्ताव के खिलाफ यह सेमिनार था । तमाम ट्रेड यूनियन के लोग उस में उपस्थित थे । विश्वनाथ प्रताप सिंह तब जनता दल के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे । मुद्राराक्षस तब के दिनों लखनऊ शहर जनता दल के अध्यक्ष थे । कार्यक्रम शुरू होने की औपचारिकता हो चुकी थी । विश्वनाथ प्रताप सिंह मंच पर उपस्थित थे । अचानक मुद्राराक्षस आए । सुरक्षा जांच के तहत मेटल डिटेक्टर से गुज़रने को उन्हें कहा गया । मुद्रा बिदक गए । सुरक्षा कर्मियों ने उन्हें समझाया कि पूर्व प्रधानमंत्री की सुरक्षा से जुड़ी यह प्रक्रिया है । मुद्रा का बिदकना जारी रहा । कहा कि मैं उन की पार्टी का शहर अध्यक्ष हूं, मुझ से भी ख़तरा है उन्हें? और जब बिना जांच के उन्हें घुसने से मना कर दिया गया तो वह पलट कर कार्यक्रम से बाहर निकल गए । विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंच पर बैठे ही बैठे सब देख रहे थे । उन्हों ने कुछ कार्यकर्ताओं से कहा कि अरे, मुद्रा जी नाराज़ हो कर जा रहे हैं । उन्हें मना कर ले आइए । उन्हों ने पूर्व विधायक डी पी बोरा और उमाशंकर मिश्रा को इंगित भी किया । यह लोग लपक कर मुद्रा के पीछे लग गए । मुद्रा को मनाने लगे । लेकिन मुद्रा तो यह गया, वह गया हो गए । विधान भवन तक लोग मुद्रा को मनाते हुए आए । लेकिन मुद्रा नहीं लौटे तो नहीं लौटे । मैं उन दिनों नवभारत टाइम्स में था । कार्यक्रम की रिपोर्टिंग

के लिए आया था । लेकिन कार्यक्रम छोड़ कर मैं भी साथ-साथ लग लिया यह देखने के लिए कि मुद्रा मानते हैं कि नहीं । मैं ने देखा कि मुद्रा किसी की बात सुनने को भी तैयार नहीं थे । लगातार कहते रहे कि अब इस अपमान के बाद लौटना मुमकिन नहीं है ।

मुद्राराक्षस के साथ ऐसी अनगिन घटनाएं उन के जीवन में उपस्थित हैं । भारत में उन दिनों विदेशी चैनलों की दस्तक और आहट के दिन थे । वर्ष 1996 की बात है । मीडिया मुगल रूपर्ट मर्डोक ने स्टार में एडवाइजर बनाने के लिए बात करने को बुलाया था । निमंत्रण प्रस्ताव के साथ ही डॉ०लर वाला चेक भी नत्थी था । उन दिनों मैं राष्ट्रीय सहारा में आ चुका था । एक दिन मुद्रा जी राष्ट्रीय सहारा आए और रूपर्ट मर्डोक की वह चिट्ठी दिखाई सब के बीच और डॉ०लर वाला चेक भी । कहने लगे कि लेकिन मैं जाऊंगा नहीं । मेरे मुंह से निकल गया कि फिर यह चेक भी क्यों दिखा रहे हैं? मुद्रा हंसे । और वह डॉ०लर वाला चेक तुरंत फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया । मुद्राराक्षस के बहुत से उपकार मुझ पर हैं । पर एक उपकार के ज़िक्र का मोह छोड़ नहीं पा रहा हूं । एक बार नागर जी पर लिखे एक संस्मरणात्मक लेख में संकेतों में ही सही उन की ज़िंदगी में आई कुछ स्त्रियों का ज़िक्र कर दिया था । नागर जी से अपनी एक पुरानी बातचीत के हवाले से । राष्ट्रीय सहारा के संपादकीय पृष्ठ पर यह संस्मरणात्मक लेख छपा था । उस में कुछ भी आपत्तिजनक नहीं था । लेकिन दफ़्तर के ही कुछ सहयोगियों ने नागर जी के सुपुत्र शरद नागर को भड़का दिया । शरद नागर मेरे ख़िलाफ़ लिखित शिकायत ले कर उच्च प्रबंधन के सम्मुख उपस्थित हो गए । मुझ से स्पष्टीकरण मांग लिया गया । मैं ने स्पष्टीकरण तो दे दिया पर संकट फिर भी टला नहीं था । जाने कैसे मुद्राराक्षस को यह सब पता चल गया । फोन कर के मुझ से दरियाफ़्त किया । मैं ने पूरा वाकया बताया । मुद्रा बोले, इस में ग़लत तो कुछ भी नहीं है । तुम ने कुछ भी ग़लत नहीं लिखा है । बल्कि बहुत कम लिखा है । ऐसे विवरण तो बहुत हैं नागर जी के जीवन में । मुझे बहुत पता है । और फिर कई और सारे वाकये बताए उन्हों ने । मुद्रा यहीं नहीं रुके । बिना मेरे कहे उच्च प्रबंधन से भी वह अनायास मिले और मेरी बात की पुरज़ोर तस्दीक की । कहा कि कुछ भी ग़लत नहीं लिखा है । बात ख़त्म हो गई थी ।

हज़रतगंज के काफी हाऊस में उन के साथ बैठकी के तमाम वाकये हैं । लेकिन एक वाकया भुलाए नहीं भूलता। एक जर्मन स्कालर आई थी । वह भारतीय नाटकों और संगीत के बारे में जानना चाहती थी । वीरेंद्र यादव, राकेश, आदि कुछ और लोग भी थे । हिंदी उस की सीमा थी । अंगरेजी और संस्कृत लोगों की सीमा थी । अचानक मुद्राराक्षस ने हस्तक्षेप किया । और जिस तरह बारी-बारी संस्कृत और अंगरेजी में धाराप्रवाह बोलना शुरू किया, वह अद्भुत था । हम अवाक् देखते रहे मुद्रा को । एक बार ऐसे ही कैसरबाग़ के कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में संस्कृत के कोट दे-दे कर भरत मुनि के नाट्य शास्त्र की धज्जियां उड़ाते मैं

मुद्रा को देख चुका था । लेकिन काफी हाऊस में मुद्रा की यह विद्वता देख कर मैं ही क्या सभी दंग थे । काफी हाऊस में पिन ड्राप साइलेंस था तब । भारतीय नाटकों और संगीत पर ऐसी दुर्लभ जानकारियां मुद्रा जिस अथॉरिटी के साथ परोस रहे थे, जिस तल्लीनता से परोस रहे थे वह विरल था । वह जर्मन स्कालर जैसे गदगद हो कर गई थी । उस की गगरी भर गई थी, ज्ञान के जल से । मुद्रा के लिए उस के पास आभार के शब्द नहीं रहा गए थे । निःशब्द थी वह । और हम मोहित । बाद के दिनों में एक दोपहर रस रंजन के समय इस घटना का ज़िक्र बड़े सम्मोहन के साथ मैं ने श्रीलाल शुक्ल से एक बैठकी में किया । श्रीलाल जी अभिभूत थे यह सुन कर। फिर धीरे से बोले अध्ययन तो है ही उस आदमी के पास । मैं ने जोड़ा, और शार्पनेस भी । श्रीलाल जी ने हामी भरी, सांस ली । और अफ़सोस के साथ बोले पर इस सब का तो वह लगभग दुरूपयोग ही कर रहे हैं ! लखनऊ मेरा लखनऊ में मनोहर श्याम जोशी ने आज के मुद्राराक्षस को तब के सुभाष चंद्र गुप्ता को जिस तरह उपस्थित किया है वह भी अविस्मरणीय है ।

स्त्री और दलित विमर्श के लिए झंडा भले राजेंद्र यादव के हाथ में चला गया था लेकिन मुद्राराक्षस के ज़रूरी हस्तक्षेप को हम भला कैसे भूल सकते हैं? हां, यह भी ज़रूर है कि मुद्रा इस विमर्श में अति की हद तक निकल जाते रहे हैं । शायद इसी लिए वह कई बार बहुत लोगों को हजम नहीं हो पाते । उन की बात लोगों को चुभ-चुभ जाती है । मुद्रा का मकसद भी यही होता है कि उन की बात लोगों को चुभे और ख़ूब चुभे । लेकिन इस फेर में वह दाल में नमक की जगह नमक में दाल भी ख़ूब करते रहे हैं । और बहुतेरे लोगों के लिए जहरीले बन कर उपस्थित होते रहे हैं । लेकिन मुद्रा ने कभी इस सब की परवाह नहीं की है । शायद करेंगे भी नहीं । उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने के लिए भी उन के संघर्ष को कैसे भूला जा सकता है? कई-कई दिन तक उन्हें विधान भवन के सामने हमने धरना देते देखा है । बार-बार इस के लिए लड़ते देखा है । एक समय दलित मुद्दों को ले कर वह बहुत सक्रिय थे । मायावती उन्हीं दिनों मुख्यमंत्री बनीं । लोग कहने लगे कि हिंदी संस्थान की कुर्सी हथियाने का उपक्रम है यह । मैं ने लोगों से कहा कि फिर आप लोग मुद्राराक्षस को नहीं जानते । वह कैसे बन सकते थे ? बाग़ी और किसी कुर्सी पर ? नामुमकिन ! समाज के और ज़रूरी मसलों पर भी उन्हें जूझते देखा ही है लखनऊ की सड़कों ने, लोगों ने । मुद्रा चुप मार कर बैठ जाने वालों में से नहीं हैं । हार शब्द तो जैसे उन की डिक्शनरी में ही नहीं है । अख़बारी कालमों में उन की आग की तरह दहकती टिप्पणियां अभी भी मन में सुलगती मिलती हैं । वैसे भी वह कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की जगह विचार को ज़्यादा तरजीह देते रहते हैं । घर की उन की लाइब्रेरी में भी साहित्य से ज़्यादा वैचारिक किताबें ज़्यादा मिलती हैं । रंगकर्मी राकेश उन्हें बुद्ध, कबीर और ग़ालिब का समुच्चय मानते हैं । राकेश ठीक ही कहते हैं । हां, यह ज़रूर है कि ग़ालिब और कबीर उन में ज़्यादा हैं । बुद्ध कम । ऐसा मेरा मानना है । राकेश ग़ालिब का एक क़िस्सा सुनाते हैं । कि ग़ालिब मस्जिद, नमाज़, वमाज के फेर में नहीं पड़ते

थे । पर एक बार शराब का टोटा पड़ा तो वह नमाज़ के लिए मस्जिद गए । अभी वज़ू कर ही रहे थे कि उन का एक साथी उन्हें पुकारते हुए , बोतल दिखाते हुए बोला कि, ग़ालिब साहब, ले आया हूं ! ग़ालिब बिना नमाज़ के लौटने लगे तो मौलवी ने टोका कि बिना नमाज़ के क्यों जा रहे हैं ? ग़ालिब बोले, जब वज़ू में ही क़ुबूल हो गई तो नमाज़ का क्या करना ! और मस्जिद से बाहर आ गए । मुद्रा के साथ भी यह सब है । मुद्रा के साथ रस-रंजन के भी कई क़िस्से हैं । लेकिन अभी एक ताज़ा क़िस्सा सुनिए । कथाक्रम में डिनर की रात शैलेंद्र सागर ने मुद्रा को घर पहुंचाने का जिम्मा मुझ पर डाल दिया । मैं ने सहर्ष स्वीकार लिया । अब हम दुर्विजय गंज की गलियों में भटक गए । मुद्रा जी भी अपनी गली नहीं पहचान पा रहे थे । भटकते-भटकते हम लोग मोती नगर की गलियों में बड़ी देर तक घूमते रहे । खैर किसी तरह पहुंचे 78 दुर्विजय गंज । अब दूसरे दिन भी लंच के बाद शैलेंद्र सागर ने फिर मुझे मुद्रा जी को घर पहुंचाने का जिम्मा दे दिया । मैं अचकचाया । उन्हें रात का क़िस्सा बयान किया । और बताया कि कल तो रात थी, अब दिन है, कार को बैक करने मोड़ने में भीड़ के कारण मुश्किल होगी । गलियां पतली हैं । शैलेंद्र सागर नहीं माने । एक सहयोगी ज़रुर साथ दे दिया । मदद के लिए । कि अगर घर तक कार न भी पहुंच पाए तो यह सहयोगी घर तक मुद्रा को पहुंचा देगा । अब यूनिवर्सिटी पेट्रोल पंप पर पेट्रोल डलवाते समय मुद्रा ने उस सहयोगी से कुछ कहा । कहा कि पुल पार करते ही बाईं तरफ दुकान है । अब पुल पार करते ही उन्हों ने रुकने को कहा । मैं रुक गया । अब वह सहयोगी कार से उतरने को तैयार नहीं हो रहा था । मुद्रा बुदबुदाते हुए ह्विस्की की बात कर रहे थे । मैं ह्विस्की को बिस्किट सुन रहा था । मैं ने कहा भी कि आगे भी बहुत दुकानें मिलेंगी । मुद्रा बोले, यहीं ठीक रहेगा । मैं ने कहा कि कोई खास ब्रांड का बिस्किट है क्या ? साथ में कवियत्री शीला पांडेय जी भी थीं । वह बोलीं, बिस्किट नहीं, ह्विस्की कह रहे हैं । तब मैं अचकचाया । उस सहयोगी का कहना था कि मेरे गांव का या कोई परिचित देख लेगा तो क्या कहेगा ? और उस ने शराब की दुकान पर ह्विस्की लेने जाने से साफ इंकार कर दिया । मैं शराब आदि कभी ख़रीदता नहीं । सो मैं ने भी मना कर दिया । रास्ते में मुद्रा लगातार कहते रहे अब तुम मेरे दोस्त नहीं रहे । बुदबुदाते रहे , तुम कितने अच्छे दोस्त थे । लेकिन अब दोस्त नहीं रहे । आदि-आदि । मैं चुपचाप सुनता रहा । खैर इतवार होने के नाते बहुत भीड़ नहीं थी । सो कार कहीं फंसी नहीं । उन के घर आराम से पहुंच गए हम लोग । मुद्रा को कार से उतार कर उन के घर में दाखिल करते हुए लगभग उन से माफ़ी मांगते हुए कहा कि माफ़ कीजिए , आप की फरमाइश पूरी नहीं कर पाया । मुद्रा ने मेरी पूरी बात सुने बिना कहा कोई माफ़ी नहीं, मुझे आग्नेय नेत्रों से देखा और फिर दुहराया कि अब तुम मेरे दोस्त नहीं रहे, भाग जाओ ! और घर में अकेले घुस गए । लेकिन कल जब मुद्रा जी अपनों के बीच कार्यक्रम में वह मिले तो लपक कर गले लगा लिया मुझे । वैसे ही बच्चों की तरह निश्छल हंसी में मुदित । सर्वदा की तरह ।

कल उन के जन्म-दिन की पूर्व संध्या पर यह कार्यक्रम सचमुच मुद्रा जी के लिए ही नहीं, लखनऊ के लिए भी सौभाग्य बन कर आया । जिस तरह तमाम लेखक, रंगकर्मी मुद्रा जी से सारे भेद-मतभेद बुला कर इकट्ठा हुए वह बहुत ही सैल्यूटिंग है । पूरा कार्यक्रम सब को ही इतना भावुक कर देने वाला था कि पूछिए मत । धाराप्रवाह बोलने वाले, बोलने में हरदम कठोर रहने वाले मुद्रा कल किसी मोमबत्ती की तरह पिघलते रहे, किसी बर्फ़ की सिल्ली की तरह गल-गल कर बहते रहे भावनाओं में । इतना कि जब उन के बोलने का समय आया तो वह ठीक से बोल नहीं पाए । कहा भी कई बार कि मैं आज ठीक से बोल नहीं पा रहा । लोगों ने समझा कि अस्वस्थता के कारण, कमजोर हो जाने के कारण वह नहीं बोल पा रहे । लेकिन सच यह नहीं था । सच यह था कि वह बहुत भावुक हो गए थे अपने सम्मान में बिछे सब को देख कर । इतना अपनत्व पा कर । अब तक उपेक्षित चले आ रहे व्यक्ति को अगर समूचा लखनऊ एक साथ सैल्यूट करने उतर आया हो तो कोई भी हो , भले ही वह मुद्राराक्षस जैसा बाग़ी ही क्यों न हो, भावुक तो हो ही जाएगा । वह तो मुद्राराक्षस थे, उन की जगह जो कोई और होता तो वह मारे ख़ुशी के विह्वल हो कर रो पड़ता । सच मुद्रा को मैं ने जाने कितनी गरमी, बरसात, जाड़ा भोगते देखा है । जाने कितने संघर्ष , जीते-मरते और लड़ते देखा है । पर जितना भावुक होते कल उन्हें देखा है, कभी नहीं देखा । इस तरह तो नहीं ही देखा । एक बाग़ी भी भावुक हो सकता है, फिल्मों में तो बहुत बार देखा है, जीवन में पहली बार कल देखा है । हिंदी जगत के इस चंबल के बाग़ी को सत-सत नमन!





नवगीत की अवधारणा

डॉ० राजेश श्रीवास्तव

1958 में राजेंद्र प्रसाद सिंह ने एक गीत संग्रह का प्रकाशन गीतांगिनी नाम से किया । इसकी भूमिका में उन्होंने नवगीत शब्द का प्रयोग भी किया । गीत के अन्दर छिपी एक नई काव्यधारा का जन्म संभवतः छायावादी तथा छायावादोत्तर गीतों से मतान्तर दिखाने के लिये ही किया गया था, किंतु यह शब्द नए गीतों के लिये बहुत लोकप्रिय हो गया । नवगीत नई कविता या नई कहानी की तर्ज पर रखा गया नाम अवश्य हो सकता है किंतु यह कोई काव्य आंदोलन नहीं था बल्कि लोकचेतना, संस्कृति, उन्मुक्त जीवन, जातीय संस्कार और सौंदर्यबोध से जुड़ाव की एक सहज प्रकिया थी ।

गीत मानव हृदय की कोमल अभिव्यक्ति का दूसरा नाम है । अनुभूति सुख की हो अथवा दुख की, संवेदनाओं को जब भाषा मिले और लय रूपी रथ पर सवार हो जब चले तो हृदय झंकृत हो उठता है, यही गीत के आगमन का संकेत है । नवगीत इस गीत की वह स्थिति है जहॉ वह काल्पनिकता, रूमानियत और व्यर्थ के आदर्शों से मुक्त होकर एक नई विधा के रूप में अपने आपको स्थापित कर चुका है । लोकरस में डूबकर लोकजीवन की व्यथा कथा कहते हुए साहित्य की सशक्त विधाओं में नवगीत में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाया है । रूप और शिल्प के अपने स्वतंत्र अस्तित्व के कारण नवगीत नईकविता से पूरी तरह अलग है । नईकविता कविता से अधिक एक विचार है, जबकि नवगीत विचार और भावों का समन्वय है । एक छंदमुक्त है, दूसरा छांदिक है । नईकविता पर विदेशी प्रभाव है जबकि नवगीत के जातीय संस्कार हैं । वह भारतीय परम्परा की खाद में पनपा और बढ़ा है और परिवेश की सच्चाई से जुड़ा है । नईकविता चित्रात्मकता, विराम और ताल पर बल देती है जबकि नवगीत का आग्रह ध्वन्यात्मकता, गति और लय पर है । नवगीतों में काव्य विषय का विस्तार है । यह नई पीढ़ी का गीत है । मानवजीवन की उज्ज्वलता को प्रसारित करते हुए नवगीत ने अपनी अलग भाषा तैयार की है जिसमें कलात्मक सहजता का गुण विशेष रूप से विद्यमान है ।

नवगीत के आगमन के संकेत हमें छायावादी युग में ही मिलने आरंभ हो गए थे । यूँ तो गीत परम्परा वैदिक ऋचाओं से विद्यापति के गीतों तक और भक्तिकाल से रीतिकाल के कवियों में भी ढूंढ़ी एवं प्रतिष्ठित की जा सकती है किंतु गीत एवं नवगीत का स्पष्ट दिशान्तर मानने पर इसका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं निकलता । आत्माभिव्यंजना और वैयक्तिकता प्रधान छायावादी युग के कवियों महादेवी, प्रसाद,निराला, पंत ने सुंदर गीतों की रचना की है । 'तुमुल कोलाहल कलह में' एक उत्कृष्ट गीत है । छायावाद के अवरोहकाल में

उसकी वैयक्तिकता और भावुकता को बच्चन, अंचल,नरेंन्द्र शर्मा जैसे कवियों ने कुछ सीमा तक लौकिक बनाने का प्रयास किया किंतु न तो गीतों की भाषा और शिल्प ही छायावादी सौंदर्यबोध से मुक्त हो सका और न ही दार्शनिकता के आग्रह में ही कुछ कमी आई । हॉ, गीतों को सामान्य जन तक पहुंचाने और उनकी भावभूमि तक उतरने का प्रयास अवश्य हुआ । ठीक इसी समय माखनलाल चतुर्वेदी और नवीनजी गीतों को एक नई दिशा देने का प्रयास कर रहे थे । माखनलाल चतुर्वेदी के कई गीतों में लोकसंवेदना, लोकसंदर्भ और लोकधुन की ताजगी थी । कथन की सहजता, मुहावरेदारी और राष्ट्रीयता का आहवान हिंदी गीतों में एकदम नया था । 1940 में लिखा नवीन जी का गीत 'हम अनिकेतन' फक्कड़पन, मस्ती और भाषायी निखार का सुंदर उदाहरण है ।

इसी क्रम में हम अनेक गीतकारों का उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने गीतों में नयापन लाने का प्रयास किया । अज्ञेय में प्रयोग का नयापन था तो भवानी प्रसाद मिश्र में लोकतत्वों का संग्रह । शमशेर बहादुर सिंह बिंबों और भाषा के स्तर पर नएपन की तलाश में थे तो नरेश मेहता वैदिक ऋचाओं के सौंदर्यबोध को हिन्दी गीतों में फिर ले आने का प्रयास कर रहे थे । धर्मवीर भारती ने लोकसंदर्भों का संकलन किया और कड़वे यथार्थ को गीतों में स्थान दिया, वहीं शंभुनाथ सिंह ने गीतों को प्रणय, लोक विज्ञान और संवेदना की भूमि पर लहलहाने का अवसर दिया ।

पास आना मना,
दूर जाना मना,
जिदगी का सफ़र,
कैदख़ाना बना,
इस बिना नाम के,
अजनबी देश में,
सिर उठाना मना,
सिर झुकाना मना,
देखना और ऑखें मिलाना मना ।

इसके पूर्व तारसप्तक में गिरिजा कुमार माथुर गीत की नई संभावनाएँ लेकर आए । उन्होंने रूमानी दुनिया और वायवीय कल्पना को गीतों से लगभग निष्कासित किया किंतु सामान्यजन तक उनकी पहॅुच न हो सकी । अज्ञेय ने गीत शिल्पों का प्रयोग किया किंतु प्रयोगवादी छवि को न मिटा सके । शमशेर ने पदावली और बिंबों की ताजगी के हुनर दिखाए किंतु उनका ध्यान गीतों पर अधिक केंद्रित न रह सका । भवानी प्रसाद मिश्र भी शीघ्र ही नई कविता की ओर मुड़ गए । केदारनाथ ने साहित्यिक गीत शिल्प और लोक शिल्प का

समन्वय कर निश्चित ही गीतों में स्पष्ट बदलाव की अपनी नीति को जगजाहिर किया फिर भी वे पूरा समय गीतों को न दे सके किंतु तब तक नवगीत के लिये एक खासी जमीन तैयार हो चुकी थी ।

वायवीय कल्पना, दार्शनिकता, आत्मनिष्ठा और वैयक्तिकता के चंगुल से शनेः शनेःमुक्त होता हुआ नवगीत जीवन के अधिक निकट आता गया । सौंदर्य के नए संदर्भों की तलाश, यथार्थ की ओर बढ़ते कदम, लोक तत्वों की प्रतिष्ठा और रागात्मक जुड़ाव का अनूठा समन्वय गीतों से स्पष्ट झलक रहा था । गीतों में यह नया बदलाव था ।

नवगीत के साथ लम्बे समय तक एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह बनी रही कि हमारे बहुत से विद्वान नवगीत को विधा मानने से कतराते रहे । यहाॅ तक कि उसमें साहित्यविहीनता के आरोप लगाए गए । अनेक अनेक भाॅति दूसरे आंदोलनकारियों ने नवगीत की अस्मिता और अस्तित्व पर प्राणलेवा हमले किये । मानवीय धरातल पर बहती जीवनधारा पर अनर्गल आरोप लगाते हुए उसे रोकने का प्रयास किया गया । लेकिन सब जानते हैं कि जल की धारा किसी के रोके रुकी नहीं है । समय आते ही वह अधिक वेगवान हो उफान भरती, मचलती साहित्यिकों के हदय तक फैल गई । तथापि अपनी प्राचीन लय से जुड़े रहकर नईदिशाओं की खोज करने में नवगीत को कई तरह से मेहनत करनी पड़ी ।

गीतों से नवगीत तक पहुॅचने के पीछे कुछ और भी कारण थे । पुराने गीतों का रूमानियत भरा रूप घिस चुका था । यथार्थ से सतही जुड़ाव होने के कारण गीतों का साधारणीकरण भी कठिन हो चला था । सौंदर्यबोध में कमी आ रही थी । ऐसी स्थिति में नवगीत कथ्य और शिल्प दोनों स्तर पर बदलाव लेकर आया । कथ्य में विविधता आई । नई पीढ़ी के तनाव, अजनबीपन, निराशा और व्यर्थता के बोध को व्यक्त कर नवगीतकार ने जीवन के संवेदनशील संदर्भों की तलाश की ।

जिजीविषा लिये नवगीतकार का मन आंचलिकता और व्यापक सामाजिक दृष्ठि से अपनी पहचान बनाने लगा । इस मेहनत में गीतकार वीरेंद्र मिश्र और धर्मवीर भारती का नाम विशेष है । वीरेंद्र मिश्र का लेखन 1940 में आरंभ हुआ था । हजारों हजार गीतों के साथ वे विभिन्न मंचों से सुमधुर गायकी अंदाज में छाए रहे । नवगीत की मशाल लेकर वे नवकविता के उस युग में भी चलते ही गए, जिसमें एक बड़े समूह की चिंता केवल इतनी भर थी कि गीत को किसी तरह खारिज कर दिया जाए । विचार प्रधान कविता के उस दौर में भी वे लिख रहे थे -

जिन्दगानी गा रहा हूँ,
मन नहीं बहला रहा हूँ ।

उन्होंने नवगीत और जीवन को एकाकार किया है । वैयक्तिकता का आग्रह जो गीतों की विशेषता रही है उनके नवगीतों से बहुत दूर है । वीरेंद्र मिश्र का मानना है गीत के नवोन्नयन के मार्ग में अब भी कई बाधाएँ हैं । नए गीतकारों में नईकविता के नामीग्रामी सिद्धहस्त कवि और शब्दशिल्पी शामिल हैं । नईकविता, जो छंदमुक्त होकर भी काव्य सम्पन्नता की दिशा में सदैव सजग रही है, लयात्मकता से पूर्ण है और गीति तत्वों के कारण गेय भी बनी हुई है,परंतु छंद, नियम तथा प्रयोगों की कर्कशता में उसकी कोमलता आहत हुई है । यह प्रभाव अवश्य ही नवगीत में दिखाई दे रहा है । नवगीत हार्दिकता और अनुभूति की सहजता को साथ लेकर चला है । नए प्रतीक, नए अप्रस्तुत, नए छंदविधान एवं नईभाषा की उपादेयता नवगीत ने स्वीकार की है ।

नवगीत के विकास में डॉ० धर्मवीर भारती का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है । वंशी और मादल गीत संग्रह में नए गीतों का सहज विकास था । गीत नए रूप में नए वस्तु संगठन और नए शिल्प के साथ सामने आए । लोक जीवन, लोक परिदृष्य और लोकभाषा की सहजता भी रही । उनकी रागात्मक आंचलिकता और संवेदनशील जीवन संदर्भों के साथ सौंदर्यपरक बिंबों का चयन भी हुआ । किंतु क्रमबद्धता के अभाव में कुछ कविताओं को हठात् गीत बनाने का असफल प्रयास भी हुआ किंतु उनके इस परिवर्तन और प्रभाव को उनके साथ चल रहे गीतकारों ने गंभीरता से लिया और गीत तथा नवगीत की विभाजन रेखा तय की जाने लगी ।

डॉ० धर्मवीर भारती का एक और संग्रह सात गीत वर्ष एक नई ताजगी के साथ आया । इसमें मध्यवर्गीय व्यक्ति के कड़वे मीठे संघर्षों के बीच टूटे हुए मन के विक्षोभ को गीतों में बॉधकर धर्मवीर भारती ने अभिव्यक्ति दी है । अपराधबोध से ग्रस्त युवा पीढ़ी की टूटी आस्थाओं और ध्वस्त होते मूल्यों के बीच अपने गीतों में नवगीतकार भारती को स्पष्ट दिखाई देता है कि नई पीढ़ी चुनौतियों से कतरा रही है । नई पीढ़ी के संक्रमित मन का यह बोध किसी अन्य गीतकार के लिये कल्पना से परे था । निरर्थकता और त्रासद जीवन के अहसास को डॉ० धर्मवीर भारती ने नवगीतों में स्थान दिया। सात गीत वर्ष ने नवगीत के लिये उर्वर जमीन दी । यहीं से नवगीत की दो धाराएं हो गईं । एक लोकसंदर्भों को लेकर अग्रसर होने वाली और दूसरी यथार्थ के तीखे बोध को लेकर प्रवाहित होने वाली । एक में रागात्मक सघनता है तो दूसरे में यथार्थबोध । एक में रागोद्वेलन के कारण, सौंदर्य और प्रेम की सघनता है तो दूसरे में यथार्थबोध के कारण व्यंग्य का पैनापन। डॉ० धर्मवीर भारती के नवगीतों की विशेषता है यथार्थ की खुरदुरी भाषा और जीवन संघर्षों को व्यक्त करने के लिये युद्ध की शब्दावली का एकदम नया प्रयोग ।

यह नवगीत का ही नहीं वरन हिन्दी काव्य जगत का दुर्भाग्य है कि उसे वह लोकप्रियता नहीं मिली जिसका वह अधिकारी है । किंतु नवगीत के साथ ऐसा होना स्वाभाविक है । नवगीत कोई आंदोलन नहीं है, यह तो जब तब यहॉ वहॉ से झरने की भॉति फूट पड़ने वाली धवल धारा है । उसकी श्रृंगारिकता किसी परिचय की मोहताज नहीं है । जब कभी नवगीत ने रंग दिखाए हैं तो मानव मन झंकृत हुआ ही है ।

लघुपत्रिकाओं ने नवगीत को संरक्षण देना आरंभ किया है यह शुभलक्षण है । वर्तमान व्यापारिक दौर में जब लेखन भी आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा तथा सम्पन्नता के चंगुल में उलझता जा रहा है, नवगीत के प्रति कवियों की उपेक्षा अस्वाभाविक नहीं है । लेकिन हदयवान कवि न तो इस प्रतिस्पर्द्धा में शामिल हैं और न ही ऐसे किसी षडयंत्र में सहभागी बनना चाहते हैं जो मानव मन को आंदोलित करने वाली इस हदयवान काव्यविधा के विकास में बाधक हैं ।

कविता अगर मनुष्यता की मातृभाषा है तो गीत मानवीय संवेदना का अर्थसंपृक्त शब्द संगीत। गीत की रचना का सम्बन्ध हर हाल में लोकमन की गति से होता है। इसलिए गीत में लोकमन के सुख-दुख, उत्सव-आनन्द, हँसी-खुशी, अवसाद-उल्लास, आशा-आकांक्षा, उत्साह-उमंग, जय-पराजय,जीवन-संषर्ष और मुक्ति-संघर्ष की सच्ची अभिव्यक्ति होती है। स्वतंत्रता-आन्दोलन के बाद के जन-आन्दोलनों के विकास में गीत-रचना ने क्रान्तिकारी भूमिका निभाई है और इस दौरान गीत का गुणात्मक विकास हुआ है। स्पष्ट है कि जन-आन्दोलन में जनता के मन की या लोकमन की एक विशेष गति की अभिव्यक्ति होती है। अच्छे गीत उस गति को अभिव्यक्त करते हैं और उसे शक्ति भी देते हैं। कहने का तात्पर्य है कि जन-आन्दोलनों में गीत पैदा होते हैं और जन-आन्दोलनों को गति और शक्ति देने में सार्थक भूमिका निभाते हैं।

नामवर सिंह के अनुसार जिस साहित्य में काव्योत्कर्ष के मानदण्ड प्रबन्ध-काव्य के आधार पर बने हों और जहाँ प्रबंध-काव्य को ही व्यापक जीवन के प्रतिबिम्ब के रूप में स्वीकार किया गया हो, उसकी कविता का इतिहास मुख्यतः प्रगीत मुक्तकों का है। यही नहीं बल्कि गीतों की जन-मानस को बदलने में क्रान्तिकारी भूमिका रही है। वे मानते हैं कि यदि विद्यापति को हिन्दी का पहला कवि मान लिया जाय तो हिन्दी कविता का उदय ही गीत से हुआ, जिसका विकास आगे चलकर संतों और भक्तों की वाणी में हुआ। गीतों के साथ हिन्दी कविता का उदय कोई सामान्य घटना नहीं, बल्कि एक नयी प्रगीतात्मकता, लिरिसिज्म के विस्फोट का ऐतिहासिक क्षण है, जिसके धमाके से मध्य-युगीन भारतीय समाज की रूढ़ि-जर्जर दीवारें हिल उठीं, साथ ही जिसकी माधुरी सामान्य जन के लिए संजीवनी सिद्ध हुई। कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी कविता का उदय बिहार की पयस्विनी धरती पर ही हुआ है।

विद्यापति के मधुर गीतों के साथ जिस हिन्दी कविता की विकास-यात्रा आगे बढ़ी है उसमें कई समयसापेक्ष, युगसापेक्ष और समाजसापेक्ष पड़ाव आये हैं तथा हर पड़ाव पर बिहार के गीत-रचनाकारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज की है। भारतेन्दु युग या महावीर प्रसाद द्विवेदी अथवा मैथिलीशरण गुप्त का काल यानी हर काल में गीत-रचना अपनी माधुरी और ऊर्जा-विस्फोट से सामाजिक चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष करती रही है। मोहन लाल महतो वियोगी के वार्णिक छन्द में लिखे गीतों ने अपनी अलग पहचान बनाई है।

आधुनिक हिन्दी गीत-रचना को असली चेहरा और पहचान छायावाद के दौर में ही हासिल हुआ है। गीत के लिहाज से इस काल के वृहद् चतुष्टय-निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा के बाद अगर पाचवाँ नाम लेना होगा तो, निस्संदेह वह नाम आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का ही होगा। हालाँकि जानकीवल्लभ शास्त्री के साहित्य जगत में पदार्पण के समय तक छायावाद दम तोड़ने लग गया था और उत्तर छायावादी दौर के अलमस्त गीतकार-चतुष्टय--हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, रामेश्वर शुक्ल अंचल-के अलावा माखनलाल चतुर्वेदी, भगवती चरण वर्मा, गोपाल सिंह नेपाली, केदारनाथ मिश्र प्रभात, आरसी प्रसाद सिंह और थोड़ा बाद के नीरज के गीतों ने गीत-रचना के क्षेत्र में आयी गुणात्मक तब्दीली का संकेत देना शुरू कर दिया था।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की रचनात्मक मनोभूमि छायावाद के अधिक करीब और उत्तर छायावाद से थोड़ा भिन्न दृष्टिगोचर होती थी। संभवतः इन्हीं कारणों से आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को अपने समकालीन अन्य गीतकारों की अपेक्षा उचित और अपेक्षित मान्यता नहीं मिली और न ही आलोचकों ने इनके गीतों की गहराई से आज तक संजीदा पड़ताल ही की। कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का अति गंभीर निष्कर्ष है कि छायावाद काल के जो रचनाकार गीत-रचना के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाकर चलने में समर्थ हुए और आज भी रचना-कर्म से जुड़े चल रहे हैं, उनमें नरेन्द्र शर्मा और जानकीवल्लभ शास्त्री का नाम पहले आता है। ये दोनों ही विशुद्ध भारतीयता के रंग में भी शास्त्रीयता की जमीन पर खड़े हैं और प्रगतिशील चेतना से लैस होने के बावजूद न तो प्रगतिवाद की सीमा में आते हैं, न ही जनवाद की बल्कि इनका बिलकुल अलग ही आधार है। जहाँ नरेन्द्र शर्मा ने चलचित्र, आकाशवाणी और दूरदर्शन से जुड़े रहकर भी सृजन की दुर्निवार भूख की बदौलत गीत-रचना के सम्मुख कुछ उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं वहीं एकान्त साधना में लीन जानकीवल्लभ शास्त्री ने गीतों की मुखर अमरता को एक नया मिथक प्रदान किया है। शास्त्री के गीतों की जमीन पर अंत तक स्वर और सुर की लयात्मक एकता का प्रश्न है। वे निराला की कला-चेतना के अर्थपूर्ण विकास-क्रम के अंतिम और संभवतः अन्यतम बिन्दु हैं। हिन्दी गीत का इतिहास इन दोनों के अवदान को रेखांकित किये बगैर अधूरा ही रह जायेगा।

आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के समकालीन गीतकारों में रामधारी सिंह दिनकर, केदारनाथ मिश्र प्रभात, गोपाल सिंह नेपाली, श्याम नन्दन किशोर, आरसी प्रसाद सिंह, रामगोपाल शर्मा रुद्र, कलक्टर सिंह केशरी, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', रामदयाल पाण्डेय, हंसकुमार तिवारी, अवधभूषण मिश्र, गुलाब खण्डेलवाल, विंध्यवासिनी दत्त त्रिपाठी, जितेन्द्र कुमार प्रभृति का नाम प्रमुखता से सम्मिलित किया जा सकता है। गीतों की वैचारिक अंतर्वस्तु और प्रभावी अंतर्वस्तु, बनावट और बुनावट एवं अभिव्यक्ति-भंगिमा के धरातल पर इन सभी गीतकारों में काफी भिन्नताएँ हैं। रामधारीसिंह दिनकर मूलतः राष्ट्रीय चेतना के ओजस्वी कवि के रूप में जाने जाते है। इन्होंने कुछ अच्छे गीत भी लिखे हैं, जिनमें उत्तर छायावादी उल्लास, उमंग तथा मस्ती का स्वर छलछलाता हुआ दिखलाई देता है। रामविलास शर्मा को निराला के बाद दिनकर की काव्यभाषा में ही सबसे ज्यादा मेघ-मंद्र स्वर सुनाई देता है।

राष्ट्रीय चेतना के लिहाज से गोपाल सिंह नेपाली दिनकर के बाद दूसरे महत्वपूर्ण गीतकार हैं, बल्कि एक सफल गीतकार के रूप में नेपाली दिनकर से अधिक उल्लेखनीय हैं। गोपाल सिंह नेपाली के गीतों का फलक और परिदृश्य तथा अनुभूति की संरचना दिनकर के गीतों की तुलना में अत्यधिक व्यापक और गहरा है। राष्ट्रीय चेतना के अलावा नेपाली के गीतों में प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य के अनगिनत बेल-बूटे कढ़े हैं, जिनकी चमक आज भी मद्धिम नहीं पड़ी है। दिनकर और नेपाली दोनों के गीतों में तत्कालीन राजसत्ता और वर्ग-विभाजन पर आधारित समाज-व्यवस्था के अंतर्विरोधों,शोषण, दमन और उत्पीड़न के खिलाफ तीव्र प्रतिरोध का स्वर है। दिनकर जहाँ मुनादी के स्वर में घोषित करते हैं कि हटो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं, दूध-दूध ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं,तो नेपाली का मेघ-मंद्र उदघोष था कि-

जब-जब जनता पर दुख की बदली छाई है,
तब-तब हमने विप्लव-बिजली चमकाई है ,
मानवता का परिहास बदलने वाले हैं,
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।

श्याम नन्दन किशोर के गीतों का रचना-परिदृश्य नेपाली जितना व्यापक और विस्तृत नहीं हैं, लेकिन उनमें जवानी की मस्ती कूट-कूटकर भरी हुई है-जवानी जिनके-जिनके पास जमाना उनका-उनका दास।

सर्वविदित है कि भक्ति-आन्दोलन के बाद हिन्दी कविता व्यापक जन-सामान्य और श्रमजीवी वर्ग से प्रगतिवादी दौर में पहली बार मुखातिब हुई अथवा व्यापक जन-आन्दोलन के साथ गहरे स्तर पर जुड़ी। इस दौर की गीत-रचनाएँ संघर्षशील जन-साधारण में काफी

लोकप्रिय हुईं और व्यापक जन-आन्दोलन एवं जन-संघर्षों को संगठित, उत्प्रेरित और गतिशील करने में कामयाब भी। इस काल के कई गीत केवल व्यापक जन-जीवन में लोकप्रिय ही नहीं हुए, जन-कंठों में रचे-बसे और बहुत प्रभावी और लोकप्रिय नारे बन गये। इस लिहाज से नागार्जुन, लालधुआँ, रमाकांत द्विवेदी 'रमता', कन्हैया बिहारी शरण, मथुराप्रसाद 'नवीन' आदि के गीत भी व्यापक जन-संवेदना के अनिवार्य अंग बन गये। जयप्रकाश आन्दोलन के दौरान सत्यनारायण, गोपीवल्लभ सहाय, परेश सिन्हा, बाबूलाल मधुकर आदि के गीतों ने बहुत ही सकारात्मक भूमिका निभाई है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गीत के विकास में बिहार के गीतकारों का योगदान अन्यतम है, बल्कि अविस्मरणीय और अद्वितीय कहें तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की अत्यन्त ही तीव्र गति से शुरूआत हुई, जिससे भारतीय जनजीवन की सामाजिक चेतना में गुणात्मक तब्दीली आई एवं इस परिवर्तित सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाली कला-संस्कृति के विभिन्न रूपों की वैचारिक और प्रभावी अंतर्वस्तुओं में भी परिवर्तन के लक्षण परिलक्षित होने लगे तथा इस परिवर्तित युगबोध और रचना-दृष्टि को नये-नये नामों से पहचानने, परखने और पारिभाषित करने का प्रयत्न किया जाने लगा। निराला के गीतों में आये बदलाव के साथ ही तत्कालीन मदन वात्स्यायन,राजेन्द्र प्रसाद सिंह, राजेन्द्र किशोर, श्यामसुन्दर घोष,रामनरेश पाठक आदि गीतकारों के गीतों की वैचारिक और प्रभावी अंतर्वस्तु भी बदलने लगी थी। इस बदलाव को पहली बार राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा 'नवगीत' संज्ञा से अभिहित कर पहचानने और परखने के पाँच-सूत्री जीवन-दर्शन, आत्मनिष्ठा, व्यक्तित्वबोध, प्रीतितत्व और कवि-सम्मेलन के मंचों और गंभीर साहित्य-चर्चाओं में समान रूप से ख्याति प्राप्त हुई है। नवगीत से अपनी गीत-यात्रा का आरंभ करने वाली शान्ति सुमन को जनगीत के पुरस्कर्ता गीतकार होने का गौरव प्राप्त है। 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाई टूटती', 'मौसम हुआ कबीर', 'धूप रँगे दिन' जैसे उनके लगभग एक दर्जन नवगीत और जनगीतों के संग्रह प्रकाशित हैं।

उनके गीतों की बनावट और बुनावट की कलात्मकता पर विचार करते हुए मैनेजर पाण्डेय में लिखा है - शान्ति सुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में है। लगता है कि लोकगीत की आत्मा नई देह पा गई है या कि नई चेतना लोकगीत की काया में समा गई है और शिवकुमार मिश्र मानते हैं कि उनके गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है,साधारण में असाधारण के, हाशिए की जिन्दगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन-सन्दर्भों में महाकाव्य के वृत्तान्त पढ़ना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवी चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी। नचिकेता के शब्दों में शान्ति सुमन के ये गीत, वास्तव में गुलाब की पंखुड़ियों पर लिखी

अग्नि-शलाका हैं, शबनम की लिपि में लिखी क्रान्ति की कारिका हैं, और हिन्दी जनगीत-रचना के क्षेत्र में शान्ति सुमन, शायद पहली स्त्री-गीतकार हैं,जिनकी रचनाएँ गीतबद्ध संघर्षशील जन-संघर्षों में जुझारू मेहनतकश अवाम के द्वारा गाए गए हैं।

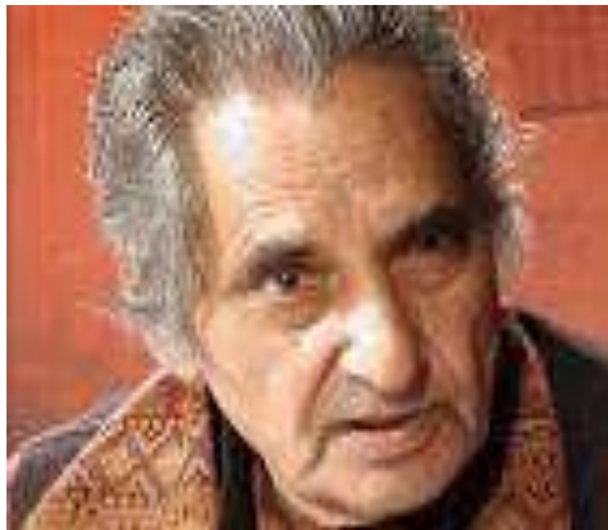
दूसरा महत्वपूर्ण नाम सत्यनारायण का है। सत्यनारायण के गीतों का समसामयिक जीवन-दर्शन, गहरा राजनीतिक बोध और अर्थ-गौरव उन्हें समकालीन हिन्दी गीत-रचनाकारों की प्रथम पंक्ति में शामिल कर देते हैं। सत्यनारायण के गीतों की भाषिक सहजता और अनुभूति की संरचना की पारदर्शिता ऊपरी सतह से देखने पर अकलात्मक लग सकती है, परन्तु तह में उतरते ही उनके गीतों के अनेक अर्थानुषंग किसी भी सहृदय व्यक्ति को अभिभूत कर देते हैं। उनके छोटे-छोटे चरण वाले छन्द गौरैये की तरह फुदकते दृष्टिगोचर होते हैं। उनके गीतों की वैविध्यभरी वस्तुगत दुनिया के अंतरंग साक्षात्कार के मद्देनजर ही अवधेश नारायण मिश्र इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सत्यनारायण का गीत-सौन्दर्य नवगीत की चारित्रिक विशिष्टता का मानक है। जीवन के बहुआयामी तनावों, आतंकों,आदर्शहीन मूल्यों, अन्यायों एवं विसंगतियों को लयमयी भाषा देकर नवगीतकार ने जिस सौन्दर्य-दर्शन का विकास किया है उसमें कुरूपता, असुन्दरता और खुरदुरापन को अधिक स्थान प्राप्त हुआ है। सत्यनारायण के गीतों की अस्मिता भाषा की आन्तरिक ऊर्जा, बिम्बों की रागदीप्त विविधता, लयों का आवर्तक संयोजन, शब्दों का युगबोधी संस्कार और अनुभूति की मौलिकता से निर्मित होती है और इन्हीं कारणों से उनके नवगीत कविता की वरेण्यता हासिल करते हैं तथा समस्त युग-सर्जना के प्रतिनिधि स्वर बन जाते हैं।

अपनी रागदीप्त विविधता और अनुभूति की मौलिकता से कविता की वरेण्यता हासिल करने वाले और समस्त युग-सर्जना के प्रतिनिधि स्वर सत्यनारायण अपने श्रेष्ठ समकालीन नवगीतकारों में सबसे कम गीत लिखने वालों में भी संभवतः अपना दूसरा प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते। लगभग पचपन वर्षों से नवगीत के रचना-संसार को समृद्ध करने में क्रियाशील रहने के बावजूद इनके अब तक ‘टूटते जल-बिम्ब’, ‘तुम ना नहीं कर सकते’, ‘सभासद हँस रहा है’ और ‘सुनें प्रजाजन’ नामक चार गीत-संग्रह ही प्रकाशित हैं। इसका यह मतलब हरगिज नहीं है कि कम लिखने के कारण सत्यनारायण के गीतकार का कद छोटा हो जाता है। पूजा के लिए ट्रकों में भरकर फूल नहीं लाये जाते, वहाँ तो दो-चार टटके फूल ही काफी होते हैं। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सत्यनारायण के परवर्ती गीतों की प्रखर सामाजिक चेतना और गहरा राजनीतिक बोध तथा जन-सरोकार उन्हें अनायास ही अन्य समकालीन नवगीतकारों से बहुत ऊँचा उठा देता है।

शान्ति सुमन और सत्यनारायण के अलावा बुद्धिनाथ मिश्र, हृदयेश्वर, यशोधरा राठौर और उदय शंकर सिंह उदय का नाम राष्ट्रीय फलक पर दूर से ही दिखाई दे जाता है।

बुद्धिनाथ मिश्र के दो, 'जाल फेंक रे मछेरे' तथा 'शिखरणी', यशोधरा राठौर के तीन, 'उस गली के मोड़ पर', 'जैसे धूप हँसती है एवं 'भरेंगे परवाज के पैगाम अक्षर' और उदयशंकर सिंह उदय के दो 'धूप में चलते हुए' और 'गीत फिर परचम हुए' तथा हृदयेश्वर के तीन'आँगन के इच-बीच', 'बस्ते में भूगोल' और 'यह देती धूप' अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इनके गीतों में आज के अत्यंत ही संश्लिष्ट जीवन के अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और विद्रूपताओं की जटिल अनुभूतियों की समग्रता में अभिव्यक्ति मिली है। बुद्धिनाथ मिश्र के गीतों में व्यक्त सघन लोक-चेतना उनके गीतों में नई चमक पैदा कर देती है।

समकालीन हिन्दी गीत का चेहरा हिन्दी-परिवार की अन्य भाषाओं, जैसे मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका, बज्जिका आदि की गीत-रचनाओं की गंभीर और आत्मीय अंतर्यात्रा किये बिना नहीं उभर सकता है। इस दृष्टि से रवीन्द्रनाथ ठाकुर, धीरेन्द्र धीर, मार्कण्डेय प्रवासी, शान्ति सुमन, बुद्धिनाथ मिश्र, सियाराम शरत, चन्द्रमणि, बच्चा ठाकुर, मायानंद मिश्र, महेन्द्र, अजित आजाद, विभूति आनन्द, स्वयंप्रभा झा, सुरेश दुबे सरस, जयराम सिंह, जयप्रकाश सिंह, राजेन्द्र कुमार यौद्धेय, घमंडी राम, बाबूलाल मधुकर, मिथिलेश, जयराम देवसपुरिया, हरेन्द्र विद्यार्थी, पाण्डेय कपिल, जगन्नाथ, रामनाथ पाठक प्रणयी, वेदनन्दन, चन्द्रप्रकाश माया, विजेन्द्र अनिल, परमेश्वर दुबे शाहाबादी, गंगा प्रसाद अरुण, रामेश्वर सिन्हा पियूष,पी| चन्द्र विनोद, रामजीवन सिंह 'जीवन', परमानन्द पाण्डेय, परमेश्वरी सिंह अनपढ़ अमरेन्द्र, आभा पूर्वे, नरेश पाण्डेय चकोर आदि के गीतों के रचना-कौशल, काव्य-कला और अर्थ-गौरव की दीर्घ परम्परा हिंदी में विद्यमान है ।



कंप्यूटर पर हिंदी और यूनिकोड



श्याम बाबू शर्मा,वरिष्ठ अनुवादक,

कंप्यूटर पर हिंदी से आप क्या समझते हैं? क्या कंप्यूटर पर हिंदी का अर्थ यह है कि आपने कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी में पत्र टाइप किया या एक्सल पर कोई डेटाबेस बनाया, प्रिंट लिया और यथास्थान उसकी हार्डकॉपी प्रेषित कर दी। क्या कंप्यूटर पर हिंदी इसी को कहते हैं? नहीं.... कंप्यूटर पर हिंदी सही मायने में यह नहीं है। कंप्यूटर पर हिंदी सही मायने में तभी कही जा सकती है जब हम अपने कंप्यूटर पर हिंदी का इस्तेमाल उसी तरह से कर सकें, जैसेकि अंग्रेजी का करते हैं। यानी जब हम अपनी फाइलों और फ़ोल्डरों का नाम हिंदी में दे सकें, जब हम सर्च के माध्यम से हिंदी में बनी फाइलों और फ़ोल्डरों को ढूंढ सकें, जब हम फाइलों में हिंदी के गलत शब्दों को फाइंड-रिप्लेस के माध्यम से ढूंढ कर बदल सकें, जब हम डेटाबेस हिंदी में बनाकर उसे वर्णानुक्रम में रख सकें, जब हम हिंदी में ऑटोनम्बरिंग कर सकें, जब हम एक्सेस में डेटाबेस तैयार कर उसकी हिंदी में क्वैरी कर सकें। यानी हम कंप्यूटर में हिंदी में वह सब कुछ कर सकें जो अंग्रेजी में करते हैं तभी सही मायने में कंप्यूटर पर हिंदी मानी जायगी।

और यह हम कब कर सकते हैं? यह हम तभी कर सकते हैं, जब हमारे कंप्यूटर में यूनिकोड सक्रिय हो। अब आप पूछेंगे कि यह यूनिकोड है क्या? आपको मालूम है कि हमारा कंप्यूटर मूल रूप से नंबरों से सम्बन्ध रखता है, यानी वह 0 और 1 की ही भाषा समझता है। किसी भी अक्षर या वर्ण के लिये एक नम्बर निर्धारित किया जाता है। उसी कोड पर हम किसी भी भाषा को लिखते हैं। यूनिकोड, जैसा नाम से ही परिभाषित होता है कि यूनिफाइड कोडिंग यानी एकसमान कोडिंग। यह कोडिंग वैश्विक स्तर पर की गई है। यूनिकोड प्रत्येक अक्षर के लिये एक विशेष नम्बर प्रदान करता है- चाहे वह कोई भी प्लेटफार्म हो, चाहे कोई भी प्रोग्राम हो, चाहे कोई भी भाषा हो।

इसी यूनिफाइड कोडिंग पर हिंदी और भारत की अन्य भाषाओं के अक्षर या वर्ण के लिये नम्बर निर्धारित किये गए हैं। यूनिकोड आने से पहले स्थानीय स्तर पर हिंदी के अक्षर या वर्ण के लिए विभिन्न सॉफ्टवेयर विशेषज्ञों ने अलग-अलग कोड तैयार किये गए थे जो एक समान कोडिंग पर न होने के कारण उनके द्वारा तैयार कोडित हिंदी फॉन्ट दूसरे कंप्यूटर में नहीं खुलता है। इसका जीता-जगता उदाहरण devlys या krutidev या इसी तरह के अन्य फॉन्ट हैं, जो यूनिफाइड कोडिंग पर न होने के कारण दूसरे कंप्यूटर में नहीं खुलता, यदि उस कंप्यूटर में वह फॉन्ट नहीं हो तो।

यह आपने भी महसूस किया होगा कि आपने devlys या krutidev फॉन्ट में कोई डॉ०क्यूमेंट तैयार किया है और उसे कहीं दूसरे ऑफिस में सॉफ्टकॉपी भेजनी है और वहां वह फॉन्ट नहीं है तो आप क्या करते हैं? आप फॉन्ट भी संलग्न करते हैं। उस फॉन्ट को प्राप्तकर्ता व्यक्ति या विभाग सर्वप्रथम अपने कंप्यूटर में डाउनलोड करता है फिर आपका डॉ०क्यूमेंट देख पाता है। इसका क्या कारण है? इसका कारण है कि यह फॉन्ट यूनिफाइड कोडिंग पर नहीं बना है। एक बात और... क्या आप इन फॉण्टों का इस्तेमाल करके अपनी फाइलों और फ़ोल्डरों का नाम हिंदी में दे सकते हैं? क्या आप सर्च के माध्यम से हिंदी में बनी फाइलों और फ़ोल्डरों को ढूंढ सकते हैं? क्या आप फाइलों में हिंदी के गलत शब्दों को फाइंड-रिप्लेस के माध्यम से ढूंढ कर बदल सकते हैं? क्या आप डेटाबेस हिंदी में बनाकर उसे वर्णानुक्रम में रख सकते हैं? क्या आप हिंदी में ऑटोनम्बरिंग कर सकते हैं? क्या आप एक्सेस में डेटाबेस तैयार कर उसकी हिंदी में क्वैरी कर सकते हैं? नहीं... आप यह कुछ भी नहीं कर सकते।

इन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए आपको अपने कंप्यूटर में यूनिकोड सक्रिय करना आवश्यक है। यह कोई अलग से सॉफ्टवेयर नहीं है, बल्कि आपके कंप्यूटर में इनबिल्ट है, इसे बस सक्रिय करना होता है। तो आइये जाने... इसे कैसे सक्रिय करना है।

सबसे पहले स्टार्टमैन्यू में क्लिक करें। इसके बाद कंट्रोल पैनल। कंट्रोल पैनल में रीजन एन्ड लैंग्वेज। रीजन एन्ड लैंग्वेज में सबसे पहले हम कंप्यूटर की लोकेशन बदलते हैं। क्योंकि कंप्यूटर में डिफाल्ट लोकेशन यूनाइटेड स्टेट अमेरिका पड़ी हुई है। हम जानते हैं कि हम जो ऑपरेटिंग सिस्टम प्रयोग में ला रहे हैं यानी माइक्रोसॉफ्ट का विंडोज एक्सपी या विंडोज 7 या विंडोज 10, यह कंपनी यूनाइटेड स्टेट अमेरिका की है। इसलिये हमारे कम्प्यूटरों में लोकेशन यूनाइटेड स्टेट अमेरिका ही है। जब हमारे कंप्यूटर की लोकेशन ही यूनाइटेड स्टेट अमेरिका है तो यह हिंदी या भारत की अन्य भाषा को कैसे जानेगा? तो हमें अपने कंप्यूटर की लोकेशन बदलनी है। हमें इसे बताना है कि महोदय आप इस समय भारत में हैं। हमें लोकेशन "इंडिया" करनी है। इसके बाद हमें अपना की-बोर्ड बदलना है। इसे हिंदी करना है। इसके बाद ओके करते ही आपका कंप्यूटर हिंदी में काम करने लगेगा। अब आप वह सब कुछ कर सकते हैं जो अभी तक आप केवल अंग्रेजी में ही कर पाते थे।

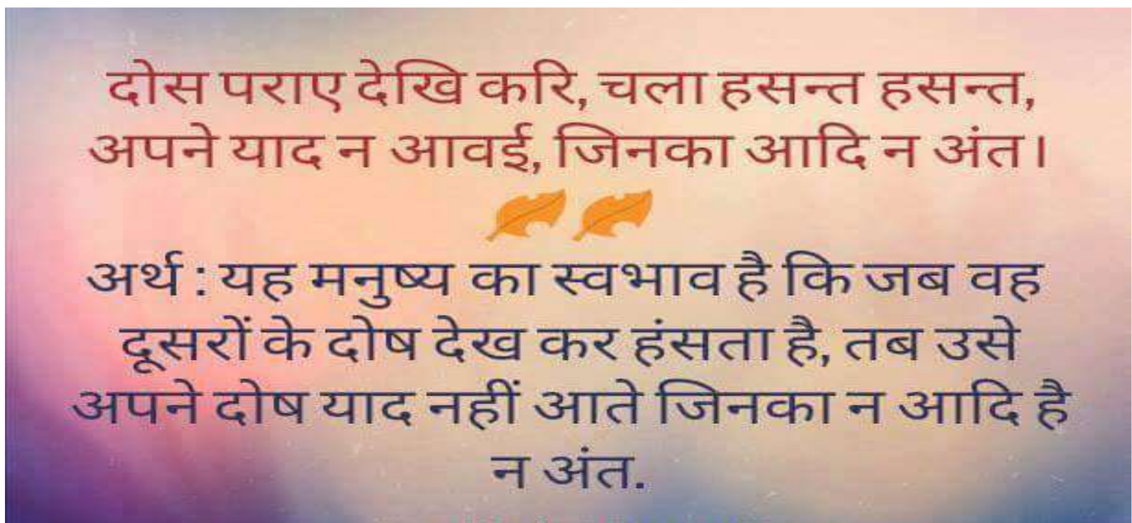
इसके बाद बात आती है, "इनपुट मैथड एडिटर" की। इसमें आपको तीन तरह के की-बोर्ड मिलते हैं-

1. **ट्रांसलिटरेशन यानी लिप्यंतरण की-बोर्ड**: मतलब आप रोमन लिपि में टाइप करें और आपको आउटपुट मिले देवनागरी लिपि में। यह उन प्रयोक्ताओं के लिए है। जिन प्रयोक्ता को थोड़ा बहुत हिंदी का टाइप करना होता है और वे हिंदी टाइपिंग नहीं जानते हैं। इसके लिए गूगल हिंदी इनपुट, माइक्रोसॉफ्ट का इंडिक आईएमई, बारहा आदि कई लिप्यंतरण की-बोर्ड उपलब्ध हैं। परन्तु सबसे सरल एवं सुविधाजनक गूगल हिंदी इनपुट रहेगा। इसमें यह खासियत है कि यह आपके द्वारा दिए गए पहले अक्षर से ही आपको विकल्प की सुविधा प्रदान करता है

और यह आपके शब्दों को अपनी डिक्शनरी में जोड़ता जाता है। इसलिए आप अपने मन से यह भ्रम निकाल दें कि कंप्यूटर पर हिंदी टाइप करने के लिए आपको टाइपिंग सीखनी पड़ेगी। लिप्यंतरण टूल का प्रयोग करें और जब आप रोमन में टाइप करेंगे तो वह अपने आप देवनागरी में बदल कर टाइप हो जाएगा।

2. **रेमिंग्टन की-बोर्ड-** यह सबसे पुराना और अब काफ़ी हद तक आउटडेटेड तरीक़ा है। यह एक टच टाइपिंग विधि है। इसके लिए पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग सीखी होनी चाहिए। यह सिर्फ़ उनके लिए उपयोगी है जिन्होंने पहले से टाइपराइटर पर हिंदी टाइपिंग सीखी हो तथा इसके अभ्यस्त हों। कंप्यूटर पर नए सिरे से सीखने हेतु यह उपयुक्त नहीं।
3. **इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड-** इसका विकास भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने किया है। यह भी एक टच टाइपिंग प्रणाली है। यह विधि भारतीय भाषाओं में टाइपिंग की सर्वाधिक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि से कंप्यूटर पर सर्वाधिक गति से हिंदी टाइप की जा सकती है। यह हिंदी टाइपिंग की सर्वश्रेष्ठ एवं सरल विधि है। इस की-बोर्ड में आप देखेंगे कि व्यंजन दायीं ओर तथा स्वर वायीं ओर दिए गए हैं। इसके लिए आपको सिर्फ हफ्ते-पंद्रह दिन अभ्यास करना पड़ता है।

इसप्रकार हम कह सकते हैं कि आजकल लगभग सभी डिजीटल उपकरणों में हिंदी में काम करना सम्भव है। भाषाई समर्थन ने तकनीकी विभाजन की दूरी को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यूनिकोड सिस्टम ने हिंदी को सभी कम्प्यूटिंग डिवाइसों तक पहुँचा दिया है। यूनिकोड सिस्टम के कारण कंप्यूटर पर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में काम करना अंग्रेजी जैसा ही सरल हो गया है। इसी कारण अब आप देखते होंगे कि इंटरनेट पर भी हिंदी की वेबसाइटों की भरमार हो गई है। तो आइए! हम भी अपने कंप्यूटरों में हिंदी यूनिकोड सक्रिय करके उपर्युक्त में से किसी एक की-बोर्ड के माध्यम से हिंदी में काम करना प्रारंभ करें।



इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल है देवनागरी के प्रवाह की कुंजी



डॉ०. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'

पिछले कुछ समय से हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए एक नई चुनौती खड़ी हो गई है। हिंदी में लिखने वाला व्यक्ति हो या किसी भारतीय भाषा में ये लोग भी आजकल मोबाइल के संदेश कंप्यूटर पर रोमन लिपि के माध्यम से लिखने लगा है । एक मजदूर भी मजबूर हो कर उल्टी -सीधी रोमन लिपि में लिखता है। हिंदी का प्रगाध्यापक और साहित्यार भी अपना साहित्य रोमन लिपि में लिख रहा है। अंग्रेजी शिक्षित भले ही सही अंग्रेजी न जानता हो वह भी हिंदी रोमन लिपि में ही लिखता है। इसका दुष्प्रभाव सभी क्षेत्रों पर पड़ रहा है । इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में भारतीय भाषाओं में कार्य करने की शिक्षा यो कोई भी जानकारी विद्यार्थियों को दी ही नहीं जाती। इसलिए ऐसे में उनसे यह अपेक्षा करना बेमानी होगा कि वे कंप्यूटर या मोबाइल पर अपनी भाषा की लिपि में लिखें ।

आज भाषाएँ कलम के दौर से निकलकर कंप्यूटर के दौर में प्रवेश कर चुकी हैं और इंटरनेट के पंख लगा कर ऊँची उड़ान भर रही हैं। आज भारत भी कंप्यूटर और इंटरनेट की दुनिया में एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है । एक ओर भारत के आई.टी. इंजीनियर अपने कौशल से दुनिया में अपनी पहचान बनाए हुए हैं और भारतवासी इंटरनेट प्रयोग में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। जब से मोबाइल पर इंटरनेट आया है तब से तो भारत का निर्धन और कम शिक्षित वर्ग भी सोशल मीडिया के मंच से इंटरनेट पर अपनी महत्वपूर्ण उपस्थित दर्ज करा रहा है। इंटरनेट की दुनिया में चीन के बाद भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है और भारत इस दिशा में तेजी से अपने कदम बढ़ा रहा है।

कंप्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में इस तेज प्रगति के बावजूद भीभारतीय भाषाएँ इंटरनेट पर बुरी तरह पिछड़ रही हैं। अनजान से नाम वाली भाषाएँ भी हिंदी से बहुत आगे हैं। कोई भी भारतीय भाषा इंटरनेट पर उपयोग की जाने वाली 20 शीर्षस्थ भाषाओं में सम्मिलित नहीं है। फिलहाल कोई संभावना भी नहीं दिख रही। एक कारण तो यह है ही कि अंग्रेजी माध्यम के चलते अपनी भाषा के शिक्षण के प्रति रुझान का कम हुआ है और हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखने का अभ्यास नहीं है। लेकिन समस्या केवल इतने तक सीमित नहीं है। चिंता तो यह है किऐसे अनेक लोग जो हिंदी में लेखन,हिंदी के मीडिया, हिंदी-सिनेमा, हिंदी शिक्षण या राजभाषा हिंदी के कार्यों से जुड़े हैं और हिंदी के माध्यम से अपना जीवनयापन भी कर रहे हैं वे भी कंप्यूटर या मोबाइल आदि उपकरणों पर हिंदी को रोमन लिपि में लिखते हैं।

'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' के सोशल मीडिया यानि गूगल-समूह, फ़ेसबुक-समूह आदि का संचालन करने के कारण प्रतिदिन ऐसे अनेक लोगों से पाला पड़ता है जो हिंदी या भारतीय भाषाओं के कार्य से जुड़े हैं लेकिन फिर भी हिंदी रोमन में लिखते हैं। कुछ मानसिकता और कुछ विवशता। उन्हें पता ही नहीं कि कंप्यूटर और मोबाइल आदि उपकरणों पर देवनागरी में काम कैसे किया जाए। इसी का परिणाम है कि जिस परिमाण में इंटरनेट पर हिंदी प्रयोग में आ रही है उसके मुकाबले बहुत कम दिखती है। इसी विवशता के चलते अब नई पीढ़ी ने हिंदी के लिए रोमन लिपि को अपनाना शुरू कर दिया है और चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने इसके कारण हिंदी और देवनागरी लिपि को खासा नुकसान हुआ है और हो रहा है। ऐसी ही स्थिति भारत की लगभग सभी भाषाओं की है।

कुछ वर्ष पूर्व तक निश्चय ही हमारे सामने कुछ कठिनाइयाँ थीं क्योंकि तब भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड फॉन्ट उपलब्ध नहीं थे। देसी कंपनियों ने अपनी खुद की एनकोडिंग कर आकृति, एपीएस, सुलिपि, जैसे सॉफ्टवेयर बनाए थे लेकिन उनकी सीमा वहीं तक थी जहाँ वही सॉफ्टवेयर होते थे। लेकिन अब हिंदी और भारतीय भाषाओं में यूनिकोड को उपलब्ध हुए काफी समय हो चुका है। माइक्रोसोफ्ट, गूगल आदि सहित विश्व के सभी कंप्यूटर ऑपरेटिंग कंपनियों द्वारा इसे स्वीकार कर लिया गया है। विश्व में सभी कंप्यूटरों पर हिंदी के फॉन्ट और इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल यानि की-बोर्ड की उपलब्धता है। 2008 के करीब भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने भी यूनिकोड फॉन्ट और इन्स्क्रिप्ट के प्रयोग को स्वीकार कर लिया था औरकंप्यूटर पर हिंदी में कार्य और टंकण-प्रशिक्षण के लिए यूनिकोड फॉन्ट्स और इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रयोग अधिकृत किया हुआ है। अनेक स्मार्ट मोबाइल फोन पर भी इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल उपलब्ध है। इसके चलते अब कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य के लिए किसी प्रकार का कोईसॉफ्टवेयर खरीदने की आवश्यकता भी नहीं रह गई है।

लेकिन इतना सब होने पर भी हम हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए इन तमाम सुविधाओं का उपयोग नहीं कर सके। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हमारे देश में स्कूल-कॉलेजों में कंप्यूटर पर काम करना केवल रोमन लिपि में ही सिखाया जाता है। पूरे देश में शायद ही किसी स्कूल-कॉलेज में किसी भारतीय भाषा की लिपि में कंप्यूटर पर काम करना सिखाया जाता हो । कंप्यूटर, मोबाइल आदि पर हर समय लगे रहनेवाले ज्यादातर युवाओं को यह तक नहीं पता होता कि उनके कंप्यूटर, मोबाइल आदि पर उनकी भाषा पहले से उपलब्ध है और आसानी से अपनी भाषा में काम संभव है। जब कहीं कोई सिखाने-बताने या अभ्यास करवाने की व्यवस्था ही नहीं तो ऐसा होना स्वभाविक है ।

चूँकि यह वैज्ञानिक इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल सभी भारतीय भाषाओं के लिए है इसलिए यदि किसी राज्य में इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल पर कार्य का प्रशिक्षण किसी अन्य भारतीय भाषा में भी दिया जाता है तो भी हिंदी जानने वाला विद्यार्थी अपने राज्य की भाषा के साथ-साथ कंप्यूटर आदि पर हिंदी में भी काम कर सकेगा। भारत सरकार के अनुसार तो मात्र 18-19 घंटे के अभ्यास से अंग्रेजी टंकण जाननेवाला व्यक्ति इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल के माध्यम से हिंदी

टंकण में पारंगत हो सकता है। स्कूल-कॉलेज में यदि कुछ दिनों तक घंटा भर इस वैज्ञानिक इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रशिक्षण दिया जाए और इसे स्कूल स्तर पर आईटी शिक्षा के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए तो देश के बच्चे देश की किसी भी भाषा में कंप्यूटर पर कार्य करने में सक्षम होंगे, चाहे फिर हिंदी हो, मातृभाषा हो या राज्य की राजभाषा।

हिंदी व भारतीय भाषाओं के समर्थक काफी समय से इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाए जाने की माँग करते रहे हैं। 'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' के मंच से जुड़े सक्रिय हिंदी-सेवियों द्वारा भी हिंदी भाषी राज्यों के मुख्य मंत्रियों तथा संघ सरकार के सामने यह माँग रखी गई है। प्रौद्योगिकीविद् डॉ०. ओम विकास जिन्होंने हिंदी व भारतीय भाषाओं के लिए कंप्यूटर पर कार्य के लिए काफी कार्यकिया है उन्होंने बताया कि जब वे केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) की आईटी शिक्षा पाठ्यक्रम समिति के अध्यक्ष थे तो समिति ने स्कूलों में इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रशिक्षण आईटी शिक्षा के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने की सिफारिश की थी, लेकिन कुछ हुआ नहीं। दुःखी स्वर में वे कहते हैं, 'इस समस्या का समाधान सम्मेलनों के प्रस्तावों से नहीं निकलेगा। पिछले दशक में हिन्दी के कई मंचों पर आवाज उठाई है, लेख भी लिखे। हिन्दी के सभी मठ सम्मेलन समापन के साथ समस्या को भूल जाते हैं।'

हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रवाह को जिस छोटे से पेंच ने रोक कर रखा है उसे दूर करने की जरूरत सबसे अधिक है। यदि '10वें विश्व हिंदी सम्मेलन' में भारत सरकार तथा सभी हिंदी-भाषी राज्योंद्वारा सभी (सरकारी व गैरसरकारी) स्कूलों में माध्यमिक स्तर पर हिंदी में कार्य के लिए कंप्यूटर आदि पर इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड के प्रशिक्षण को पाठ्यक्रम में (परीक्षा सहित) शामिल करने का निर्णय लिया जाता हैतो इससे राज्य के लोगों की ही नहीं देश के हिंदी व भारतीय-भाषा प्रेमियों की आकांक्षा पूरी होगी और हिंदी व भारतीय भाषाओं के बंद रास्ते खुले जाएंगे । यदि ऐसा होता है तो '10वां विश्व हिंदी सम्मेलन' इस ऐतिहासिक पहल के लिए याद किया जाएगा।

अब जबकि भारत ई-गवर्नेंस के रास्ते पर चलकर 'डिजिटल इंडिया' के माध्यम से तमाम सूचनाओं-सुविधाओं को ऑनलाइन करने की दिशा पकड़ कर तेजी से आगे बढ़ने के लिए कृत संकल्प है। ऐसे में देश की अधिकांश आबादी को प्रगति का सहभागी बनाने के लिए इनमें हिंदी व भारतीय भाषाओं के समावेश के साथ-साथ इनके प्रयोग के लिए देश की जनता को देश की भाषा व लिपि में कार्य हेतु इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रशिक्षण देना भी आवश्यक है।

'10वें विश्व हिंदी सम्मेलन' के अलावा भी हर स्तर पर इस छोटे काम के लिए हम निरन्तर प्रयास करें और भगीरथ की भांति हिंदी व भारतीय भाषाओं के प्रवाह को रोककर खड़ी इस कठिनाई की चट्टान को हटा दें ताकि हिंदी और हमारी अन्य भाषाएं इंटरनेट और प्रौद्योगिकी के रास्तों से हो कर अविरल बह सकें।

चीन में बैंड,बाजा ....बारात

आशीष गोरे



जिसकी काफी समय से प्रतीक्षा थी मुझे, वह कल पूरी हुई. चीन में कल विवाह समारोह में शामिल हुआ. मेरा ये मानना रहा है कि विवाह समारोह उस परिवार, शहर, प्रदेश और अंत में देश की सामाजिक व्यवस्था, पारिवारिक परिवेश, आर्थिक पृष्ठभूमि, मेलमिलाप के तानेबाने जैसी बहुत सी बातों का सांकेतिक चित्रण होता है, और ये ही कारण रहा मेरे चीन के विवाह समारोह की प्रतीक्षा और कुतूहल का.

समारोह भव्य विवाह भवन में था, बड़े हॉल के बीचोबीच प्रवेश द्वार था. द्वार के सामने पूरे हॉल को दो भागों में बांटता रैंप था. रैंप आगे जाकर एक भव्य स्टेज से जुड़ जाता था. व्यवस्था इस प्रकार थी कि रैंप के बायीं ओर बाराती और रैंप के दाहिने ओर घराती. दोनों ओर बड़े गोल टेबल थे, हर टेबल पर दस लोगों को बैठना था. लड़के वालों के लिए आठ टेबल, लड़की वालों के लिये आठ टेबल. इस तरह कुल 160 लोगों का इंतजाम, सभी को अपनी उपस्थिति की पूर्व सूचना देना अनिवार्य था.

मेरी टेबल घरातियों की दूसरी पंक्ति में थी. कुर्सी वह थी जहाँ से समारोह की सभी गतिविधियों को मैं देख सकूं, शायद पूरे समारोह में उपस्थित एकमात्र गैर चीनी होने की अनुकूल स्थिति.

अब सभी अपनी जगहों पर बैठ गए थे. समारोह का संयोजक भी था ऐसा प्रतीत हुआ मानो विवाह समारोह न होकर कोई कॉर्पोरेट इवेंट हो. समारोह चार चरणों में होगा और लगभग तीन से साढे तीन घंटे चलेगा, ये थी संयोजक की अग्रिम सूचनाये !!

गोल टेबल के बीच में लगी घूमने वाली कांच पर कुछ व्यंजन रखे जा चुके थे. चॉपस्टिक से उन व्यंजनो को सावधानी से पकड़कर या तो अपनी प्लेट में लेना था या सीधे खा लेना था, दोनों ही विकल्प आसान तो थे नहीं लिहाज़ा मैं थोड़ा पशोपेश में था. पर खाना अभी शुरू नहीं करना था.

संयोजक ने दूल्हे को स्टेज पर बुलाया ...,सूट बूट में थे दुल्हेराजा!! अब हॉल की सारी बत्तियां बुझा दी गयी , मुख्य द्वार पर लगी स्पॉटलाइट जला दी गयी, सारी नज़रे मुख्य द्वार पर जा टिकीं, द्वार खुले और बड़े नाटकीय अंदाज़ में अंदर आई , सजी सवंरी दुल्हन. दुल्हेराजा रैंप पर अपनी दुल्हन को लेने हाथ बढ़ाते हैं और फिर दोनों आते हैं स्टेज पर तालियों से भरी सबकी शुभकामनाओं के साथ. अब दोनों सभी का अभिवादन करते हैं, एक बड़े केक को दोनों एक साथ काटते हैं फिर वाइन की बड़ी बोतल से , वाइन के खाली गिलासों के एक के ऊपर एक रखे स्टैंड के सबसे ऊपर वाले गिलास में वाइन उड़ेली जाती है. अब दोनों एक दूसरे को पहले केक खिलाते हैं फिर वाइन पिलाते है. फोटोग्राफर अब काफी देर तक व्यस्त हैं. संयोजक खाना पीना शुरू करने का संकेत देते हुए दूल्हा दुल्हन को समारोह के प्रथम चरण से विदा करते हैं. अब सभी तन मन धन से खाने पीने पर टूट पड़ते हैं जो मुझे अपने देश की यादों की तरफ मोड़ देते है. समानताये उभर कर सामने है पर विषमता भी दूर नहीं.....शराब

सभी टेबलों पर है, सभी के लिए ...,, पर नदारत है भारत में प्राय: दिखने वाला, एक अलग कमरे मे ...कुछ लोगों को ज्ञात , औरों को अज्ञात ... शराब की महफिलों का जोश ख़रोश या आवेग!!

खाने पीने का दौर शबाब पर है , मेरे लिए खाने के सिमित विकल्प है , मेरे मुख्यतः शाकाहारी होने पर टेबल पर बैठे अन्य लोग कुछ हैरान हैं पर चॉपस्टिक से खाने का मेरा प्रदर्शन उन्हें प्रभावित भी कर रहा है.

अब फिर बत्तियां बंद हो गयीं हैं, दूल्हा दुल्हन के बचपन से अब तक के जीवन की तस्वीरों को एक फिल्म में पिरोयां गया है, माहौल अब खुशनुमा भी है और भावुक भी, दूल्हे दुल्हन के माता पिता के योगदान को वरीयता दी गयी है. दादा दादी, नाना नानी, मामा मामी , चाचा चाची आदी भी हैं अतः फिल्म पसंद आ रही है, सबूत तालियां दे रही हैं. दूल्हे और दुल्हन दोनों एकलौते हैं लिहाज़ा भाई या बहन का रोल खाली हैं. इस चरण में फोकस माता पिता पर है. स्टेज पर दूल्हा दुल्हन, फिर दोनों की माताये फिर दोनों के पिता है. संयोजक दूल्हे के पिता के हाथ में एक स्क्रिप्ट थमाते है पिता उसे पढ़कर आशीर्वचन देते है. अब स्क्रिप्ट दुल्हन के पिता के पास है उनका उच्चारण और लहजा, ठहाके के दौर बना चुका है... संयोजक समारोह के दूसरे चरण की घोषणा करते हैं, मुझे सत्यनारायण कथा वाले पंडित याद आये ... इतिश्री सत्यनारायण कथाय द्वितीय अध्याय....

अब थोड़ा ब्रेक है...

ब्रेक के बाद दूल्हा दुल्हन नए परिधान की चमक में छा से गए हैं, स्टेज पर एक बड़ा खूबसूरत स्टैंड के बीच एक बड़ी मोमबत्ती रखी गयी है. समारोह की भव्यता अब अपनी चरम सीमा पर है, बत्तियां धीमी कर दी गयी है , दूल्हा दुल्हन एक दूसरे का हाथ पकडे साथ साथ मोमबत्ती जलाकर एक नये उजाले की ओर कदम बढ़ा रहे हैं, पश्चिमी सभ्यता के अनुसरण में अग्रणी देश में भी मोमबत्ती को जलाकर न की बुझाकर , सुनहरे भविष्य की कामना मुझे दिल से भा चुकी है मेरे लिए ये हैं "मोमेंट ऑफ़ दी इवेंट" !!

स्टेज के परदे पर आकर्षक कृत्रिम आतिशबाजी को निहारती नवदम्पती, जीवन में साथ चलने की तैयारी में मालूम पड़ते हैं. फोटोग्राफर इस क्षण को कैद करते है साथ देते हैं उन्हें मेरे जैसे अनेक लोग अपने मोबाइल फ़ोन के कॅमेरे के साथ.

अब स्टेज पर संयोजक थे, दृश्य बदल सा गया और शुरू हुआ एक लम्बा दौर " पार्टी गेम्स" का. सभी इसमें गहरी दिलचस्पी ले रहे थे क्या बच्चे , क्या बुज़ुर्ग , क्या जवान सब मशगूल ... गेम्स में इनाम पाने की लालसा उम्र के दायरे लाँघ रही थी. इनाम का छोटा या बड़ा होना, जीत के उन्मुक्त इजहार के लिए बाधा नहीं था, ऐसा लगा मानो अपनी प्रतिभा के प्रस्तुतीकरण का आज ही एकमात्र अवसर! हिंदी चीनी भाई भाई नारा सार्थक सिद्ध होने के लिए पर्याप्त.

चौथे और अंतिम दौर की शुरुवात में टेबल पर फलों सी भरी प्लेटें खाने के समाप्त होने का इशारा ठीक उसी तरह कर रही थी , जैसे आपणो राजस्थान में पापड़ का परोसना.

खाना तो समाप्ति पर था पर पीना नहीं. नवदंपत्ति को हर टेबल पर जाकर सभी को धन्यवाद देना समारोह की महत्वपूर्ण कड़ी थी लिहाज़ा सबके गिलास फिर से भरे जाने लगे.

भारतीय विवाह समारोहों में प्रायः दूल्हा दुल्हन स्टेज पर विराजते हैं और सारे अतिथी अपनी बारी की प्रतीक्षा के बाद स्टेज पर पहुँचकर नवदंपत्ति को आशीर्वाद देते हैं , यहाँ भी आशीर्वाद की प्रक्रिया तो है पर कुछ अलग नवदंपत्ति को टेबल के हर व्यक्ति के साथ ग्लास टकराकर "कम्पे" कहते हुऐ ग्लास में जो भी हो उसे पीना था और सबसे शुभकामनायें स्वीकारनी थी. अब दूल्हे ने टेबल पर बैठे सभी पुरुषों को एक सिगरेट पकड़ने का आग्रह किया, एक सज्जन ने ना कहा फिर मैंने, अब जिनके पास सिगरेट थी उनकी सिगरेट को दुल्हन ने खुद लाइटर से जलाकर सिगरेट का लुफ्त उठाने में मदद की बड़ी स्टाइल में. धूम्रपान की आदत को विवाह की कमोबेश रस्म या परम्परा बने हुए देखना मन को जरूर खटका.

विवाह जैसा समारोह हो और उपहारों की बात न हो ये तो संभव न था लिहाज़ा चटकदार लाल लिफाफे में उपहार राशि जिसे "हॉन्ग बो " कहते हैं मैंने भी दी नवदंपत्ति को. अच्छे भविष्य और शकुन का परिचायक माना जाता है लाल रंग. मुझे प्रतिउपहार में मिला दिल के आकार का चॉकलेट का डिब्बा !!

बहरहाल अब फोटो होना था, मेरा परिचय कराया गया नवदम्पति से. न उन्हें अंग्रेजी आती थी न मुझे चीनी , पर मुलाकात अपनापन लिए थी , एक गैर चीनी का उनकी शादी में आना उनकी साख को बढाने वाला था वहीं मेरा चीनी शादी में जाना मेरे अनुभव को बढाने वाला था लिहाज़ा हम सभी कुछ देर तक उन क्षणो को संजोये खड़े रहे.

फिर समारोह से विदा ली, परदेश में विवाह की रस्मों, रीती रिवाजों से रूबरू होने की विशेष प्रसन्नता लिए यादगार रही चीन की बैंड बाजा बारात !!!



लहरों की बांसुरी

(एक अनुरोध: कहानी पूरी पढ़े बिना मेरे या कहानी के बारे में कोई राय न बनायें)

सूरज प्रकाश

अभी वाशरूम में हूँ कि मोबाइल की घंटी बजी है। सुबह-सुबह कौन हो सकता है। सोचता हूँ और घंटी बजने देता हूँ। पता है जब तक तौलिया बाँध कर बाहर निकलूंगा, घंटी बजनी बंद हो जायेगी। घंटी दूसरी बार बज रही है, तीसरी बार, चौथी बार। बजने देता हूं। बाद में भी देखा जा सकता है, किसका फोन है।

बाहर आकर देखता हूँ अंजलि का फ़ोन है। कमाल है, अंजलि और वह भी सुबह-सुबह। उनसे तो बोलचाल ही बंद हुए महीना भर होने को आया।

फोन मिलाता हूँ - हैलो, आज सुबह-सुबह, सब ठीक तो है ना?

मेरी हैलो सुने बिना सीधे सवाल दागा जाता है -इतनी देर से फोन क्यों नहीं उठा रहे?

बताता हूं -नहा रहा था भई और मैं नहाते समय अपना मोबाइल बाथरूम में नहीं ले जाता।

- डोमेस्टिक एयरपोर्ट पहुँचने में आपको कितनी देर लगेगी? मैं हैरान होता हूं। अंजलि और मुंबई एयरपोर्ट पर?

मैं कारण चाहता हूँ लेकिन वही सवाल दोहराया जाता है - डोमेस्टिक एयरपोर्ट आने में आपको कितनी देर में लगेगी?

मैं बताता हूँ- ट्रैफिक न मिले तो पन्द्रह मिनट, नहीं तो आधा घंटा।

- हमम, तो आप एक काम कीजिए। तीन दिन के लिए कैजुअल से कपड़े एक बैग में डालिये, गाड़ी निकालिये और मुझे आधे घंटे बाद डोमेस्टिक एयरपोर्ट ए-वन के अराइवल गेट पर मिलिये। अभी फ्लाइट लैंड हुई है,तब तक मैं भी बाहर आ ही जाऊंगी।

मैं हैरान होता हूँ-आप सुबह-सुबह बंबई में कैसे? मेरी बात नहीं सुनी जाती। अंजलि अपनी बात दोहराती हैं- मैं वेट करूंगी।

मैं सोच में पड़ गया हूं - अंजलि बंबई आयी हैं। अभी फ्लाइट से उतरी भी नहीं हैं। मुझे एयरपोर्टपर ही बुलाया है और तीन दिन के लिए कैजुअल कपड़े भी डालने के लिए कह रही हैं। पता नहीं क्या है उनके मन में।

याद करता हूँ,कल ऑफिस की एक ज़रूरी मीटिंग में मेरा होना बेहद ज़रूरी है। देखें, ये तो अंजलि से मिलने के बाद ही पता चलेगा कि वे क्या चाहती हैं। मैं फटा-फट तैयार होता हूँ। सफ़र के लिए ज़रूरी सामान और कपड़े बैग में डालता हूँ। ब्रेकफास्ट का टाइम नहीं है। गाड़ी निकालता हूँ। अभी गेट से बाहर निकला ही हूं कि फिर अंजलि का फोन है।

गाड़ी एक तरफ खड़ी कर के पूछता हूँ-अब क्या है?

वे पूछती हैं -कहाँ तक पहुंचे?

मैं बताता हूँ-अभी गेट से बाहर निकल ही रहा हूँ।

एक और आदेश थमाया जाता है -तकलीफ तो होगी,ज़रा वापिस जा कर अपना लैपटॉप लेते आओ। वजह मत पूछना प्लीज़।

मैं पूछना चाहताहूँ- ये सब क्या हो रहा है,लेकिन उन्होंने इतने प्यार से कहा है कि कुछ कहते नहीं बना। वापिस जा कर लैपटॉप लेकर आता हूँ।

घर से निकलने में ही दस मिनट हो गए हैं। सुबह हर मिनट के बढ़ने के साथ पर ट्रैफिक दुगना होता चलता है। सुबह का ट्रैफिक कभी वक्त पर कहीं पहुंचने नहीं देता। मेरी किस्मत अच्छी है कि बहुत ज्यादा ट्रैफिक नहीं है। घड़ी देखता हूं - सात पचपन। इसका मतलब अंजलि ने सुबह 6 बजे या उससे भी पहले की फ्लाइट ली होगी। लेकिन वे तो मेरठ रहती हैं। इसका मतलब कल रात से सफ़र में होंगी या रात को ही दिल्ली आ गयी होंगी।

मेरी फेस-बुक फ्रेंड हैं अंजलि। उनसे पहली बार मिल रहा हूँ। उनकी तस्वीर भी नहीं देखी है। पहचानूंगा कैसे। सारा झगड़ा ही तो फेसबुक पर तस्वीर लगाने को हुआ था और इस चक्कर में हममें महीने भर से अबोला चल रहा था। जाने दो। वे खुद ही पहचानेंगी मुझे।

अभी एयरपोर्ट पहुंचने ही वाला हूं कि उनका मैसेज आ गया है- वेटिंग नीयर डीकोस्टा कॉफी शॉप। मैं मुस्कुराता हूं। पहचानने की समस्या उन्होंने खुद ही सुलझा दी है। गाड़ी धीरे-धीरे अराइवल गेट के पास बने कॉफी शॉप की तरफ ले जाता हूँ। दूर से ही नज़र आ गयी हैं। बेहद खूबसूरत। नीली टी-शर्ट नीली और ब्लैक ट्राउज़र में। वे ही होंगी। उनके पास गाड़ी रोकता हूं। वे मुझे देखते ही हाथ हिलाती हैं। गाड़ी बंद करता हूँ और उनकी तरफ बढ़ता हूं।

वे तपाक से मेरी तरफ बढ़ती हैं। हंसते हुए कहती हैं -वाव, डैशिंग। और उन्होंने मुझे हौले से हग किया है। मैं मुस्कुरा कर उनके दोनों हाथ दबाता हूं - वेलकम अंजलि। वे हंसते हुए मेरे हाथ देर तक थामे रहती हैं। मैं इस रस्म अदायगी के बाद उनका बैग डिकी में रखता हूँ और उनके लिए कार का दरवाजा खोलता हूं। वे बैठती हैं।

मैं गाड़ी स्टार्ट करते समय पूछता हूं -अंजलि, माय फेसबुक फ्रेंड नाउ टर्न्ड इनटू रीयलफ्रेंड। बतायेंगी, हम कहां जा रहे हैं?

वे मुस्कुरा कर कहती हैं - हम सीधे दमन जा रहे हैं। मैं एतराज़ कहना चाहताहूँ कि कल एक मीटिंग है जिसमें मेरा रहना बेहद ज़रूरी है लेकिन कुछ नहीं कहता। मीटिंग्स रोज़

चलती रहती हैं। मीटिंग में मेरे न रहने से आसमान नहीं टूट पड़ेगा। किसी भी मीटिंग से ज्यादा ज़रूरी तो फेसबुक फ्रेंड से एक्चुअल मीटिंग है। इस मीटिंग के बीच में कोई मीटिंग नहीं आनी चाहिये। जवाब में मैं मुस्कुराता हूँ।

कहताहूँ- जैसी आज्ञा महाराज।

वे मुस्कुराती हैं - अच्छे बच्चे की तरह गाड़ी चलाइये।

जवाब में मैं मुस्कुराता हूँ। पूछता हूँ-अचानक इस तरह मुंबई में सुबह-सुबह। अगर मैं न मिलता या शहर में न होता तो आप क्या करतीं लेकिन वे मेरे किसी सवाल का जवाब नहीं देतीं। वे गुनगुना रही हैं, बाहर का नज़ारा देख रही हैं या अपने मोबाइल से खेल रही हैं।

बात करने की नीयत से मैं पूछताहूँ-ब्रेकफास्ट लिया है?

वे बताती हैं -नहीं, सिर्फ कॉफी ली थी। ब्रेकफास्ट आपके साथ ही लेना है। हाइवे पर कहीं ढाबे पर करेंगे।

मैं पूछ ही लेता हूं -अचानक मुंबई आना और एयरपोर्ट से ही दमन की तरफ चल देना। कोई खास बात?

वे मुझे देखती हैं - कोई और बात करो। आप इस बारे में मुझसे कोई सवाल नहीं पूछेंगे। बस ये जान लीजिये कि इन तीन दिनों में आप मेरे मेहमान हैं और मेहमान ज्यादा सवाल पूछते अच्छे नहीं लगते। मैं मुस्कुराता हूं। कुछ नहीं कहता। जानता हूं मेरे किसी भी सवाल का जवाब ऐसे ही मिलना है। मुझे भी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। हम तीन दिन एक साथ हैं ही। खुद ही बतायेंगी। नहीं भी बतायें तो मुझे क्या। मेरे साथ एक बेहद खूबसूरत दोस्त हैं जो पहली बार मिल रही हैं और अपने साथ तीन दिन दमन जैसी खूबसूरत जगह पर बिताने का न्यौता दे रही हैं। सबसे बड़ा सच तो यही है जो सामने है।

हम विरार पार चुके हैं। साढ़े नौ बज रहे हैं। हाइवे का ट्रैफिक दोनों तरफ अपनी गति से चल रहा है।

तभी अंजलि ने मुझसे कहा है - मैं एक ऐसा काम करने जा रही हूं जो मेरे जैसी शरीफ लड़की को इस तरह से नहीं करना चाहिये। आप थोड़ी देर के लिए मेरी तरफ मत देखना और अपना सारा ध्यान ड्राइविंग पर लगाना। मैं इशारे से कुछ पूछना चाहताहूँ लेकिन वे बनावटी गुस्से में मेरी तरफ देखती हैं -मैं बहुत अन्कम्फर्टेबल महसूस कर रही हूं। कुछ चेंज करना है।

मैं फिर पूछना चाहता हूं, वे घुड़क देती हैं - कितने सवाल पूछते हैं आप। मैं सॉरी कहता हूं अपना सारा ध्यान ड्राइविंग पर लगाता हूँ। मैं कपड़ों की सरसराहट महसूस कर रहा हूं। मैं चाहते हुए भी उनकी तरफ नहीं देखता।

दो तीन मिनट बाद मैं महसूस करता हूँ कि उनका बैग खुला है और कुछ रख कर बंद किया गया है। उनकी खिलखिलाहट सुनायी दी है -श्रीमानजी, अब आप इस तरफ देख

सकते हैं। मैं इशारों ही इशारों में पूछता हूँ-क्या किया है। वे नकार देती हैं। मैं मुंह बिचकाता हूं - मत बताओ। थोड़ी देर बाद वे खुद ही बताती हैं - कुछ खास नहीं।सब ऑनलाइन शॉपिंग की करामात है। कल ही अंडरक्लोथ्स आये थे। चेक करने का मौका नहीं मिला। सुबह साढ़े तीन बजे तैयार हो कर घर से निकली थी और तब से सांस अटकी हुई थी। अब जा कर उससे मुक्ति पायी है तो जान में जान आयी है।

मैं हैरान होता हूं - तो अभी टी-शर्ट भी उतारी थी क्या?

वे मासूमियत से जवाब देती हैं -आप बुद्धू हैं, उसके बिना वो कैसे उतारती?

मैं बनावटी गुस्से से कहता हूं -कमाल करती हैं आप भी। हाइवे पर चलती गाड़ी में आगे की सीट पर बैठे हुए इस तरह से ड्रेस चेंज करना। आप कैसे कर पायीं?

वे हंसती हैं - वेरी सिंपल। पहली बात, आपसे पूछ के किया। दूसरे, हमारी गाड़ी इस समय कम से कम100 की स्पीड से चल रही है। किसी गाड़ी ने हमें ओवरटेक नहीं किया और किसी ने नहीं देखा। तीसरे, सामने से जो गाड़ियां आरही हैं, उनमें बैठे लोगों को सेकेंड का दसवाँ हिस्सा मिला होगा यह देखने के लिए कि मैंने अपनी टी-शर्ट उतार कर फिर पहनी है। वे गाड़ी वाले वापिस आ कर एक्शन रिप्ले देखने से रहे। यहां मामला कब का निपट चुका है। यहाँ तक कि आप जो कि मेरे पास इतने नजदीक बैठे हैं,कहाँ देख पाए कि मैंने क्या किया है। मैं न बताती तो।।।।

मैं हैरान होता हूँ कि मेरठ जैसे परंपरागत शहर में रहने वाली अंजलि इतनी बोल्ड हो सकती हैं। जानता हूँ मेरे अगले सवाल का जवाब भी दुधारी तलवार की तरह ही दिया जायेगा। बात खत्म हो जाने दे देता हूं।

तभी अंजलि ने मुझे गाड़ी किनारे कर के रोकने के लिए कहा है। मैं इशारे से पूछता हूँ-क्याहै अब।

वे झिड़कती हैं - कहा ना, गाड़ी रोकें। मैंने गाड़ी किनारे लगायी है। वे बाहर निकली हैं।मुझे भी बाहर आने के लिए कहा है। हम आमने सामने हैं। उन्होंने मुझे तपाक से गले लगाया है। मैं इस अचानक प्यार भरे हमले से घबरा गया हूं।समझ नहीं पा रहा हूँ ये क्या दीवानापन है। कुछ तो सोचें,कहाँ क्या कर रही हैं, कहां कर रही हैं और क्यों रही हैं। अजब पागलपन है इस महिला में। सारे अंदाज़ निराले।

वे तर्क देती हैं -इतनी तेजी से आती-जाती गाड़ियों में बैठे लोगों को क्या परवाह और किसकी परवाह कि कौन क्या कर रहा है। मेरा मन था कि जब हम मिलें, तपाक से गले मिल कर मिलें। एयरपोर्ट पर हो नहीं पाया तो यहीं सही। इस बार भी मेरे पास उनकी बात का कोई जवाब नहीं।

तभी वे ड्राइविंग सीट की तरफ बढ़ी हैं और मुझे पैसेंजर सीट पर बैठने का इशारा किया - तो ये चाल थी मदाम की मुझसे ड्राइविंग सीट हथियाने की। वैसे ही कह दिया होता। मना थोड़े ही करता।

वे बहुत संयम से गाड़ी चला रहीहैं। उन्होंने म्यूजिक ऑन किया है और फिर उसे एकदम धीमे करते हुए कहना शुरू किया है- मुझे पता है इस समय मुझे ले कर आपके मन में बहुत से सवाल जमा हो गए होंगे और आप डर भी रहे होंगे कि मैं आपके अगले सवाल का जवाब भी गोलमाल ही दूंगी। क्यों है ना ऐसा? पूछा है उन्होंने।

मैंने इतनी देर में पहली बार उनकी तरफ ध्यान से देखा है। वैसे भी ड्राइविंग करते समय साथ वाले को इतने ध्यान से देखने का मौका ही कहां मिल पाता है। बेहद खूबसूरत अंडाकार चेहरा। कंधे तक लहराते खुले बाल, कंधे एक दम तने हुए जो आत्म विश्वास से ही ऐसे हो सकते हैं। शानदार सुगठित देहयष्ठि जिसे बार-बार मुड़ कर देखने को जी चाहे।

सही कहा गया है कि महिलाएं पुरुषों की निगाहों के बारे में अतिरिक्त रूप से सजग होती हैं। सामने सड़क पर देखते हुए भी उन्होंने इस तरह से मेरा देखना ताड़ लिया है। झट से पूछ भी लिया है -क्या देख रहे हैं इतनी देर से। आपकी नीयत तो ठीक है जनाब।

मैं इतनी देर में पहली बार खुल के हंसा हूं - मेरी नीयत को क्या होना जी। हम तो आपके मेहमान ठहरे। जो भी रूखा-सूखा मिलेगा, गुज़ारा कर लेंगे।

हंसी हैं अंजलि - बड़े आये रूखे सूखे खाने वाले। अब सबसे पहले तो कहीं नाश्ते का इंतज़ाम किया जाये। अभी उन्होंने कहा ही है कि दूसरी तरफ वाली सड़क पर कई बार एंड रेस्तरां के बोर्ड नज़र आने शुरू हो गये हैं। वे खुश हो गयी हैं- लो जी बन गया आपका काम। रूखे सूखे खाने वाले जी। और उन्होंने गाड़ी यू ट्रेन करके एक अच्छे से बार एंड रेस्तरां के सामने खड़ी कर दी है और मुझे इशारा किया है- आइये मेहमान जी।

वे मेरा हाथ पकड़ कर अंदर जाने के लिए आगे बढ़ी हैं तो मैंने कहा है - ये बार है। रेस्तरां साथ वाला है। वे बिना कुछ बोले मुझे भीतर घसीट लायी हैं। वेटर के आते ही उन्होंने बिना मीनू कार्ड देखे स्ट्रांग बीयर का ऑर्डर दिया है और कहा है कि नाश्ते में कुछ भी जो भी एकदम गर्म और ताज़ा हो ले आओ। फटाफट। पहले एक बीयर लाना।

मैं अंजलि के चेहरे की तरफ देख रहा हूं। किस धरती की प्राणी हैं ये। कुछ तो नार्मल भी करें। इतने बरसों से पीते हुए मैंने कभी नाश्ते में बीयर नहीं पी और ये मेरठ की रानी तो मुझसे दस कदम आगे हैं। मैं उन्हें देख कर मुस्कुरा रहा हूं। उन्होंने बीयर का गिलास उठाया है और मुझे इशारा किया है -बीयर्स।

-सुनिये, वे जैसे मेहरबान हो गयी हैं - मैं आपको सारी बातें बताऊंगी। जैसे-जैसे प्रसंग आयेगा। अभी लखनऊ से आ रही हूं। मेरठ से कल आ गयी थी। एरिया लेवल की मीटिंग थी कल। आज सुबह की गोवा की फ्लाइट थी। एयरपोर्ट आकर पता चला कि गोवा की फ्लाइट कैंसिल हो गयी है। दूसरी फ्लाइट शाम को ही मिलेगी। मेरे पास तीन-चार च्वाइस थे। पहला कि टिकट कैंसिल करा के मेरठ वापिस जाती। दूसरी च्वाइस कि होटल वापस जाती, दोबारा चेक इन करती, और शाम की फ्लाइट लेती। उसका कोई मतलब नहीं था क्योंकि गोवा में आज ही पूरे दिन हमारी कंपनी का एनुअल डे फंक्शन चल रहा है और शाम की फ्लाइट ले

कर मैं डिनर के लिए मुश्किल से पहुंच पाती। तीसरी च्वाइस ये थी कि मैं कोई भी फ्लाइट लेकर किसी ऐसी जगह जाऊं मैं तीन दिन अपने तरीके से, अपने खर्चे परऔर अपनी पसंद के किसी नये दोस्त के साथ गुज़ार सकूं। पता किया तो मुंबई फ्लाइट तैयार थी। मैंने यही ऑप्शन दिया और अब तुम्हारे सामनेहूँ। वैसे मैं मुंबई होते हुए भी गोवा जा सकती थी। लेकिन तुमसे मिलना लिखा था मेरे हिस्से में तो तुम्हारे सामने हूं। अब इसमें मैं क्या करूं कि सारे दोस्तों में सिर्फ तुम्हारा ही नम्बर मेरे पास था। बाकी सब फेसबुक तक ही सीमित हैं।

- मुझे पता है समीर,मेरे तौर-तरीकों से और मेरे खुलेपन से तुम्हें अजीब लग रहा होगा और तकलीफ़ भी हो रही होगी लेकिन सच बताऊं,ज़िंदगी में पहली बार, शायद पहली बार अपनी तरह से अपने तरीके से ये तीन दिन गुजारने वाली हूँ इसलिए ज़रूरी लगा कि इस सब की शुरुआत ऐसे तरीके से करूँ कि वापिस मुड़ कर देखने की, याद करने की ज़रूरत न पड़े। और कोई अफसोस भी न रहे।

-एक बात तुमसे और शेयर करती हूं और तुम्हें यह जान कर खुशी होगी समीर कि लगातार तीसरे बरस का कंपनी का बेस्ट परफॉर्मर का एवार्ड तुम्हारी इस मित् रअंजलि को ही मिला है और मैं यह एवार्ड लेने ही गोवा जा रही थी। हंसी आ रही है, पैसे मिलते गोवा में और मैं खर्च कर रही हूँ दमन में। बस एक ही बात है, बेशक समंदर वहां भी होता, तुम न होते।

अचानक अंजलि रुकी हैं -और फिर तुमसे अपने खराब व्यवहार के लिए माफी भी तो मांगनी थी।

-किस बात की माफी? मैं हैरान होता हूं।

-जिस बात के लिए हमारा अबोला हुआ था। फेसबुक पर प्रोफाइल पिक्चर को ले कर।

-अरे वो तो मैं कब का भूल चुका।

-लेकिन मैं कैसे भूलती। बहुत खराब लग रहा था कि मैंने ये क्या कर डाला है लेकिन कोई तरीका नहीं मिल रहा था पैच-अप का। आज जब मुंबई की फ्लाइट का मौका मिला तो मुझे लगा ये सही मौका है।

मैं सिर्फ मुस्कुरा कर रह गया हूं। मामूली सी बात थी। फेसबुक पर वैसे भी किसी पोस्ट की उम्र कुछ घंटे होती है और किसी मुद्दे की उम्र बहुत हुआ तो दो दिन। बात इतनी सी थी कि एक महीना पहले मैंने अपनी फेसबुक वॉल पर लिखा था कि आज एक दुर्घटना जैसी हो गयी। रोज़ाना पाँच-सात मैत्री अनुरोध आते हैं। कई बार तो नर और नारी का ही पता नहीं चल पाता। तस्वीर की जगह फूल पत्ती, भगवान या पाकिस्तानी नायिकाएं। कुछ लोग हंसि का मोटवानी की तस्वीर लगा कर उस पर अहसान कर देते हैं। ये मैत्री प्रस्ताव किसी पार्टी के बैनर वाला था। बिना जांच पड़ताल के दोस्त बनाने के दिन लद गये। उनसे

पहचान के लिए पूछा तो उन्होंने ताना मारा कि आपकी फ्रेंड लिस्ट में कई ऐसे लोग शामिल हैं जिन्होंने अपनी तस्वीर नहीं लगा रखी है तो हमीं पे ये शर्त क्यों। बात सही थी।

आगे लिखा था मैंने कि तब पहला काम यही किया कि बिना प्रोफाइल पिक्चर के कई दोस्त विदा किये। इस अभियान में परिचित लेकिन फूल पत्ती लगाये कई दोस्त शहीद हो गए। अभी ये काम बाकी है। वे दोस्त बेशक फेसबुक से विदा हुए, मेरे जीवन में बने रहेंगे।

इसी चक्कर में मैंने अंजलि को भी अनफ्रेंड कर दिया था। बेशक सिर्फ उन्हीं के इनबॉक्स में लिखा था कि आपके गुलाब के फूल को भी मेरी सूची से हटना पड़ना रहा है ताकि कोई मुझे ये न कहे कि अनफ्रेंड करने में भी भेदभाव बरता है। लिखा था मैंने कि आप मेरी दोस्त थीं, हैं और बनी रहेंगी। अब तक वे मेरी बेहतरीन फेसबुक फ्रेंड थी। बेशक हमने कभी एक दूसरे के बारे में न तो ज्यादा जानने और न ही बताने की ज़रूरत ही नहीं समझी थी। इतने दिनों में मैंने कभी नहीं पूछा कि वे किस कंपनी में हैं और क्या काम करती हैं।

हम बरस भर से फेसबुक मित्र थे और अक्सर चैट करते रहते थे और एक दूसरे के सुख दुःख के बारे में पूछते रहते थे। हम जब भी बात करते थे, दुनिया जहान की बात करते थे। मेरी पोस्ट अंजलि बहुत ध्यान से पढ़ती थीं और उस पर अक्सर चलने वाली बहसों में हिस्सा लेती थीं। हम दोनों ने कभी मोबाइल नम्बर एक्सचेंज नहीं किये थे। इस मुद्दे के बाद पता नहीं कहां से उन्होंने मेरा मोबाइल नम्बर खोजा था और मेरी अच्छी खासी लानत मलामत कर दी थी। मेरी एक नहीं सुनी थी और दोबारा भेजी गयी मेरी फ्रेंडशिप की रिक्वेस्ट को भी ठुकरा दिया था।

सारा मामला वहीं खत्म हो गया था। मैंने एक अच्छी दोस्त को खो दिया था। सम्पर्क का कोई ज़रिया नहीं रह गया था। धीरे धीरे मैं उनके बारे में भूल भी चुका था। और अब वे ही दोस्त न केवल मेरे सामने बैठी हैं बल्कि उस बात की भरपाई करने के लिए इतना शानदार न्यौता ले कर आयी हैं।

नाश्ता करने के बाद जब हम बाहर निकले हैं तो हमें फिर से यू टर्न ले कर गुजरात की तरफ जाने वाली सड़क पर जाना है। पूछ ही लिया है उन्होंने कि ऐसा क्यों है कि सारे बार सड़क के इस तरफ ही हैं।

मैंने बताया है- बहुत आसान सी बात है। ये सड़क गुजरात की तरफ से आ रही है। गुजरात ड्राइ स्टेट है। वहां से आने वाली गाड़ियों के ड्राइवर और पैसेंजर जैसे सदियों से प्यासे होते हैं। ये सब इंतज़ाम उन प्यासों की ज़रूरत के लिए है और हमारी तरफ वाली सड़क चूंकि गुजरात जा रही है तो ड्राइ स्टेट में पी कर जाने का रिस्क लेने वाले कम होते हैं इसलिए उस तरफ बार भी नहीं हैं।

अंजलि ने सलाम में हाथ उठाया है- मान गये उस्ताद। बलिहारी है पीने वालों की।

•

गाड़ी अंजलि ही चला रही हैं। मैं अचानक सोच पड़ गया हूं। अंजलि की तरफ देख रहा हूं। लगातार तनाव में हूँ। मेरे साथ एक युवा,बिंदास और अपनी तरह से भरपूर ज़िंदगी जीने वाली महिला हैं जो तीन दिन की छुट्टी मनाने के लिए अपने साथ मुझे ले कर आयी हैं। हम बेशक फेसबुक पर एक दूसरे को जानते रहे हैं लेकिन आज अचानक पहली बार मिल रही हैं। महीने भर से चल रहे अबोले को खत्म करने चली आयी है। समझ नहीं आ रहा है कि अंजलि में क्या सोच कर अपनी इस यादगार ट्रिप के लिए मुझे चुना है। तीन घंटे पहले तय किया और बिना सोचे समझे चली आयीं। मैं न मिलता या मुंबई में ही न होता तो। ये तो और वो तो......तो...... एक साथ तीन दिन और तीन रात रहना। जब नाश्ता ही बीयर से हो रहा है तो दमन में तो वक्त बेवक्त चलेगी। पता नहीं अंजलि जीके मन में क्या हो।

हम नानी दमन पहुंच गये हैं। कई बरस के बाद आ रहा हूं तो पता नहीं इस बीच कौन-कौन से नये होटल खुल गये हैं। चेक करने के लिए मोबाइल निकालता हूं लेकिन अंजलि जैसे अपनी ही धुन में कार चला रही हैं। कुछ ही देर में हम जजीरा होटल की लॉबी में हैं।

कार वेलेट पार्किंग के हवाले करके हम रिसेप्शन पर आये हैं। अंजलि ने मुझे बैठने के इशारा किया है।

पूछा है मैंने - इस होटल के बारे में कैसे पता था? पहले कभी आयी हैं?

- जी नहीं, हम आज यहां पहली बार आये हैं और तुमसे मिलने के बाद तुम्हारी कार में बैठे हुए ही मैंने ऑनलाइन बुकिंग की थी। मैंने राहत की सांस ली है। अंजलि की पसंद और सिस्टम से काम करने के लिए उनकी तरफ तारीफ भरी निगाह से देखता हूं।

कमरे में ही जा कर पता चला है कि अंजलि ने कमरा न बुक कराके डीलक्स सुइट बुक कराया है। रूम सर्विस स्टाफ के जाते ही अंजलि ने फिर से मुझे हग किया है और मेरे गाल चुटकियों में भरते हुए कहा है - ये पोर्शन मेरा और मास्टर बेडरूम आपका ताकि हम पास रहते हुए भी दूर रहें और दूर रहते हुए भी पास रहें।

मैं भोलेपन से पूछता हूं - जरा समझायेंगी इस दूर पास का मतलब?

- सिंपल। अगर तुम कमज़ोर पड़ गये तो मैं तुम्हें संभालूंगी और कमज़ोर नहीं पड़ने दूंगी और अगर कहीं मैं कमज़ोर पड़ गयी तो तुम मुझे संभाल लेना।

तभी मैंने अंजलि को दोनों कंधों से थामा है और उनकी आंखों में आंखें डाल कर पूछा है- और अगर हम दोनों ही कमज़ोर पड़ गये तो?

अंजलि ने जवाब में मेरे कंधे दबाये हैं - मर्द हो ना, कमज़ोर होने की ही बात करोगे। ये क्यों नहीं कहते कि हम दोनों ही मज़बूत बने रहे तो कितनी बड़ी बात होगी। वे मेरा हाथ थामे मुझे सोफे तक लायी हैं। हम बैठ गये हैं। मेरे हाथ अभी भी उनके हाथों में हैं। वे मेरी आंखों में आंखें डाल कर कह रही हैं- समीर, मैं यहां कमज़ोर हो कर या कमज़ोर होने नहीं आयी हूं। मेरी पूरी फ्रेंडलिस्ट में अकेले तुम्हीं रहे जिसने कभी भी कोई लिमिट क्रास नहीं की

वरना इस प्लेटफार्म पर ऐसे लोग भी भरे पड़े हैं जिनका बस चले तो फेसबुक पर ही पहले अपने और फिर सामने वाले के कपड़े उतारने में एक मिनट की देरी न करें। वे रुकी हैं। मैं उनके चेहरे की तरफ देख रहा हूं।

कहता हूं - कहती चलें।

वे आगे कह रही हैं - बस मुझे और कुछ नहीं कहना। आओ देखें खिड़की से समंदर का नज़ारा कैसा दिखता है। हमें आये हुए इतनी देर हो गयी और अब तक हमने समंदर से मुलाकात नहीं की।

तभी दरवाजे पर नॉक हुई है। दरवाजा खोलता हूं। तीन वेटर हैं। ढेर सारा सामान लिये। फ्रूट, बिस्किट, चॉकलेट्स, कुकीज और दो वाइन बॉटल्स। एक आइस बकेट में और एक रूम टेम्परेचर पर। होटल की तरफ से कम्पलीमेंटरी बॉटल्स देखते ही अंजलि ने मुझे आँख मारी है।

हम दोनों कमरा देखते हैं। दो तरफ की दीवार पर पूरी खिड़की है। सामने हर-हराता समंदर देख कर अंजलि की खुशी के मारे उनकी चीख निकल गयी है। सामने ठाठें मारता अनंत जल विस्तार है। होटल के गार्डन की दीवार से टकराती ऊंची-ऊंची लहरें। हाइ टाइड होना चाहिये। अंजलि ने एक बार फिर मुझे अपने से सटा लिया है - हम कितने सही वक्त पर आये हैं ना। हाइ टाइड हमारी अगवानी कर रही है - लेट्स सेलिब्रेट।

और बिना एक पल भी गंवाये वे वाइन के गिलास भर लायी हैं।

वे खिड़की के सामने से एक पल के लिए भी नहीं हटना चाहतीं। समंदर को इतना पास और इतना खुश देख कर छोटी बच्ची बन गयी हैं। फटाफट वाइन खत्म की है। अब वे हड़बड़ाने लगी हैं -चलो, चलो जल्दी करो। अब नीचे चलते हैं। बाकी बातें बाद में।

वे पूछ रही हैं -स्विमिंग कॉस्टयूम लाये हैं ना?

मैं झल्लाता हूं -अंजलि जी,कपड़े रखने के लिए कहते समय आपने कहां कहा था कि हम कहां जा रहे हैं। लेकिन डोंट वरी। आप वाशरूम में जा कर चेंज करो। मैं हंसता हूं - मर्दों के लिए स्विमिंग कॉस्टयूम कहां होते हैं।

वे अपना कास्ट्यूम पहन कर उस पर बाथरोब डाल कर तैयार हैं। वे छोटी बच्ची जैसी चपल हो रही हैं समंदर से मिलने जाने के लिए।

•

अंजलि ने बहुत एन्जाय किया है। दो घंटे हो गये हैं, पानी से बाहर आने का उनका मन ही नहीं है। उजला फेनिल जल जब वापिस लौटने लगा है तब भी वे वहीं रहना चाहती हैं। मेरा हाथ थाम कर वे पानी से खूब अठखेलियां कर रही हैं। मेरे लिए भी आज का अनुभव एकदम नया और दिल के बेहद करीब है। हम दोनों पानी में जितनी मस्ती रहे हैं,लगता ही नहीं कि हम आज चार घंटे पहले ही ज़िंदगी में पहली बार मिले हैं।

हमने तय किया है कि खाना भी वहीं समंदर के किनारे गार्डन में ही खा लेंगे। नहाने की बाद में सोची जायेगी। बस एक बार दोनों ही फ्रेश वाटर का शावर ले कर आ गये हैं। हम दोनों अभी भी बाथ रोब में ही हैं। बाथरूम में शावर ले कर आते समय अंजलि बेहद खुश लग रही हैं। उनका चेहरा धूप से, नमकीन पानी की दमक से और यहां आने की, समंदर में नहाने की खुशी के मिले-जुले असर से इंद्रधनुष हो रहा है। इस बार मैं पहल करता हूं और दिन दहाड़े, सबके सामने और अरब महासागर को साक्षी बनाते हुए उन्हें गले से लगा लिया है | मैंने उनके गाल चूम लिये हैं। मन को तसल्ली दे लेता हूं कि इतने भर से हम दोनों कमज़ोर नहीं हो जायेंगे। वे इतरायी हैं। मेरी छाती पर मुक्का मारते हुए बोली हैं - यू नॉटी बाय।

लंच में अंजलि ने फिर से बीयर का ऑर्डर दिया है। जानता हूं, जब तक यहां हूं,पीने और समंदर से मुलाकातें करने का कोई हिसाब नहीं रखा जायेगा।

जब हम कमरे में आये हैं तो दोपहर के चार बजे हैं। बाथ लेने और चेंज करने के बाद मैं अंजलि से कहता हूं कि वे बेडरूम में सो जायें। इससे पहले कि वे अपना इरादा मुझ पर लादें, मैं पहले वाले रूम में सोफा कम बेड पर पसर गया हूं। लेकिन अंजलि ने मेरी एक नहीं मानी है और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बेडरूम में ले आयी हैं और बिस्तर पर धकेल दिया है- मिस्टर गेस्ट, ये आपके लिए है। मैं बाहर लेट रही हूं। और वे बाहर वाले कमरे में चली गयी हैं।

•

अचानक कुछ सरसराहट से मेरी नींद खुली है। देखता हूं अंजलि डबल बेड पर एकदम मेरे पास अधलेटी लैपटॉप में तस्वीरें देख रही हैं। कमरे में बत्तियां जल रही हैं।

टाइम देखता हूं -आठ बजे हैं। मैं उठ बैठता हूं - तो इसका मतलब मैं चार घंटे तक सोता ही रहा। मुझे जागा देख कर अंजलि मुस्कुरायी हैं और मेरे हाथ पर हाथ रख कर बेहद प्यार से पूछती हैं - चाय या कॉफी? यहीं बनाऊं या रूम सर्विस से मंगाऊं?

-आपको कौन सी पसंदहै? मैं पूछता हूं।

- देखो समीर, ये हो क्या रहा है। मैं सुबह से तुम्हें तुम कह रही हूं और तुम आप आप की रट लगाये हुए हो। हम इतने फार्मल नहीं रहे हैं दोस्त। मुझे नाम से पुकारो। अच्छा लगेगा।

मैं अचकचाया हूं - नहीं, वो क्या है अंजलि कि आपकी पर्सनैलिटी के साथ तुम शब्द फिट ही नहीं हो रहा। सुबह से कहना चाह रहा हूं लेकिन हर बार ज़बान तक आते-आते तुम अपने आप आप में बदल जाता है।

- ओके नो प्रॉब्लम। हम तुम्हारी मदद करते हैं। उन्होंने मेरा हाथ थामा है और कह रही हैं, मेरे साथ-साथ बोलो - अंजलि, चाय की तलब लगी है, चाय पिलाओ ना।

मैं हंसता हूं। अंजलि को छू कर पूछता हूं - अंजलि,तेरी चाय पीने की इच्छा है क्या, बोल, कौन-सी वाली पीयेगी। और ये कहते हुए मैं सचमुच चाय बनाने के लिए उठ खड़ा हुआ हूं।

मेरी इस हरकत से अंजलि बहुत खुश हो गयी हैं- चल समीर, आज की पहली चाय तेरी पसंद की।

अंजलि अभी भी लैपटॉप में उलझी हैं। अपनी चाय ले कर मैं भी अंजलि के पास सरक आया हूं और तस्वीरें देखने लगा हूं। वे पिकासा में तस्वीरें देख रही हैं। स्लाइड शो चल रहा है। वे लैपटॉप मेरी तरफ मोड़ देती हैं। तस्वीरें कुछ जानी पहचानी लग रही हैं। ध्यान से देखता हूं- अरे ये तो मेरी ही तस्वीरें हैं। अब मैं लैपटॉप को ध्यान से देखता हूं। ये मेरा ही तो लैपटॉप है।

अंजलि हंसती हैं- समीर, मैं 6 बजे ही जाग गयी थी। तुम गहरी नींद में थे। कुछ सूझा ही नहीं कि क्या करूं। पहले खिड़की के पास खड़ी रही। समंदर लो टाइड के कारण बहुत पीछे चल गया था। अच्छा नहीं लगा। फिर याद आया कि तुम्हें लैपटॉप लाने के लिए कहा था। बाकी सामान के साथ लैपटॉप भी कमरे में आ गया था। खोला तो पासवर्ड नहीं था।

-हमम, अकेले रहने वाले किसके लिए पासवर्ड रखेंगे। कौन से मुझे इस लैपटॉप से स्विस बैंक के खाते मैनेज करने हैं।

- हां ये तो है। मैंने इस बीच तुम्हारे म्यूजिक का, फिल्मों का और पिक्चर्स का सारा कलेक्शन देख लिया। म्यूजिक का कलेक्शन तुम्हारा बहुत अच्छा है। मैंने मार्क कर लिया है कि कौन-कौन सा लेना है। कुछ फिल्में भी। बेशक देखने सुनने का समय न मिल पाये लेकिन अहसास रहेगा कि तुमसे लिया है और मेरे पास है। ये कहते हुए अंजलि ने अपने पास ही मेरे लिए दो तीन तकिये रख दिये हैं। आओ समीर,अब जरा बताते चलो अपनी कहानी तस्वीरों की ज़ुबानी।

मैं भी बेड की टेक लगा कर लैपटॉप के सामने हो गया हूं। हम दोनों बेहद नज़दीक हैं। इतने कि एक दूसरे की सांसों की आवाज़ तक सुनायी दे। उनके खुले बालों से तो महक आ ही रही है, उनके बदन से उठती खुशबू की अनदेखी नहीं कर सकता। किसी तरह खुद पर कंट्रोल करके हर तस्वीर के बारे में उन्हें बता रहा हूं। एक अच्छी बात ये हो गयी है कि उन्होंने लगभग सारी तस्वीरें पहले से देख रखी हैं। पिकासा में हर फोल्डर पर नाम लिखा है और फोटो लेने या सेव करने का महीना और वर्ष लिखा है।

वे पूरी लगन से तस्वीरों में खोयी हुई हैं और मुझे उनके बदन की नज़दीकी परेशान कर रही है। अधलेटे होने की वजह से उनके कपड़े अस्त व्यस्त हो रहे हैं जिनके कारण खुद पर कंट्रोल करना मेरे लिए मुश्किल होता जा रहा है। मेरी कोई भी हरकत इस बेहतरीन रिश्ते को खत्म कर सकती है। मेरी ज़रा-सी जल्दबाजी मेरी सारी इज्ज़त मिट्टी में मिला देगी।

नहीं, कमज़ोर नहीं पड़ना है। उठ कर पानी पीता हूं। बाथरूम जाता हूं। हाथ मुंह धो कर कुछ हालत संभली है। घड़ी देखता हूं। पौने दस।

अंजलि से कहता हूं - क्या ख्याल है अंजलि, काफी आराम कर लिया है हमने। नीचे चलें क्या?

हां चलते हैं। बस एक मिनट।

मैं चेंज करने के बाद पहले वाले पोर्शन में चला आया हूं ताकि अंजलि तैयार हो सकें।

अंजलि तैयार हो कर आ गयी हैं। मैं देखता हूं अब उन्होंने बेहद ही खूबसूरत डिज़ाइनर टॉप और उतना ही खूबसूरत रैप अप डाला है। बेहद हलका मेकअप। मैं उनकी तरफ तारीफ भरी निगाह से देखता हूं तो उन्होंने मुस्कुरा कर नज़ाकत से अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ा दिया है। हाथ चूमने के लिए। मैंने उनका हाथ चूमा है।

हम दोनों नीचे आ गये हैं। अंजलि ने मेरा हाथ थामा हुआ है। स्टाफ मुस्कुरा कर हमारा स्वागत करते हैं। हम चलते हुए गार्डन सेहोते हुए बीच की तरफ आ गये हैं। वीक डे होने के कारण बहुत ज्यादा लोग नहीं हैं। समंदर अपनी पूरी मस्ती में है। दो तीन घंटे बाद फिर हाइ टाइड होगी और फिर समंदर पूरे उफान पर होगा।

पूछा है अंजलि ने - क्या ख्याल है, बार में बैठें, गार्डन में या सीधे ही रेत पर?

मैंने हंस कर कहा है- बार और गार्डन बार तुम्हारे शहर में भी होंगे और मेरे शहर में भी हैं। रेत पर बैठ कर ही हम शाम गुजारें तो कैसा रहे। बेशक हवा चल रही है। समंदर के किनारे बितायी गयी शाम हमेशा याद रहेगी।

इतने में रेस्तरां मैनेजर ने आकर सलाम किया है। अंजलि से उससे ही पूछा है- अगर हम रेत पर ही बैठें तो खाने पीने का इंतजाम हो जायेगा क्या?

उसने मुस्कुरा कर कहा है - श्योर मैडम। हम आपके लिए रेत पर ही आराम कुर्सियां लगा देते हैं। पीने का और खाने का इंतज़ामहो जायेगा। हम आपके लिए फुट रेस्ट भी ले आयेंगे ताकि जब हाइ टाइड आये तो भी आप वहीं बैठे एन्जाय कर सके। दैट विल दी रीयल फन। बस दो मिनट आप दीजिये, मैं सारा इंतज़ाम कर दूंगा।

वह रुका है - बाय द वे, आज की शाम आप कैसे सेलिब्रेट करना चाहेंगे?

अंजलि ने मेरी तरफ देखा है। मैंने बताया है आप दिन में दो बीयर और हाफ वाइन पी चुकी हैं।

- शट अप। ये शट अप मेरे लिए है।

रेस्तरां मैनेजर से उन्होंने कहा है कि हम आज स्कॉच लेंगे। ग्लेनलिवेट है ना आपके पास?

- यस मैम। वी हैव दिस ब्रैंड।

- तो फिर आप तैयारी कीजिये, हम पाँच मिनट में टहल कर आते हैं।

मैं हैरान हूं। विश्वास नहीं हो रहा कि अंजलि मेरठ जैसे कस्बायी शहर से आयी हैं। रहा नहीं जाता, पूछ ही लेता हूं - यार, गज़ब है तुम्हारी नॉलेज। तुम्हें ये भी पता है कि होटल के स्टॉक में कौन सी इम्पोर्टेड स्कॉच है। पहले सबसे अच्छा होटल ऑनलाइन बुक कराया, अब उनके बार की भी पूरी खबर.......

-यार, निरे बुद्धू हो तुम। तुम जब सो रहे थे तो मैंने अपना सुइट ध्यान से देखा था।वहां एक मिनी बार भी है। वहीं रखी देखी थी मैंने ये स्कॉच और दूसरी कई वाइन बॉटल्स। फ्रिज भी भरा पड़ा था। जब सामने है तो चख कर देख भी ली जाये। फिर ये शाम कहां और हमतुम कहां?

हम रेत पर नंगे पाँव टहल रहे हैं। कुल मिला कर बीच पर अँधेरा ही है। एक तरफ समंदर है और दूसरी तरफ होटलों की कतार। वहीं से जो रौशनी आ रही है,उसमें पानी पर रौशनी के कतरे अपनी चित्रकारी कर रहे हैं। बेहद रोमांटिक माहौल। मैं माहौल की तारीफ करना चाहता हूं लेकिन चुप हूं। जानता हूं कुछ भी कहूंगा तो अंजलि अभी ग्यारह टन का कोई बम मेरे सिर पर दे मारेंगी। मेरी उंगलियां अभी भी उनके हाथ में हैं।

समंदर के किनारे हम दोनों के लिए महफिल सजा दी गयी है। चारों तरफ के घने अंधेरे का मुकाबला करने के लिए एक चिमनी में मोमबत्ती जला दी गयी है। हजारों मील लम्बे समंदर के आँगन वाला हमारा कैंडिल लाइट बार तैयार है।

बेहद पुर-सुकून शाम है ये। पीछे कहीं बजता मध्यम संगीत, सामने पानी में पीछे जलती रौशनियों की झिलमिलाती परछाइयां। अब पानी सरकते सरकते हमारे नज़दीक आने लगा है। अंजलि और मैं जैसे किसी ट्रांस में हैं। सूझ ही नहीं रहा कि इस पूरे माहौल को पूरी तरह से अपने भीतर कैसे उतारें। अंजलि ने अपनी कुर्सी खिसका कर मेरे करीब कर ली है ताकि फुसफुसा कर भी बात की जा सके।

ये शाम मेरी ज़िंदगी की सबसे हसीन शाम है। स्कॉच अपना रंग दिखा रही है और इस रोमांटिक माहौल का नशा उस स्कॉच के नशे में जैसे घुल रहा है। हवा में खुनकी बढ़ गयी है और एक वेटर अंजलि को शॉल ओढ़ा गया है।

मैंने अंजलि का हाथ थाम रखा है। उन्होंने कुछ नहीं कहा है। हम दोनों ही एक दूसरी दुनिया में हैं। हमने बहुत कम बातें की हैं। बस, एक दूसरे की मौजूदगी को महसूस किया है। स्कॉच थोड़ी सी ही बची है और खाना लगा दिया गया है। मैंने बहुत कम खाया है। ऐसे माहौल में खाना खाने की सुध ही किसे है। हम हैं और हमारी तरफ हाथ बढ़ाती अनगिनत लहरें हैं जो हर बार और नज़दीक आकर हमारे पाँव थपथपा रही हैं, मानो कह रही हों, इट्स वंस इन लाइफ एक्सपीरियंस। बाट्म्स अप एंड एन्जाय अपटू द लास्ट ड्राप।

रात के साढ़े बारह बज चुके हैं। थोड़ी देर में लहरें अपना सर उठाने लगेंगी और हमें या तो उनके लिए जगह खाली करनी होगी या फिर ......

अचानक अंजलि उठी हैं। ये मैं क्या देख रहा हूं। अंजलि ने कैंडल बुझा दी है। अब तब जो थोड़ी बहुत रौशनी थी, वह भी दम तोड़ गयी है। हम जहां पर बैठे हैं, घुप्प अंधेरा हो गया है, फिर भी मैं अंदाजा लगा पा रहा हूं कि अंजलि अपने कपड़े उतार रही हैं। इससे पहले कि मैं कुछ समझ पाऊं या पूछ पाऊं, वेपूरी तरह से न्यूड हो कर सामने समंदर में समा गयी हैं।

मैं थरथरा रहा हूं। ये मैं क्या देख रहा हूं। पानी में अंजलि का होना मैं महसूस कर पा रहा हूं। उससे ज्यादा कुछ नहीं। वे जैसे लहरों से मोर्चा ले रही हैं। उठना चाहता हूं, सोचना चाहता हूं लेकिन दोनों ही काम नहीं कर पाता। आंखें बंद कर लेता हूं। जैसे मैं एक लम्बी दौड़ पूरी करके आया हूं और कुर्सी पर निढाल पड़ गया हूं। उठने की हिम्मत ही नहीं रही है। पीछे मुड़ कर देखने की कोशिश करता हूं कि होटल का कोई स्टाफ तो नहीं देख रहा लेकिन नहीं देख पाता।

और कितने रंग दिखायेगी ये मायावी अंजलि। सुबह से ही एक के बाद एक जादू दिखा रही हैं। अभी तो दो दिन बाकी हैं। अभी तो रात बाकी है। मेरे गले में जैसे कांटे उग आये हैं। गिलास की सारी स्कॉच एक ही घूँट में गले से नीचे उतारता हूं। महसूस कर रहा हूं कि वे हर आती और बड़ी होती जाती लहर से टकराती हैं, गिरती हैं और फिर उठ खड़ी होती हैं।

लगता है,अंजलि लौट आयी हैं और अब कपड़े पहन रही हैं। मैंने आंखें बंद कर ली हैं।

मेरा कंधा थपथपाया है अंजलि ने - अब चलें। मैं जैसे सपने से जागा हूं।

उठने की कोशिश करता हूं लेकिन आराम कुर्सी से उठ नहीं पाता।

इतना याद है कि अंजलि ही सहारा दे कर मुझे कमरे तक लायी थीं।

•

अचानक झटके से मेरी आँख खुली है। सिर भारी है। पता नहीं कितने बजे हैं। खिड़की की तरफ देखता हूं। समंदर शांत है और दूर लंगर डाले या चल रहे जहाजों की पांत नज़र आ रही है। मेरा पूरा शरीर तन रहा है। याद करने की कोशिश करता हूं। सोने से पहले क्या हुआ था और मैं कमरे में कैसे आया। इतना ही याद आता है कि अंजलि मुझे सहारा दे कर कमरे तक लायी थी। अंजलि।। अंजलि।। धीरे धीरे सारी इमेजेज सामने आ रही है। सौ की रफ्तार से नेशनल हाइवे पर चल रही कार में फ्रंट सीट पर बैठ कर टी शर्ट उतार कर ब्रा उतारना और दोबारा टी शर्ट पहनना, हाइवे पर गाड़ी रोक कर मुझे गले लगाना और अंधाधुंध चूमना, नाश्ते में बीयर लेना और फिर सौ की स्पीड से गाड़ी चलाना, और सुनसान बीच पर रात के अंधेरे में पूरी तरह न्यूड हो कर हरहराते समंदर से मिलने जाना। बेहद खूबसूरत हैं अंजलि।लैपटॉप पर तस्वीरें देखते हुए उनका मेरे बेहद नजदीक होना। कपड़े अस्त व्यस्त हो जाने के कारण उनके खूबसूरत और गठी हुई देह की झलक मिलना।

मुझसे मिलने, मेरे साथ हॉलीडे मनाने इतनी दूर से आयी हैं अंजलि। यू आर..... यू आर ग्रेट अंजलि। आइ लव यू अंजलि.. लव यू ... आइ नीड यू अंजलि.. अंजलि आइ नीड यू... मेरी शिरायें तन रही हैं। उठ बैठता हूं। पानी पीता हूं। अंजलि मैं कमज़ोर नहीं पड़ना चाहता लेकिन इतना मज़बूत भी नहीं हूं कि इतने खुले इन्वीटेशन को ठुकरा दूं। अंजलि.. मुझे समझने की कोशिश करना। मैं तो आपको समझ नहीं पाया। उठ कर अंजलि के कमरे में जाता हूं। नाइट लैम्प की हल्की रौशनी है। वे करवट ले कर सोयी हुई हैं। पता नहीं मैं नशे में हूं इसलिए वे ज्यादा खूबसूरत लग रही हैं या वे खुद नशे में हैं इसलिए ज्यादा खूबसूरत लग रही हैं या दोनों का नशा। समंदर में उतरती उनकी नग्न काया मैंने अभी थोड़ी देर पहले ही तो इतने पास से देखी है।। महसूस की है। अब मेरे सामने हैं अंजलि। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता अंजलि। तुम मुझे जिस मोड़ पर ले कर आयी हो, वहां से मैं खाली हाथ नहीं लौट सकता। मैं जल रहा हूं। मैं पिघल रहा हूं। मैं मर जाऊंगा।

एक झटका लगा है। मैं ये क्या कर रहा हूं। ये गलत है। कमज़ोर नहीं होना। वादा किया है अंजलि से। लेकिन अंजलि तुम खुद ही तो मुझे कमज़ोर करने के लिए एक के बाद एक जादू दिखा रही हो। क्या करूं मैं .. । जो होता है होने दो। देखा जायेगा।

मैं अंजलि के बेड के पास जमीन पर बैठ गया हूं। उनकी तरफ हाथ बढ़ाता हूं। इससे पहले कि मैं उन्हें छू पाऊं, अंजलि उठी हैं। मुझे सहारा दे कर उठाया है और मेरा हाथ थामे हुए बिना एक भी शब्द बोले मुझे मेरे बिस्तर तक ला कर लिटा दिया है। थोड़ी देर तक मैं अपने माथे पर उनके हाथ का नरम स्पर्श महसूस करता हूं। और धीरे धीरे... नींद के आगोश में...

•

सुबह अंजलि ने ही जगाया है। चाय के लिए। मैं अंजलि की तरफ देखता हूं। वे भेद भरी मुस्कुराहट के साथ गुड मार्निंग कहती हैं। मैं वाशरूम हो कर आता हूं। खिड़की के पास वाले सोफे पर बैठी हैं अंजलि।

वे चाय का प्याला मेरी तरफ बढ़ाते हुए पूछती हैं - रात कैसी कटी बाबू?

उनके संबोधन से मुझे रात की हरकत याद आती है। मैंने सिर झुका लिया है। क्या कर बैठा था मैं कल रात नशे की झोंक में।

- कोई बात नहीं, हो जाता है। मैंने कहा था ना कि तुम्हें कमज़ोर नहीं पड़ने दूंगी।

मैं अंजलि से नज़र ही नहीं मिला पा रहा हूं। किसी प्रिय की निगाहों में गिरना और खुद की निगाहों में गिरना - दोनों चीज़ें मेरे साथ एक साथ हो रही हैं। मैं उनकी आंखों में शरारत देख रहा हूं। खुद पर गुस्सा आ रहा है, मैं ऐसा क्यों कर गया।

वे पूछती हैं - और चाय लोगे?

उनके सामने से हटने का यही तरीका है कि अब चाय मैं बनाऊं वरना उनके सामने बैठा रहा तो झुलस जाऊंगा।

मैं चाय बनाने के लिए उठता हूं। अंजलि कह रही हैं - ब्रेकफास्ट के बाद ज़रा घूमने चलेंगे। वैसे भी अरब महासागर महाराज अभी आराम फरमा रहे हैं।

मुझे अच्छा लगा है कि अंजलि ने खुद ही टॉपिक बदल दिया है।

मैं चाय ले कर आया हूं। अब हम एक दूसरे के ठीक सामने बैठे हैं। एक ही तरीका है रात की बात हमेशा के लिए खत्म करने का कि मैं खुद ही रात की बात करूं और मामला रफा दफा करूं।

- रात कुछ ज्यादा ही हो गयी थी मुझे। यही तरीका है कि मैं अपनी हरकत के लिए उनकी शराब और उनके ओपन इन्वीटेशन को ही दोषी ठहरा दूं।

- बहुत ज्यादा तो नहीं जनाब बस इतनी कि हम खुद आपके बराबर ही पीने के बाद आपको सहारा देकर कमरे तक लाये थे, आपको आराम से सुलाया था। लेकिन क्या कहें.. उन्होंने ठंडी सांस भरी है- लेकिन क्या कहें आपके हसीन नशे का। उतरने का नाम ही नहीं लेता था। पहले आधी रात को आपको हमारे पास लाया, हमने दोबारा आपको आपके बिस्तर पर लिटाया, आपके सो जाने के बाद हम वापिस आये तो भी आपके नशे ने आपको सोने कहां दिया। आप रात भर जागते रहे। कभी खिड़की पर खड़े हो रहे हैं तो कभी बाथरूम जा रहे हैं। कभी उठ रहे हैं तो कभी बैठ रहे हैं।

लगता है अंजलि मेरी धुलाई करके ही छोड़ेगी। कहां तो मैंने टॉपिक बंद करने के लिहाज से शुरू किया था और ये तो उसी के बखिये उधेड़ने लगीं।

पूछता हूं -आपको कैसे पता?

-जनाब, हमें नहीं तो किसे पता होगा। आपकी हरकतों न हमें भी सारी रात जगाये रखा। उन्होंने जान बूझ कर उबासी ली है और अपने मुंह के आगे चुटकी बजायी है- हमें तो अभी भी नींद आरही हैं।

मैंने कुढ़ कर कहा है - तो रोका किसने है। सो जाइये, वैसे भी हमें कौन सा काम करना है।

वे चहकी हैं - इतना आसान है सोना? कहीं आपके भीतर का शेर फिर जाग गया तो?

मुझे कोई उत्तर नहीं सूझा है कि इस तीखी बात का क्या जवाब दूं।

कहता हूं - शेर को अपना चौकीदार बनायेंगी तो ये खतरे तो रहेंगे ही।

मेरा जवाब सुन कर वे तपाक से उठी हैं और ताली बजा कर मेरी तरफ बढ़ी हैं -क्या तीर मारा है मेरे शेर ने। खुश कर दित्ता। आ तुझे गले से लगा लूं मेरे शेर और वे सचमुच मेरे गले से लिपट गयी हैं। चलो इस बात पर एक और चाय हो जाये।

मुझे सुकून मिला है कि सारा मामला हैप्पी ऐंडिंग के साथ निपट गया है।

तय करता हूं आज दिन भर नहीं पीऊंगा। रात की रात को देखेंगे।

•

हम दिन भर खूब घूमे हैं। पैदल। एक एक दुकान में जा कर झांकते रहे। अंजलि ने ढेर सारी चीज़ें खरीदीं और सारी चीज़ें आखिरी दुकान में दे दीं कि होटल पहुंचवा दें।

खाना भी हमने एक सरदार जी के ढाबे में खाया है। सबसे ज्यादा वक्त वहीं गुज़ारा। वहां बिछी चारपाई पर पसरे रहे और अंजलि सरदार जी से घर परिवार की बातें करती रही। पता चला कि सरदार जी की पचास बरस पहले यहीं पर स्पेयर पार्ट्स की दुकान थी। लेकिन जबदेखा कि नार्थ इंडियंस यहां आकर खाने के लिए बहुत परेशान होते हैं तो पंजाब से अपने एक परिचित कुक को बुलवा कर ये ढाबा खोल लिया। अंजलि ने जब पूछा कि अपने घर से इतनी दूर घर वालों की याद नहीं आती तो बुजुर्ग सरदार जी मुस्कुरा कर बोले - ना जी, रब्ब की मेहर है। दमन और सिलवासा के ज्यादातर ढाबे मेरे बच्चों और भाइयों के ही हैं। एक एक करके सबको यहीं बुला लिया है। सुन कर हम खूब हंसे हैं। इसे कहते हैं असली इंटरप्रेनुअरशिप।

•

हम चार बजे वापिस पहुंचे हैं। कमरे में आते ही अंजलि पलंग पर पसर गयी हैं। उनका खरीदा सारा सामान आ चुका है। मैं फ्रिज खोल कर देखता हूं कि पीने के लिए नॉन एल्होकोलिक क्या रखा है। मैं अपने लिए रेड बुल का कैन निकालता हूं। अंजलि से पूछता हूं -लोगी? वे चिढ़ जाती हैं - क्या लेडीज़ ड्रिंक पी रहे हो। कुछ बीयर शीयर हो तो दो। मैं उन्हें स्ट्रांग बीयर का कैन थमाता हूं।

वे हंसती हैं। क्या ज़माना आ गया है। मर्द लेडीज़ ड्रिंक पी रहे हैं और लेडीज बेचारी... च्च्च... मैं उन्हें आंखें दिखाता हूं - बताऊं क्या?

वे हंसती हैं -क्या खा के और क्या पी के बताओगे श्रीमन?

हम दोनों समंदर को निहार रहे हैं। हाइ टाइड आ कर जा चुकी। लेकिन महासागर का विस्तार हमेशा बांधता ही है। जितनी देर देखते रहो, कभी ऐसा नहीं लगता कि हम और न देखें। अंजलि गुनगुना रही हैं।

पूछती हैं -कुछ सुनोगे?

मैं कहता हूं - नेकी और पूछ पूछ। हम बहुत अच्छे श्रोता हैं,बस हमें बदले में कोई गाने के लिए न कहे।

अंजलि सचमुच बहुत अच्छा गा रही हैं। बहुत सारे ऐसे पुराने और बीते दिनों के गीत गाये हैं कि मैं हैरान हूं कि ये सारे गीत अंजलि की स्मृति का हिस्सा कब और कैसे बने होंगे। अंजलि तीस बत्तीस बरस की,या बहुत हुआ तो चौंतीस बरसकी होंगी। लेकिन वे जो

गीत गा रही हैं, सब के सब छठे सा सातवें दशक के हैं। उनके गीत सुनते सुनते कब शाम ढल गयी, पता ही नहीं चला।

•

आज डिनर के लिए अंजलि ने लॉग स्कर्ट पहना है। समझ सकता हूं। वे घर से तो गोवा के लिए निकली थीं, वहां के हिसाब से कपड़े रखे होंगे। गोवा तो गोवा में ही रह गया, मंजिल दमन बन गयी।

हम गार्डन रेस्तरां में ही बैठे हैं। समंदर ज्यादा दूर नहीं है। हाथ बढ़ा कर छू लो। अंजलि ड्रिंक्स केलिए मीनू देख रही हैं। मैं उन्हें देख रहा हूं। वे मीनू देखते हुए भी मेरा देखना ताड़ गयी हैं।

ड्रिंक्स के लिए ऑर्डर देने के बाद उन्होंने मेरी तरफ देखा है- अब क्या है?

– कुछ खास नहीं, बस एक रिक्वेस्ट है।

– कह डालो।

– कल रात की तरह समंदर से सीधे मुलाकात करने आज मत जाना।

– बस यही या और कुछ?

– यही मान लो तो बंदा जनम जन्मांतर के लिए आभार मानेगा।

– तो श्रीमान आप इसके बदले मुझे कुछ कहने की इजाज़त देंगे?

– कहो ना।

– इस तरह से मना करने की वजह? वैसे इस बात की कोई गारंटी नहीं दी जा सकती।

- मना करने की कोई खास वजह नहीं। तुम्हें इस तरह से हाइ टाइड की लहरों में घुसते देख कर डर गया था। कहीं कुछ हो न जाये।

- हां वैसे भी तुम इतने नशे में थे कि मुझे बचाने के लिए पानी तक आने की सोच भी नहीं सकते थे। कुर्सी सेउठ तक नहीं पाये। भूल गये कि कमरे तक भी मैं ही लायी थी।

मुझे अंजलि ने फिर मेरी ही बातों में फंसा लिया है। कम्बख्त हर बात की काट है इनके पास। क्या जवाब दूं।

अंजलि ने ही बात संभाली है -दरअसल तुम अचानक सोच ही नहीं पाये थे कि मैं कुछ ऐसा भी कर सकती हूं। सुबह से एक के बाद एक झटके दे रही थी और ये झटका तुम्हारे लिए इतना बड़ा था कि तुम्हारे होश ही उड़ गये। एक परायी शादीशुदा और पहली ही मुलाकात में क्या क्या खेल दिखा रही है।

बात तो अंजलि सही ही कह रही है। मैं सुबह से मिल रहे झटकों में ही डूब उतरा रहा था और रात वाला झटका तो मेरी नसों तक में उतर गया था।

मैंने अंजलि को मनाने की कोशिश की है- अब रात गयी बात गयी। अपनी बात पूरी करो ना।

-दरअसल मुझे समझ नहीं आ रहा कि शुरू से शुरू करूं। अपनी बात आज से शुरू करके वहां तक पहुंचाऊं जहां से ये दौड़ शुरू की थी या पीछे से आज तक की यात्रा करूं। बात लम्बी है और पूरी बात करने में समय लगेगा।

-कहीं से भी शुरू करें, शाम अपनी है।

- ओ के, दरअसल मैंने तुम्हें अपने बारे में बहुत कम बताया है। तुम्हें क्या, किसी को भी मेरे बारे में कुछ भी नहीं पता। कल से तुम एक चुलबुली, बेलौस, खिलंदड़ी और एक्स्ट्रा मॉड लड़की से ही मिल रहे हो जो नेशनल हाइवे पर चलती गाड़ी में अपनी ब्रा उतार सकती है, खूब पीती है, बीयर के साथ ब्रेकफास्ट करती है। फाइव स्टार होटल में ठहरते हुए एक पराये मर्द के सामने समंदर में नंगे बदन उतर जाती है और इसी तरह की हरकतें करती रहती हैं और हां, अपने फेसबुक फ्रेंड के साथ अपनी पहली ही मुलाकात में यादगार हॉलीडे मनाने के लिए दमन तक चली आती है और एक ही कमरे में ठहरती है।

- हां जितना देखा और जाना है उससे तो यही इमेज बनती है।

- तुम्हें पता है ना समीर कि मैं गोवा जाने वाली थी। एक दिन हमारी ऑफिशियल मीट रहती और दो दिन हमारे मज़े मारने के लिए इंतज़ाम था। कम से कम 100 लोग होते वहां लेकिन मैं अगली सुबह यानी मीट के अगले दिन ही गायब हो जाने वाली थी और सीधे कलंगूट बीच पर पहुंच जाती। तुम जो जानते ही हो कि कलंगूट बीच पर दुनिया भर से आये लोग दिन रात बीच पर ही नंग धड़ंग पड़े रहते हैं। मन होता है तो पानी में उतर जाते हैं और फिर आ कर बीच पर लेट जाते हैं। मैं भी यही करने वाली थी लेकिन वहां नहीं जा पायी और यहां आ गयी। जितना कर सकी, किया और आज भी करती लेकिन अब तुमने आज के लिए मना कर दिया तो यही सही। आखिर मर्द जात हो ना, कैसे सहन कर पाते।

- कहती चलो।

- दरअसल ये एक तरीका होता है। नेचर से, प्रकृति से सीधे इंटरेक्ट करने का। सीधे साक्षात्कार करने का। प्रकृति को इन्वाइट करो कि वह पूरी शिद्दत के साथ,पूरी खूबसूरती के साथ अपने सारे कीमती उपहार आपको सौंपे। आपके पोर पोर को निहाल कर दे। ये काम मैंने कई बार किये हैं समीर। धूप के साथ,बरसात के साथ,चाँदनी के साथ। मंद मंद बहती ठंडी हवा के साथ। मैंने कई कई रातें झिलमिल तारों की संगत में नंगे बदन गुजारी हैं।

-वाह। वो कैसे भला?

- अपने घर की छत पर। मैंने अपने घर की एक छत ऐसी बनवा रखी है जहां कोई नहीं झांक सकता। चारों तरफ के घरों से सबसे ऊंची छत, जहां मैं होती हूं और खुला आसमान होता है। मेरा रूफ गार्डन है। मेरी पसंद के दुनिया भर के बेहतरीन फूलों का साथ होता है वहां। ये आसमान मेरा अकेलेपन का बेहतरीन दोस्त है। सर्दियों में वह मुझे भरपूर

धूप का उपहार देता है, बरसात में पवित्र जल का उपहार मुझे मिलता है और कई बार ऐसा भी हुआ है कि मैंने चांदनी रात में पूरी पूरी रात चाँदनी को अपने नंगे बदन का स्पर्श करने दिया है। तब मैं होती हूं और मेरे ऊपर खुला आसमान होता है। मैं बहुत लकी हूं कि मुझ पर नेचर खुले हाथों अपना खजाना लुटाती है और जब मैं छत से नीचे आती हूं तो पहले से और अमीर हो जाती हूं।

- ग्रेट। लेकिन अंजलि, तुमने ये सब सीखा कहां से? मेरठ जैसे शहर में मैं सोच भी नहीं सकता कि तुम इतनी ऐय्याशी का जीवन जी रही हो।

हमारे ड्रिंक्स आ गये हैं। आज अंजलि ने वोदका मंगायी है। चीयर्स करते हुए अंजलि कह रही है - अरे मुझे ये सब सीखने के लिए कहीं नहीं जाना पड़ा। बस होता चला गया।बेशक यहां तक की यात्रा बेहद मुश्किल और इतनी तकलीफों से भरी रही कि तुम सुनोगे तो दांतों तले उँगली दबा लोगे।

- यात्रा के बारे में बाद में बताना, जो बता रही हो, ज्यादा रूमानी है। वही बताती चलो।

- तो सुनो एक शब्द होता है सेल्फ एक्चुअलाइजेशन। हिंदी में इसे पता नहीं क्या कहेंगे। लेकिन मैंने अपने जीवन में इसकी सारी अच्छी-अच्छी बातों को उतार लिया है। ये ही मेरी जीवन शक्ति है। इस अकेले शब्द ने मेरी ज़िंदगी बदल कर रख दी है। वरना मैं कहां थी, ये सोच के ही मेरी रूह कांप जाती है।

- मैंने इसके बारे में कभी गहराई से जानने की कोशिश नहीं की। बेशक तुम्हारी वॉल पर इस तरह की चीजें अक्सर नज़र आती थीं और हमेशा और ज्यादा जानने की इच्छा रही। कभी हो नहीं पाया। देखो आज कितना अच्छा मौका मिला है, तुम खुद बता रही हो।

- ज्यादा चमचागिरी करने की ज़रूरत नहीं। जो मिला है उससे ज्यादा कुछ मिलने वाला नहीं और जो नहीं मिला है, वह मिलने वाला नहीं। वे इतरायी हैं।

- अरे तुम तो बातों को फालतू में गलत मोड़ दे रही हो। इस अरब महासागर की कसम खाता हूं कि मेरी नीयत बिलकुल साफ है और अगले कई दिन तक साफ ही रहने वाली है।

- बनो मत और बको मत। मेरे सामने जब पहली बार ये शब्द आया तो मैं इसका मतलब नहीं जानती थी। डिक्शनरी में ज्यादा मदद नहीं मिली। तब घर पर कम्प्यूटर या नेट नहीं था। ये शब्द था कि मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रहा था। कुछ था इस शब्द में जो मुझे इन्वाइट कर रहा था। जानो मुझे। आखिर मैं एक साइबर कैफे में गयी तो गूगल और विकीपीडिया से इसके बारे में विस्तार से पता चला। सब कुछ नोट किया, समझा और उस पर खूब मनन किया। फिर तो जहां से भी इस शब्द के बारे में जो भी मिला, उसे समझने की कोशिश की।

अंजलि बात करते करते जैसे अतीत में चली गयी - इस फिलासफी की एक एक बात को अपने जीवन में उतारने की कोशिश की और आज मैं जो भी हूं, इस अकेले शब्द की माया की वजह से हूं।

मैं हंसा हूं- थोड़ा सा गुरू ज्ञान इधर भी दें भगवन ताकि हमारा जीवन भी संवर जाये। कब से भटक रहे हैं।

- सेल्फ एक्चुअलाइजर वह व्यक्ति होता है जो अपने जीवन को रचनात्मक तरीके से, क्रिएटिवटी के साथ जीता है और अपनी क्षमताओं का भरपूर इस्तेमाल कर बेहतर तरीके से जीने की कोशिश करता है। वह ऐसी सोच रखता है कि वह जो काम कर सकता है, उसे ज़रूर करे।

- वेरी इंटरेस्टिंग। कहती चलो।

- इस बात की कई परतें हैं जो एक एक करके खुलती हैं। मैं बहुत थोड़े शब्दों में बताऊंगी। अंजलि ने वेटर को अपना गिलास भरने का इशारा किया है। मैं हैरान हूं कि कल मैं जिस अंजलि का रूप देख रहा था, उससे बिल्कुल अलग रूप में अंजलि मेरे सामने बैठी शराब की चुस्कियां लेते हुए जीवन के गूढ़ रहस्यों पर इतने अधिकार के साथ बात कर रही है।

अंजलि ने बात आगे बढ़ायी है - ये मेरे इंटरप्रेटेशनंस हैं। शब्दों का हेर फेर भी हो सकता है। मैंने जिस रूप में समझा और अपने जीवन में ढाला, वही बता रही हूं।

- मैं समझ रहा हूं।

- जैसे वास्तविकता को सही नज़रिये से समझना और स्वीकार करना, अपने को, दूसरों को और सबसे बड़ी बात प्रकृति को, नेचर को सहजभाव से स्वीकार करना। जो जैसा है, उसे वैसे ही स्वीकार करना। ये सबसे मुश्किल होता है लेकिन एक बार सध जाये तो क्या कहने।

- वाह, क्या खूब। आगे।

- अपने अनुभव और जजमेंट पर भरोसा करना।

- हमम।

- जो करो सहज तरीके से करो और बिना आगा पीछा सोचे हुए करो। जिसे स्पांटेनियस कहते हैं। खुद के प्रति ईमानदार रहो।

-जैसे?

- साफ है कि जब हम किसी को धोखा देते हैं तो दरअसल खुद को धोखा दे रहे होते हैं। हम वही करें जो हमें रुचे। हम ये न देखें कि लोग क्या कहेंगे।

मैं हंसा हूं - मैं समझ रहा हूं। कल से देख ही रहा हूं।

- जो भी करें, पूरे मन से और पूरी तरह से डूब कर करें।

- हर हाल में अपने स्व को बचाये रखें, तारीफ में कंजूसी न करें। जो भी संबंध बनायें इतने गहरे हों कि बस।एकांत का मजा लेना सीखें। एकांत बहुत सुकून देता है। आपमें गजब का सेंस ऑफ हयूमर होना चाहिये। उससे किसी को हर्ट न करें। जो भी अनुभव लें, वे खांटी हों, बेहतरीन हों। पूरी तरह डूब कर अनुभव बटोरें। सामाजिक रूप से आप स्वीकार्य हों।एक कहावत है मेक यूअर प्रेजेंस ऑर एबसेंस फैल्ट। आप इन्सान तो हैं ही आपमें इन्सानियत भी हो। और सबसे आखिरी और अहम बात, आपके थोड़े से दोस्त हों। वे आपके इतने करीब हों कि आप उनके साथ हों तो कम्फरटेबल हों। दोस्तों के नाम पर भीड़ जमा करने का कोई मतलब नहीं होता।

- तो बंधु ये ही वे बातें हैं जिन्हें मैंने अपने जीवन में ढालने की कोशिश की है और अपने आपको कई-कई बार मरने से बचाया है।

- बहुत खूब। मैं अपनी जगह से उठा हूं और अंजलि के पास जा कर उसे उठने का इशारा किया है। मैंने अपनी तरफ से उन्हें पहली बार गले लगाया है।

- अंजलि थोड़ी देर पहले तक मैं तुम्हें जिस रूप में देख रहा था, दस मिनट की इस बातचीत ने तुम्हारा एक नया ही चेहरा मेरे सामने पेश किया है। मैं बेशक तुम्हें पिछले एक बरस से तो जानता ही रहा होऊंगा लेकिन फेसबुक पर तुम्हारा ये रूप कभी सामने नहीं आया था।

- फेसबुक चैट की एक सीमा होती है समीर। वहां आप थोड़ी देर के लिए, मन बहलाव के लिए, रोज़ाना की तकलीफ़ों से निजात पाने के लिए या रूटीन से बदलाव के लिए आते हैं। जीवन के गूढ़ रहस्यों की बात करेंगे तो आप इतने शानदार सोशल मीडिया प्लेट फार्म पर भी अकेले रह जायेंगे।

- सही है। शायद इसी वजह से हमारी से मुलाकात इतनी शानदार और यादगार रहने वाली है। एक बात बताओ अंजलि, थोड़ी देर पहले तुमने कहा था कि बेशक यहां तक की तुम्हारी यात्रा बेहद मुश्किल और इतनी तकलीफों से भरी रही कि मैं सुनूंगा तो दांतों तले उँगली दबा लूंगा। तो मोहतरमा, ये दांतों तली उँगली दबाने का मौका आज मिलेगा या कल के लिए रिज़र्व रखें इसे?

- समीर सच कहूं तो मैंने अपनी ज़िंदगी की किताब कभी भी किसी के सामने नहीं खोली है। कोई ऐसा मिला ही नहीं जिसे ये सब बताती। जिसे भी बताती वह मुझ पर तरस ही खाता जो मुझे मंजूर नहीं है। अब शायद तुम्हारे सामने ही ये किताब खुलेगी लेकिन अभी नहीं। ड्रिंक्स और डिनर के बाद हम कल की तरह रेत पर कुर्सियां डाल कर बैठेंगे। नो कैंडिल लाइट। तब हम तुम्हें अपनी कहानी सुनायेंगे। अँधेरा मेरी मदद करेगा। और उन्होंने अपना ड्रिंक रीपीट करने का इशारा किया है।

•

जिस वक्त रेत पर हमारी कुर्सियां लगायी गयी हैं बारह बज रहे हैं। अचानक अंजलि ने वेटर को बुलवाया है और एक पैकेट सिगरेट और लाइटर लाने के लिए कहा है। हमम। मैं मुस्कुराता हूं - इसी की बस कमी थी।

अंधेरे में अंजलि सामने विशाल समंदर की बार-बार पास आती और सिर पटक कर लौट जाती लहरों की तरफ देख रही हैं। जैसे खुद को अपनी कहानी सुनाने के लिए तैयार कर रही हैं। सिगरेट मंगवाना भी उसी तैयारी का हिस्सा है। उन्होंने सिगरेट सुलगायी है और पहला कश लगाया है - 17 बरस की थी जब देसराज के घर से मेरे लिए रिश्ता आया था। देसराज मेरे पति का नाम है। इस नाम ने और इस नाम के शख्स ने कभी मेरे कानों में घंटियां नहीं बजायीं। तुमने तालस्ताय का उपन्यास अन्ना केरेनिन्ना पढ़ा होगा। उस महान उपन्यास में अन्ना पहले ही पेज पर कहती है कि लोग अपने पार्टनर को उसकी सारी खराबियों के बावजूद प्यार करते हैं लेकिन मेरी तकलीफ ये है कि मैं अपने पति को उसकी सारी अच्छाइयों के बावजूद प्यार नहीं कर पाती।

-समीर मेरी भी यही तकलीफ है। मैं कभी देसराज को प्यार नहीं कर पायी और न ही मुझे ही उस शख्स का प्यार मिला। तो मैं अपनी शादी का किस्सा बता रही थी। मैं नाबालिग थी लेकिन इतनी समझ ज़रूर थी कि इतनी कम उम्र में शादी नहीं करनी चाहिये लेकिन मेरे माता पिता के सामने कुछ ऐसी मज़बूरी आन पड़ी थी कि वे चाहकर भी इस रिश्ते को ठुकरा नहीं सकते थे। मेरे पापा कस्बे के हाई-स्कूल के हेडमास्टर थे। हमारा घर भी कस्बे और गांव के बीच सी किसी जगह में था।

-कुछ दिन ही पहले हमारे घर में एक बहुत बड़ा हादसा हो गया था जिसकी वजह से देसराज जी के घर से आए शादी के प्रस्ताव को किसी भी कीमत पर ठुकराया नहीं जा सकता था। मेरे इकलौते मामा की हत्या कर दी गई थी और मेरी मामी अपने दो बच्चों के साथ हमारे ही घर पर आने को मज़बूर हो गयी थी।

-इतने अच्छे घर बार से आया रिश्ता देख कर मम्मी पापा ने अपने सिर जोड़े थे और तय किया था कि बिना दूल्हे को देखे होने वाली शादी को स्वीकार कर लिया जाए। इस गणित से बहुत सारे समीकरण हल होते थे। अच्छा खासा घर-बार था। दहेज की कोई मांग भी नहीं थी और शादी का सारा खर्चा लड़के वाले करने वाले थे। हंसी आती है समीर कि हमारे यहां दूल्हा हमेशा लड़का ही रहता है। ये बात मुझसे छुपा ली गयी थी कि ये लड़का देसराज जो जिससे मैं ब्याही जा रही थी, 31 बरस का था और मुझसे 14 बरस बड़ा था। मैं सत्रह बरस की भी नहीं थी और ग्यारहवीं में पढ़ रही थी। मेरी एक भी नहीं सुनी गयी थी और मेरी शादी कर दी गयी थी। मेरी ससुराल वालों ने मेरे बहुत जोर देने पर इतना वादा जरूर किया था कि मुझे पढ़ाई जारी रखने देंगे।

-और हम ब्याह दिये गये थे। इस विवाह से दो अपराध एक साथ हुए थे। एक तो बाल विवाह और दूसरे मेरे नाबालिग होने के कारण देसराज का मुझसे शारीरिक

संबंध।नाबालिग लड़की से शारीरिक संबंध, चाहे वह आपकी पत्नी जो न हो बलात्कार ही तो कहलायेगा। सुहागरात के समय ही मैंने देसराज को देखा था। न तो इस शादी में ऐसा कुछ था जो मुझे पसंद आता और न ही देसराज में ही ऐसा कुछ था जो मुझे बांधता।

-मेरा भरा पूरा ससुराल था। सास ससुर, दो जेठ जेठानियां, ननदें। बड़ी जेठानी की घर में चलती थी क्योंकि उनका एक बेटा था। मुझसे बड़ी जेठानी की दो लड़कियां थी। संयुक्त घर और संयुक्त खानदानी कारोबार। मेरा बहुत अच्छे से स्वागत हुआ था। बेहद सुंदर जो थी मैं। पता चला था कि मुझसे पहले देसराज कम से कम 50 लड़कियां रिजेक्ट कर चुका था। मेरा बस चलता तो हर बार मैं ही उसे 50 बार रिजेक्ट करती। घर में सबसे छोटी होने के कारण सबकी सेवा करने का अनकहा भार मुझ पर आ पड़ा था। अपने घर में काम करने की आदत थी तो निभ जाता था।

-तभी मेरे साथ दूसरा हादसा हुआ था। अपने अठारहवें जन्मदिन से एक दिन पहले मेरा मिस कैरिज हुआ था। पूरे परिवार को लकवा मार गया था। सबसे बड़ी जेठानी का इकलौता बेटा आवारा था और मुझसे बड़ी जेठानी की दो लड़कियां थीं और अब दोनों ही और बच्चे पैदा करने की उम्र लगभग पार कर चुकी थीं। परिवार की सारी उम्मीदें मुझ पर थीं और।।।।

तभी अंजलि ने पीछे मुड़ कर देखा है। थोड़ी दूर अंधेरे में एक वेटर एक ट्रे हाथ में लिये खड़ा है - पता नहीं किस चीज की जरूरत पड़ जाये।

अंजलि ने बेहद स्नेह से मुझसे कहा है -यार उससे कहो कि हमें कुछ नहीं चाहिये। यहां इस तरह से ड्यूटी बजाने की ज़रूरत नहीं है। बेशक जाने से पहले एक शॉल दे जाये। एक काम और करना समीर। उसे या किसी और को लाने के लिए मत कहना। खुद जा कर मेरे लिए व्हिस्की का एक एक्स्ट्रा लार्ज पैग नाइंटी एम एल विद सोडा लेते आओ प्लीज। और सुनो, अपने लिए मत लाना। तुम्हारी लिमिट मेरी लिमिट से कम है। डोंट टार्चर यूअर सेल्फ। बहुत प्यास लगी है डीयर। करोगे ना मेरा इतना सा काम।

मैं उठा हूं। इस समय अंजलि मुझे बेहद खूबसूरत, मासूम और निरीह बच्ची लग रही है जिसे आँचल में छुपा लिया जाना चाहिये। मैं उसका कंधा थपथपाता हूं। इट्स ओके। अभी लाता हूं।

•

मैंने अंजलि को अच्छी तरह से शॉल ओढ़ा दी है। उन्होंने व्हिस्की का गिलास थामते हुए मुझे अपनी कुर्सी उसकी कुर्सी के नज़दीक करने का इशारा किया है। अपना हाथ बढ़ाया है। मेरा हाथ थामने के लिए। मेरा हाथ उन्होंने अपनी गोद में रखकर अपने हाथ में थाम लिया है। एक लम्बा घूँट ले कर अंजलि ने कहना शुरू किया है- ऐसे कठिन समय में मुझे अपने पति की तरफ से हर तरह के मानसिक और भावनात्मक संबल की ज़रूरत थी और वही मुझसे दूर जाकर खड़ा हो गया था। यहां तक कि उसने मुझसे बात तक करनी बंद

कर दी थी जैसे मिस-कैरिज करके मैंने उसके खानदान के प्रति कोई अपराध कर दिया हो। वह जान-बूझ कर काम के सिलसिले में टूअर पर जाने लगा था। पागल था। दूसरा बच्चा होने के लिए तो उसे मेरे पास आना और सोना ही था। वह कई दिन ये दोनों काम टालता रहा। मेरे लिए भी अच्छा रहा कि मेरी सेहत इस बीच ठीक हो गयी थी। बेशक सब का मेरे प्रति व्यवहार चुभने की हद तक खराब हो चुका था।

-अब मेरा एक ही काम रह गया था। मैं घर में दिन भर अकेली छटपटाती रोती रहती और सास के ताने सुनती रहती। वहां कोई मेरे आंसू पोंछने वाला नहीं था। कुल मिला कर १८ बरस की उम्र और ग्यारहवीं पास अकेली लड़की कर ही क्या सकती थी।

-माँ-बाप ने तो अपना फर्ज पूरा कर दिया था। उनपर दोबारा बोझ डालने के बारे में सोच भी नहीं सकती थी। सास सामने पड़ती तो उसकी गालियाँ सुनती और पति के सामने पड़ती तो उनकी गालियाँ हिस्से में आतीं। मेरी जेठानी बेशक मेरी तरफदारी करती थी। वह अपनी बच्ची की तरह प्यार करती। मैं हर तरफ से बिल्कुल अकेली हो गयी थी।कोई भी तो नहीं था पास मेरे जिससे अपने मन की बात कह पाती। एक-दो बार मन में आया जान ही दे दूं।क्या रखा था जीने में। 18 बरस की उमर में ही सारे दुःख और सुख देख लिये थे।

-घर के पिछवाड़े जामुन का एक पेड़ था। उसके तले बैठ कर रोना मुझे बहुत राहत देता था। एक दिन मैंने देखा कि पीछे के घर सेहमारे आँगन में खुलने वाली खिड़की में एक युवक मुझे देख रहा है। मैं घबरा कर अंदर आ गयी । उसके बाद कई बार ऐसा हुआ।जब भी आंगन में जाती, वही युवक हाथ में कोई किताब लिए अपनी खिड़की में नजर आता। मैं उसे देखते ही सहम जाती और असहज हो जाती।डर भी लगता कि अगर मेरे घर के किसी सदस्य ने इस तरह उसे मुझे देखते हुए देख लिया तो ग़ज़ब हो जायेगा।

-एक दो बार ऐसा भी हुआ कि उसने मुझे देखते ही नमस्कार किया।मैंने कोई जवाब नहीं दिया, बस एक अहसास ज़रूर हुआ कि वह कुछ कहना, कुछ सुनना चाहता है।

-एक दिन मेरा मूड बहुत खराब था। सुबह सुबह सास ने डांटा था। पति ने उस दिन मुझ पर हाथ उठाया था और बिना नाश्ता किए घर से चले गए थे।मेरा कोई कसूर नहीं था लेकिन इस घर में सारी खामियों के लिए मुझे ही कसूरवार ठहराया जाता था।ये सबके लिए आसान भी था और सबको इसमें सुभीता भी रहता था। कसूरवार ठहराया जाना तो खैर रोज़ का काम था लेकिन पति का मुझ पर बिना वज़ह हाथ उठाना मुझे बुरी तरह से तोड़ गया था।उस दिन सचमुच मेरी इच्छा मर जाने की हुई लेकिन मरा कैसे जाये। ज़हर खाना ही आसान लगा। लेकिन ज़हर किससे मंगवाती।

-तभी मुझे याद आया कि खिड़की वाले लड़के से कहकर जहर मंगवाया जा सकता है। मुझे नहीं पताथा कि आत्महत्या करने के लिए कौन सा ज़हर खाया जाता है, कहां से और कितने में मिलता है। मेरे पास 50 रुपए रखे थे। मैंने वही लिए और एक काग़ज़ पर लिखा-मुझे मरने के लिए ज़हर चाहिये। ला दीजिये। मैंने अपना नाम नहीं लिखा था। ज्यों ही

वह लड़का मुझे खिड़की पर दिखाई दिया, मैंने उसे रुकने का इशारा किया और मौका देख कर वह काग़ज़ और पचास का नोट उसे थमा दिया।

अंजलि रुकी हैं। एक लम्बा घूँट भरा है और सामने देख रही हैं। हवा में खुनकी बढ़ गयी है और लहरें हमारे पैरों तक आने लगी हैं।

वे आगे बता रही हैं - काग़ज़ लेने के बाद उसने खिड़की बंद कर दी थी। मैं बार बार आकर देखती लेकिन फिर खिड़की नहीं खुली थी। दो घंटे बाद हमारे घर का दरवाज़ा खुला था और उस लड़के की माँ किसी बहाने से हमारे घर आयी थी। कुछ देर तक मेरी सास और जेठानी से बात करने के बाद वह बहाने से मुझे अपने साथ अपने घर ले गयी थी।

-इतने दिनों में ये पहली बार हो रहा था कि मैं अपने घर से निकली थी। उनके घर गयी थी। उस भली औरत ने मेरे सिर पर हाथ फेरा, मुझे नाश्ता कराया और फिर धीरे-धीरे सारी बातें मुझसे उगलवा ही ली। मुझे युवक पर गुस्सा भी आ रहा था कि छोटी-सी बात को पचा नहीं पाया और जा कर माँ को बता दिया। अच्छा भी लगा। मां की बातें सुन कर अब तक मरने का उत्साह भी कम हो चला था। उसकी माँ मेरी माँ जैसी थी और उन्होंने मुझे बहुत प्यार से समझाया और बताया कि मर जाना लड़ना नहीं होता। अपनी लड़ाई खुद लड़नी होती है और लड़ने के लिए जीना ज़रूरी है। इस सारे समय के दौरान युवक कहीं नहीं था। मुझे उसका नाम भी पता नहीं था।

-नितिन की मां से मिल कर जब मैं अपने घर लौटी तो मेरी हिम्मत बढ़ी थी। मुझे नितिन की माँ में अपनी मां मिल गयी थी।अब मेरा उनके घर आना-जाना हो गया। नितिन से मेरी नाराज़ गी भी दूर हो गयी थी। अब हम अच्छे दोस्त बन गए थे। अपनी मां के कहने पर उसने मेरे लिए पहला काम ये किया था कि मेरे लिए प्राइवेट इंटर करने के लिए फार्म ला कर दिया था और अपनी पुरानी किताबें और सारे नोट्स मुझे दे दिये थे। उसी से पता चला था कि वह बीए कर रहा था। अपना जेब खर्च पूरा करने के लिए दिन भर ट्यूशंस पढ़ाता था।

-अब मुझे एक बेहतरीन दोस्त मिल गया था। मैं उससे अपने मन की बात कह सकती थी। मैं अब रोती नहीं थी। नितिन ने मेरी आंखों में आंसुओं की जगह खूबसूरत सपने भर दिये थे। प्यार भरी ज़िंदगी का सपना, अपने पैरों पर खड़े होने का सपना, पढ़ने का सपना। ये सपना और वो सपना। अब किताबों की संगत में मेरा समय अच्छी तरह गुजर जाता। उसने मेरी हिम्मत बढ़ायी थी उसने और घर वालों की जली कटी सुनने और उनका मुकाबला करने का हौसला दिया था। मैं अब घर वालों की परवाह नहीं करती थी। मुझे नितिन ने ही बताया था कि आप सबकी परवाह कर के किसी को भी खुश नहीं कर सकते।सबसे बड़ी खुशी अपनी होती है। अगर खुद को खुश करना सीख लें तो आप दुनिया को फतह कर सकती हैं। कितना सयाना था और कितना बुद्धू भी नितिन।

-अब मेरा सारा ध्यान पढ़ाई की तरफ था। ठान लिया था कि कुछ करना है। सत्रह और अठारह बरस की उम्र में जो खोया था, बेशक उसे वापिस नहीं पा सकी थी लेकिन ये तो कर ही सकती थी कि चाहे कुछ भी हो जाये, और नहीं खोना है। नितिन और उसकी मां मुझे बिल्कुल कमज़ोर न पड़ने देते।

-मैंने बारहवीं का एक्जाम दिया था और अब पूरी तरह से खाली थी फिर भी नितिन की कोशिश रहती कि मैं बिलकुल भी वक्त बरबाद न करूं। कुछ न कुछ पढ़ती रहूं। उसी की मदद से एक अच्छी लाइब्रेरी की मेम्बरशिप मिल गयी थी और इस बहाने मुझे घर से बाहर निकलने का मौका मिल गया था। देसराज और सास कुढ़ते रहते। ताने मारते और मेरे चरित्र पर उंगलियां उठाते लेकिन अब मैं इस सबसे बहुत दूर आ चुकी थी। अब मैं और नितिन बाहर ही मिलते और एक बार तो मैंने हिम्मत करके उसके साथ एक फिल्म भी देख डाली थी। अभी तक न तो नितिन ने और न ही मैंने ही ये कहा था कि हम दोनों के बीच कौन-सा नाता है। मुझे नहीं पताथा, मैं पूछ भी नहीं सकती थी कि वह ये सब मेरे लिए क्यूँ करता है।

-मैं घर वालों के विरोध के बावजूद नितिन की और सिर्फ नितिन की बात मानती थी। तब मैं कहां जानती थी कि प्यार क्या होता है। देसराज मुझसे चौदह बरस बड़ा था। उसे भी कहां पता था कि प्यार क्या होता है। पता होता तो मुझे ज़हर मंगाने के लिए नितिन की मदद क्यों लेनी पड़ती और क्यों मेरी ज़िंदगी ही बदल जाती। मैं उसे अपना बेहतरीन दोस्त मानती थी। वह मेरे लिए फ्रेंड, फिलास्फर और गाइड था। वह हर वक्त मेरी मदद के लिए एक पैर पर खड़ा रहता। उसे पता था कि उसे मेरे घरवाले बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। एक जवान पड़ोसी का इस तरह से जवान और किस्मत से खूबसूरत बहू से मिलना कौन बर्दाशतकर सकता था इस लिए हमने बाहर मिलना शुरू कर दिया था। उसकी मदद के बिना मैं एकदम अधूरी थी।

-एक दिन उसने मुझे एक रेस्तरां में चाय पीने के लिए बुलाया था। ये पहला मौका था कि हम इस तरह से चाय पर मिल रहे थे। उसने मेरे सामने एक पैंफलेट रखा था। पूछा था मैंने-क्या है ये। - खुद ही पढ़ लो। उसने कहा था। एक बड़ी कंपनी अपने प्रोडक्ट की डायरेक्ट मार्केटिंग के लिए शहर में डायरेक्ट सेलिंग नेटवर्क बनाना चाहती थी। उन्हें ऐसे एजेंट चाहिये थे जो पार्टटाइम या फुल टाइम काम कर सकें। ये हमारे शहर के लिए बिल्कुल नयी बात होती। पहले एक हजार रुपये देकर सामान खरीद कर उनका एजेंट बनना था।

मैंने नितिन से कहा था न तो मेरे पास एक हजार रुपए हैं और न ही इस तरह का काम करने का अनुभव ही है। घर वालों से तो मैं किसी तरह से निपट ही लेती। नितिन बोला था -सब हो जाता है। पहला कदम मुश्किल होता है। उसके बाद के कदम आसान हो जाते हैं। मेरे लिए हजार रुपए भी नितिन ने जुटाये थे। एक तरह से जबरदस्ती ही उसने मुझे ये एजेंसी दिलायी थी। वही मेरे लिए सामान लेकर आया था।मैं समझ नहीं पा रही थी कि इस देवदूत का आभार कैसे मानूं। वह कोई नौकरी नहीं करता था।मेहनत से कमाया

अपना पूरा जेब खर्च उसने मेरे लिए एक नई ज़िंदगी की शुरुआत करने के लिए खर्च कर डाला था। घर में मेरा विरोध हुआ लेकिन मैंने भी तय कर लिया था कि पढ़ना भी है और अपने पैरों पर खड़ा भी होना है।

मुझे अपना सामान बेचने के लिए शुरुआती ग्राहक ढूंढने में बहुत दिक्कत होती थी। मेरठ जैसे शहर में विदेशी मेक अप और दूसरा सामान बेचना आसान काम नहीं था। बरसों पुरानी आदतें बदलना आसान नहीं होता।

-काम के लिए रोजाना दस बीस लोगों से मिलना पड़ता। सामान का बैग उठाये उठाये घर-घर भटकना पड़ता। हर तरह की बातें सुननी पड़ती। फलां घर की बहू घर-घर जा कर अपनी इज्ज़त नीलाम कर रही है। नितिन मेरा हौसला बढ़ाये रहता। कुछ ग्राहक भी दिलवा देता।लेकिन पहले दो-तीन महीने मेरा काम संतोषजनक नहीं रहा था। मैं थक चुकी थी। बेशक मेरा लड़की होना, सुंदर होना मेरे काम को आसान करते थे लेकिन ये तरीका मुझे मंज़ूर नहीं था। नंगी और भेदती निगाहों का सामना करना पड़ता।एक बार नितिन के कहने पर उसके एक दोस्त की बहन के घर गयी थी कुछ सामान बेचने। दोस्त की बहन तो नहीं मिली थी लेकिन उसके ससुर घर पर अकेले थे। पानी पिलाने और सामान देखने के बहाने उस बुड्ढे ने मुझे एक तरह से नोंच खसोट ही लिया था। शाम को घर आकर दो बार नहाने के बावज़ूद मैं अपने बदन से चिपकी उसकी गंदी निगाहें नहीं हटा पायी थी। ऐसा अक्सर होता।

-तभी तीन अच्छे काम हुए थे और घर में मेरी इज्ज़त बढ़ गयी थी। मैं इंटर में पास हो गयी थी। मैं दोबारा मां बनने वाली थी और कंपनी ने एक नयी स्कीम निकाली थी कि आप अपने बल पर जितने एजेंट बनायेंगी, उनकी बिक्री का लाभ भी आपको मिलेगा।

-मुझे ये तरीका पसंद आ गया था। मैं इसी मुहिम में जी जान से जुट गयी थी। मेरी किस्मत अच्छी थी कि इस मिशन में मैं कामयाब होने लगी थी। मैंने किसी को भी नहीं छोड़ा। सारे रिश्तेदारों को, परिचित लोगों को और मोहल्ले में सबको फुल टाइम या पार्ट टाइम एजेंट बनाना शुरू कर दिया । अब मैं घर पर ही नये और इच्छुक एजेंटों को बुला सकती थी। मैं अखबारों में पैंफलेट डालती, और लोगों को जोड़ती। मेरा आत्म-विश्वास बढ़ने लगा ।

तभी अंजलि ने मेरी तरफ देखा है और पूछा है-तुम्हें बोर तो नहीं कर रही। अब चौदह बरस की फिल्म देखने में कुछ वक्त तो लगेगा।

- नहीं कहती चलो। सुन रहा हूं मैं।

- बाकी बात बहुत ब्रीफ में बता रही हूं। मैंने काम करते हुए बीए किया, एम।ए किया, डिस्टैंट लर्निंग से मार्केटिंग में एमबीए किया। बेटा अब तेरह बरस का है जिसे मेरी जेठानी ही पालती है। मेरे पास इस समय 2000 एजेंट हैं जो लोकल भी हैं और दूसरे शहरों में भी। यानी मेरे ज़रिये लगभग इतने परिवार पल रहे हैं।एक एनजीओ की सर्वेसर्वा हूं। ईवा

नाम का ये एनजीओ बच्चों और गरीब लड़कियों के लिए काम करता है। मैं हर बरस बारहवीं क्लास की पाँच ऐसी लड़कियां चुनती हूं जिनकी पढ़ाई किसी न किसी वजह से छूट गयी है और वे पढ़ना चाहती हैं। उनकी पूरी पढ़ाई का खर्च मेरे जिम्मे।

-मैं इस समय अपनी कंपनी में काफी महत्वपूर्ण कड़ी हूं। हैड क्वार्टर में और बड़ी जिम्मेवारियों के लिए बार-बार बुलाया जाता है लेकिन मेरे कुछ उसूल हैं। नहीं जाती। अब मुझे खुद इतना काम नहीं करना पड़ता। मेरा डेडिकेटेड स्टाफ है जो अपना काम बखूबी करता है। हर महीने दो लाख रुपये के करीब मेरे खाते में जमा हो जाते हैं। अच्छी खासी सेविंग कर ली है। कंपनी बीच बीच में ईनाम देती रहती है और घुमाती-फिराती रहती है। अपनी पसंद का खूबसूरत घर बनाया है और मैं अपनी ही दुनिया में मस्त हूं। इस दुनिया में हर कोई नहीं झांक सकता।

पूछता हूं मैं - इस पूरे सफर में नितिन कहां रह गया?

-नितिन ने भी एमबीए किया । वह एम।ए तक तो मेरठ में ही रहा। फिर एमबीए करने अहमदाबाद चला गया था। उसकी बहुत याद आती। हम फोन पर ही बात कर पाते। जब एमबीए करने जा रहा था तो बहुत उदास था। उसने मुझे दावत दी थी और तब इतने बरसों में पहली बार उसने मेरा हाथ थामा था और प्रोपोज किया - छोड़-छाड़ दो ये सब। हम अपनी दुनिया बसायेंगे। तब तक मुझमें कुछ समझ तो आ ही चुकी थी।बेशक मैं उससे बेइंतहां प्यार करती थी लेकिन भाग कर शादी करने के बारे में सोच नहीं सकती थी।

-अहमदाबाद जाने के बाद वह चाहत और गरमी कुछ दिन तो रहे फिर धीरे धीरे कम होने लगे थे। मेरी ज़िंदगी का वह अकेला प्यार था और रहेगा, बेशक उसकी ज़िंदगी में औरों ने दस्तक दी ही होगी। जो होता है अच्छा ही होता है। आजकल यूएसए में है। मैं अपने पहले और इकलौते प्यार को कभी नहीं भूल पायी। आइ मिस हिम ए लाट। आइ स्टिल लव हिम।

- यही होना होता है जीवन में अंजलि। जो हमारा जीवन संवारते हैं, हमें उन्हीं का साथ नहीं मिल पाता।

- मैंने बहुत तकलीफें भोगी हैं समीर। वहां से यहां तक की पन्द्रह बरस की दौड़ बहुत मुश्किल रही है। कई बार यकीन नहीं होता कि ये सफर मैंने अकेले तय किया है।

- कहती चलो। मैं अंजलि को दिलासा देता हूं।

- घबराओ नहीं, मेरी बात लगभग पूरी हो चुकी है। बस दी एंड करना है। इस कहानी में आखिरी चैप्टर देसराज का है। परेश का बाप बनने के बाद उसे एक नयी दुनिया मिल गयी। उसे इस बात की कोई परवाह नहीं रही कि मैं क्या करती हूं कहां जाती हूं और हूं भी सही या नहीं। उसका पीना और बढ़ गया है।

- तीन बरस पहले मैंने उसे अपनी ही कंपनी के प्रोडक्ट की एंजेसी दिला दी है। मेरे एजेंट जितना सामान बुक करते हैं उतना ही वह बेचता है। मुझसे ज्यादा ही कमा लेता है।

हंसी आती है - वह सबको यही बताता है कि उसकी एजेंसी के बल पर ही मेरा काम चल रहा है। कई बार भ्रम भी कितने खूबसूरत होते हैं ना।

अंजलि बताती जा रही है -वह अपनी दुनिया में मस्त है, मैं अपनी दुनिया में। कहने को हम पति-पत्नी हैं लेकिन इस रिश्ते की रस्में निभाये बरसों बीत गये हैं। मैं अभी बत्तीस की हूं और देसराज छियालिसका। बेशक उससे मेरे वेसंबंध नहीं रहे हैं लेकिन फिर भी मैंने कभी उससे बेईमानी नहीं की है। खुद को पूरी तरह काम में खपाये रखती हूं। एक मिनट के लिए भी खाली नहीं बैठती। हर वक्त कुछ न कुछ करती ही रहती हूं। ध्यान, योगा, जिम, सोशल कमिटमेंट्स, एनजीओ, बच्चे और प्रकृति। सच समीर, इस सेल्फ एक्चुआलाइजेशन ने तो मेरी ज़िंदगी ही बदल दी है। मेरे सारे काम इसी से कंट्रोल होते हैं।

- मैं समझ रहा हूं अंजलि। मैं उसका कंधा थपथपाता हूं। मैं अंधेरे में अंजलि का चेहरा नहीं देख पा रहा लेकिन उसकी आवाज का दर्द बता रहा है कि वह कितनी तनहा है। दोस्त चला गया, पति न अपना था, न अपना रहा। ऐसे में उस जैसी खुद्दार लड़की खुद को कैसे संभालती होगी।

- कुछ और बताना पूछना बाकी है समीर,वह अंधेरे में मेरी तरफ देखती है।

- नहीं अंजलि, सब कुछ तो तुमने बता दिया है। सच में यकीन नहीं हो रहा कि जो अंजलि मेरे पास बैठी है, जो मुझसे पहली बार मिली है और जिसे मैं दो दिन से लगातार न सिर्फ देख रहा हूं, बल्कि पूरी शिद्दत से जिसे महसूस कर रहा हूं,यहां तक पहुंचने की तुम्हारी तकलीफ की बातें सुन कर दहल गया हूं। तुम्हें सलाम है दोस्त।

अंजलि ने मेरा हाथ दबाया है - वो सब तो ठीक है लेकिन तुमने ये नहीं पूछा कि इस गिलास से मेरी दोस्ती कब और कैसे हो गयी। वह मेज पर रखे गिलास की तरफ इशारा करती है।

मैं हंसता हूं - नहीं, मैं समझ रहा हूं। दोस्त चला गया हो, जीवन साथी कभी अपना न रहा हो और अपनी मेहनत के बलबूते पर सफलता मिलने लगी हो तो सेलिब्रेट करने के लिए कोई तो साथी चाहिये ही। तब भरा हुआ गिलास सबसे अच्छा दोस्त होता है। चाहे उसे कितनी बार खाली करो,चाहे किस भी ड्रिंक से भर दो,कोई शिकायत नहीं करता।

- सही कह रहे हो समीर। अब ये गिलास ही मेरा सबसे अच्छा दोस्त है। देसराज वैसे तो आम दुकानदार किस्म का आदमी है लेकिन एक बात उसकी बहुत अच्छी है। वह बहुत सलीके से पीता है। घर पर ही उसने एक बढ़िया-सा बार बना रखा है। उसके पास बेहतरीन कटलरी है और हर तरह की शराबों का शानदार कलेक्शन है उसके पास।

मैं हंसा हूं - तो घर का माल घर पर ही ....

- पहली बार मैंने उसके बार में से ही चुरा कर पी थी। उस दिन जब नितिन के दोस्त की बहन के ससुर ने मुझ पर हाथ डाला था। मुझे तब पता ही नहीं था कि कौन सी बॉटल में क्या है और उसे कैसे पीते हैं। बस गिलास में डाली थी और हलक से नीचे उतार ली थी।

फिर तो सिलसिला बनता चला गया। अब तो तय करना ही मुश्किल है कि देसराज ज्यादा पीता है या मैं ज्यादा पीती हूं।

-अब चलें समीर। ये पानी तो अब कुर्सी पर चढ़ कर सिर तक आने को बेताब हो रहा है।

मैं सहारा दे कर अंजलि को कमरे तक लाता हूं। कल अंजलि मुझे सहारा देकर लायी थी। आज मैं....

•

अंजलि वाशरूम में गयी हैं तो मैं पहले कमरे में ही पसर गया हूं लेकिन बाहर आते ही उन्होंने मुझे उठा दिया है - ये बेईमानी नहीं चलेगी। तुम जाओ अपने कमरे में। और मेरा हाथ थाम कर बेड रूम में ले आयी हैं।

•

अभी मेरी आँख लगी ही है कि झटके से मेरी नींद खुली है। अंजलि मेरे कंधे पर झुकी मुझसे पूछ रही हैं-क्या मैं थोड़ी देर के लिए तुम्हारे पास सो सकती हूं?

मैं उठ बैठा हूं- ओह, श्योर श्योर कम। मैंने उनके लिए तकिया ठीक किया है लेकिन वे दुबक कर छोटी सी मासूम बच्ची की तरह मेरे सीने से लग कर सो गयी हैं। मैं उनके कंधे थपथपा रहा हूं और उनके बालों में उँगली फिर रहा हूं। इस समय एक जवान और खूबसूरत औरत का मेरी बांहों में होना भी मुझमें किसी तरह की सैक्सुअल फीलिंग नहीं जगा रहा। नशे में होने के बावजूद एक अजीब साख्याल मेरे मन में आता है -औरत ही हर बार कई भूमिकाएं अदा करती है। बहन, बेटी, पत्नी, मां। मेरे सीने से बच्ची की तरह लग कर सोयी अंजलि के लिए मैं आज पिता या भाई की भूमिका निभा रहा हूं।

नींद मेरी आंखों से कोसों दूर चली गयी है। पता नहीं क्या-क्या दिमाग में आ रहा है। दो दिन में कितने तो रूप दिखा दिये इस मायावी अंजलि ने। कल सुबह का चलती कार में उनका वह रूप और अब मेरे सीने से लगी अबोध बच्ची सी सो रही अंजलि का ये रूप। कितने रूप एक साथ जी रही है ये अकेली औरत।

मैं उनके चेहरे की तरफ देखता हूं। गहरी नींद में हैं। मेरा नशा अभी बाकी है। लेकिन इतना होश भी बाकी है कि पूरी रात इस तरह बिताना मेरे लिए कितना मुश्किल होगा। कुछ भी अनहोनी हो सकती है। मैं कमज़ोर पड़ूं, इससे पहले ही अंजलि को आराम से सुलाता हूं, उनका सिर तकिये पर टिकाता हूं और हौले से उठ कर बाहर वाले कमरे में आता हूं। दस कदम चलने से ही मेरी सांस फूल गयी है जैसे मीलों लम्बा सफर करके आया हूं।

•

अचानक झटके से मेरी नींद खुली है। पेट में कुछ गड़बड़ लग रही है। तेजी से बाथरूम की तरफ लपकता हूं... ये क्या मुसीबत है। वापिस आया ही हूं कि फिर..फिर .. अभी

तो बाथरूम की टंकी ही नहीं भरी होती। क्या करूं .. अंजलि को जगाऊं... नहीं वे भी क्या करेंगी। बेचारी बच्ची की नींद सो रही हैं। लेकिन बार बार फ्लश की आवाज सुन कर उनकी नींद खुल ही गयी है। पूछती हैं- क्या हुआ समीर। और मैं यहां कैसे आ गयी। मैं तो बाहर सोयी थी समीर।

मैं निढाल सा सोफे पर पसरा बैठा हूं। बताता हूं-पेट गड़बड़ा गया है। बीस बार तो हो आया। बाहर के कमरे तक जाने और बार बार बाथरूम तक आने की ताकत ही नहीं बची है।

अंजलि उठ कर मेरे पास आ गयी हैं। मेरे माथे पर हाथ फिरा कर देखती हैं, बुखार तो नहीं है। मैं इशारे से बताता हूं -बुखार नहीं है। वे बताती हैं- रुको, मेरे पास गोली है। वे लपक कर गयी हैं और अपने बैग में से गोली ले कर आयी हैं। पानी के साथ गोली ली मैंने। अंजलि कहती हैं- लेट जाओ, लेकिन मैं ही मना कर देता हूं। उठ कर बैठने और बाथरूम भागने में दिक्कत होगी। अंजलि चिंता में पड़ गयी हैं- कितनी बार हो आये?

मैं इशारे से बताता हूं - कई बार। गिनती याद नहीं। वे सीरियस हो गयी हैं-डॉ०क्टर को बुलाने की ज़रूरत है क्या? वे घड़ी देखती हैं- तीन बज कर चालीस मिनट।

मैं मना कर देता हूं - जितना जाना था जा चुका। अब भीतर बचा ही क्या है।

अंजलि अफसोस के साथ कहती हैं- गलती मेरी है। मैं समझ गयी थी कि तुम्हारी इतनी लिमिट नहीं है। लेकिन बार-बार और हर तरह के ड्रिंक्स पिलाती रही। छी: मैं भी क्या कर बैठी। तुम्हें कुछ हो गया तो.... वे अपने आपको कोसे जा रही हैं।

मैं इस हालत में भी उन्हें समझाता हूं - ऐसा कुछ नहीं हुआ है। मैंने शायद ढंग से खाना नहीं खाया था और ज्यादा ले ली थी। अब गोली से आराम आ रहा है..

वे फिर उठी हैं और मेरे लिए जग भर के पानी में नमक, चीनी का घोल बनाया है। उसमें उन्होंने संतरे का जूस और नींबू का रस मिलाया है। वे हर पाँच मिनट बाद गिलास भर कर मुझे ये घोल पिला रही हैं ताकि डीहाइड्रेशन न हो जाये। थोड़ी देर पहले मेरे सीने से बच्ची की तरह लग कर सो रही अंजलि अब दादी मां बन कर मेरा इलाज कर रही हैं।यह पता चलने पर कि मैंने खाया ढंग से नहीं खाया था,वे मेरे लिए फ्रूट बॉस्केट में से केले ले आयी हैं और मुझे जबरदस्ती खिलाये हैं। मैं अब बेहतर महसूस कर रहा हूं लेकिन अंजलि कोई रिस्क नहीं लेना चाहतीं। उनकी नींद पूरी तरह से उड़ गयी है।

उन्हें फ्रिज में रखी हुई योगर्ट मिल गयी है। वे अब मेरे सामने बैठी अपने हाथों से चम्मच से मुझे योगर्ट खिला रही हैं। मैं उनका सिर सहलाते हुए कहता हूं -बस कर दादी मां, अब बस भी कर लेकिन वे नहीं मानतीं। घंटे भर में उन्होंने अपना बनाया एक लीटर घोल मुझे पिलादिया है।

सुबह के छः बजने को आये हैं। अब मैं बेहतर महसूस कर रहा हूं।

पिछले एक घंटे में सिर्फ दो बार गया हूं। अंजलि ने मुझे लिटा दिया है और मेरे पास बैठी हुई हैं। मैं उन्हें सो जाने के लिए कहता हूं लेकिन वे मना कर देती हैं। मेरी हालत के लिए वे अभी भी खुद को कसूरवार मान रही हैं। इस बीच वे दो बार मेरे लिए ब्लैक टी विद शुगर बना चुकी हैं। एक बार तो कंपनी देने के लिए खुद भी मेरे साथ ब्लैक टी पी है।

पता नहीं कब मेरी आँख लग गयी होगी। देखता हूं अंजलि खिड़की के पास वाले सोफे पर बैठी पेपर पढ़ रही हैं। आठ बज रहे हैं। मुझे जागा देख कर वे मेरे पास आयी हैं और प्यार से मेरा माथा चूम कर बोली हैं - गुड मार्निंग दोस्त। थैंक गॉड। तुम अब ठीक हो, वरना मैं अपने आप को कभी माफ न कर पाती।

देखता हूं - अंजलि नहा कर तैयार भी हो चुकी हैं। कॉलर वाली यलो टी शर्ट और ब्लैक ट्राउजर। ग्रेट कम्बीनेशन।

कह रही हैं -एक काम करते हैं। अब हम यहां और नहीं रुकेंगे। बेशक शाम 6 बजे की फ्लाइट है मेरी लेकिन हम मुंबई ही चलते हैं। कुछ हो गया तुम्हें तो यहां ढंग से मेडिकल एड भी नहीं मिलेगी। मैं ब्रेकफास्ट यहीं मंगवा रही हूं। तब तक तुम नहा लो। कपड़े निकाल देती हूं तुम्हारे। और मेरे मना करने के बावजूद अंजलि ने मेरे सूटकेस में से मेरे लिए पकड़े निकाल दिये हैं।

देखता हूं - येलो स्ट्राइप वाली टीशर्ट और ब्लैक पैंट। मैं कलर कम्बीनेशन देख कर हंसता हूं। वे समझ जाती हैं कि मैं क्यों हंस रहा हूं।

मुझे चीयर अप करने के लिए बताती हैं- मेरे स्टाफ में आठ लोग हैं। तीन जेंट्स और पाँच लड़कियां। सैटरडे हम किसी न किसी बहाने पार्टी करते ही हैं। एक पार्टी होती है कलर कम्बीनेशन की। अगर किसी मेल मेम्बर के कपड़ों के रंग जरा सा भी किसी फीमेल स्टाफ के कपड़ों के रंग से मैच कर जायें तो दोनों को पार्टी देनी होती है। कई बार मजा आता है कि कई लोगों के रंग आपस में मैच कर जाते हैं। अब हमारे स्टाफ मेम्बर अपने लिए कपड़े खरीदते समय ख्याल रखते हैं कि किस किस के पास इस रंग के कपड़े हैं। शनिवार को तो सबकी हालत खराब होती है। यह बताते हुए अंजलि अब एक खूबसूरत स्मार्ट एक्सक्यूटिव में बदल गयी हैं।

जब तक ब्रेकफास्ट आये और मैं नहा कर आऊं, अंजलि ने सारा सामान पैक कर दिया है और रिसेप्शन को बिल तैयार करने के लिए कह दिया है।

मेरे लिए अंजलि ने केले, सादी इडली, योगर्ट और गाजर का जूस मंगाये हैं। रास्ते के लिए उन्होंनेदो बॉटल डीहाइड्रेशन वाला घोल बना कर रख लिया है।

मेरे बहुत जिद करने पर भी होटल का बिल अंजलि ने दिया है और मुझे वेटरों को टिप तक नहीं देने दी है। हंसी आ रही है कि अंजलि नर्स की तरह मेरी केयर कर रही हैं। मेरा हाथ थाम कर नीचे लायी है, और छोटे बच्चे की तरह कार में बिठाया है। सीट बेल्ट भी उसी ने लगायी है। इतना और किया कि लिफ्ट में ही मेरे गाल पर एक चुंबन जड़ दिया था।

मैं अंजलि से कहना चाहता हूं कि तुम रात भर सोयी नहीं हो, कार मुझे चलाने दो लेकिन उन्होंने मेरी एक नहीं सुनी है।

वे बता रही हैं कि वे अगर गोवा गयी होती तो कितने खूबसूरत दिन मिस करती। वहां सब इन्फार्मल होते ही भी फार्मल ही होता और अकेले वक्त बिताने के लिए सबकी नाराजगी मोल लेनी पड़ती।

तभी मैंने पूछा है -अंजलि एक बात बताओ।

-पूछो मेरे लाल। वे सुबह से पहली बार खुल कर हंसी हैं। मुझे अच्छा लगा है कि अंजलि अब अपने उसी मूड में लौट आयी हैं जिसमें वह परसों आतेसमय थीं।

- हम परसों सुबह से एक साथ हैं। इस बीच बीसियों बार मेरा मोबाइल बजा है। मैंने कभी एटैंड किया है और कई बार नहीं भी किया है। लेकिन इस सारे अरसे में तुम्हारा मोबाइल एक बार भी नहीं बजा है।

- भली पूछी दोस्त जी। निगाहें सड़क पर जमाये अंजलि कह रही हैं- सही कहा। मेरे पास दो मोबाइल हैं। एक ऑफिस का और एक पर्सनल। दोनों में शायद ही कोई नम्बर हो जो दोनों में हो। देसराज के नम्बर के अलावा। संयोग से वह हमारा डीलर भी है और रिश्ते में पति भी लगता है। तुमसे बात करने के लिए और होटल बुक करने के लिए ही मैंने अपना मोबाइल ऑन किया था। तब से दोनों मोबाइल बंद ही हैं। ये तीन दिन सिर्फ मेरे थे और मैंने अपने तरीके से जीये। मैं अपने वक्त में किसी का दखल नहीं चाहती। किसे क्या करना है, मैंने सबको बता रखा है। कोई समस्या हो तो इंतज़ार कर सकती है।मेरा सबसे बड़ा सच मेरा सामने वाला पल है।

•

अचानक कार रुकने के कारण मेरी नींद खुली है। अरे, मैं कब सो गया पता ही नहीं चला। अंजलि की तरफ देखता हूं। वे मुस्कुरा रही हैं। उन्होंने कार साइड में रोकी है। बाहर देखता हूं - अरे, ये तो शिमला रिसार्ट है। मैं पहले भी दो एक बार यहां आ चुका हूं। इसका मतलब हम मुंबई के पास हैं।

घड़ी देखता हूं - बारह बजे हैं। अंजलि ने मेरी तरफ का दरवाजा खोला है। पता ही नहीं चला कि बात करते करते कब सो गया था।

-कैसा लग रहा है अब?

-बेहतर महसूस कर रहा हूं।

- श्रीमान जी, कितना भी बेहतर महसूस करें, आपको पीने के लिए और नहीं मिलने वाली और खाने के लिए दही चावल ही मिलेंगे।

- कोई बात नहीं सिस्टर जी। आपकी केयर में हूं तो आप मेरा भला ही सोचेंगी। हम दोनों ही हंस दिये हैं।

रिसोर्ट में बायीं तरफ रेस्तरां हैं जहां फैमिली केबिन बने हुए हैं। बहुत कलात्मक। एक तरफ लम्बा सोफा जिस पर तीन आदमी आराम से बैठ सकें और मेज के दूसरी तरफ गाव तकियों से सजा एक तख्त।

मैं तख्त पर गाव तकियों के सहारे पसर गया हूं। अचानक अंजलि सोफे से उठी हैं और बाहर चली गयी हैं। मैंने आंखें बंद की ली हैं।

अंजलि वापिस आयी हैं तो उनके हाथ में आइपैड और डीहाइड्रेशन के घोल वाली बोतल है। बोतल मेरी तरफ बढ़ाते हुए पूछ रही हैं- बोतल से पीयेंगे या गिलास मंगवाऊं?

मैं छोटा बच्चा बन गया हूं - एक शर्त पर पीऊंगा।

-बता दीजिये।

-इसके बाद आपके साथ एक आखिरी बीयर तो बनती है।

- कमाल है। रात भर की तकलीफ काफी नहीं है। चलो ठीक है। सिर्फ एक गिलास मिलेगी। लो पहले इसे पीओ और उन्होंने बोतल खोल कर मेरे मुंह से लगा दी है।

अंजलि पूछ रही हैं-यहाँ से 6 बजे की फ्लाइट के लिए कितने बजे निकलना ठीक रहेगा?

- वैसे तो तीस चालीस मिनट का रास्ता है लेकिन हाइवे का मामला है। हम साढ़े तीन बजे निकलेंगे।

-तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है ना अब?

- नहीं, एकदम ठीक कर दिया तुम्हारे ड्रिंक ने।

अंजलि ने वेटर को पीने और खाने का ऑर्डर दिया है। मेरे लिए एक गिलास बीयर और कर्ड राइस पर सहमति हो गयी है।

अंजलि अपने आइपैड में तस्वीरें दिखा रही हैं। वे भी आराम से तख्त पर बैठ गयी हैं।

हर तस्वीर से जुड़ा कोई न कोई मजेदार किस्सा शेयर कर रही हैं। इस समय वे बहुत अच्छे मूड में हैं। मैं अधलेटा हूं और वे मेरे सिर की तरफ बैठी हैं। अचानक उन्होंने मेरा सिर अपनी गोद में रख दिया है। मैंने आंखें बंद कर ली हैं। वे मेरे चेहरे की तरफ झुकी हैं और मेरा माथा सहला रही हैं। उनके बालों ने मेरे चेहरे पर एक झीना जाल डाल दिया है।

अचानक एक गरम बूंद मेरे गाल पर गिरी है। वे निःशब्द रो रही हैं। आंसुओं से उनका चेहरा तर है। मैं कुछ कह नहीं पाता कि क्या कहूं। वे रोये जा रही हैं। मैं हाथ बढ़ा कर उनके आंसू अपनी उँगली की कोर पर उतार लेता हूं। वे मेरी उँगली अपने मुंह में दबा लेती हैं।

कह रही हैं - मैंने तुम्हें बहुत परेशान किया।

-नहीं तो?

- मैं अचानक आयी, तुम्हारा शेड्यूल अपसेट किया। कितनी उम्मीदें जगा दीं और सताया।

-नहीं तो?

- जानती हूं कि पास में युवा और खूबसूरत लड़की हो तो किसी का मन भी डोल सकता है। पता नहीं तुम खुद पर कैसे कंट्रोल कर पाये।

मैं उनके बाल सहलाते हुए हंसता हूं - बहुत आसान था।

वे हमम करके इशारे से पूछती हैं- वो कैसे भला?

-कुछ तुम्हारी शर्तें, कुछ मेरी वैल्यूज, कुछ मेरे डर और कुछ तुम्हारी वैल्यूज।

अंजलि ने मेरे गाल पर चपत मारी है- और?

- एक और बात भी थी कि वह सब करने के लिए खुद को मनाना और तुम्हें तैयार करना बिलकुल भी मुश्किल नहीं था। पता तो था ही कि तुम नार्मल सेक्स लाइफ तो नहीं ही जी रही हो। ऐसे में मेरा काम आसान हो जाता लेकिन ऐसे बनाये गये संबंधों का एक ही नतीजा होता है।

-क्या?

- या तो वे हमेशा के लिए उसी तरफ मुड़ जाते हैं या बिल्कुल खत्म हो जाते हैं। और ये दोनों बातें ही मैं नहीं चाहता था।

-कहते चलो।

- ऐसे करने का मतलब होता एक अच्छी दोस्त को हमेशा के लिए खो देना जो कि बहुत बड़ा नुक्सान होता।

अंजलि झुकी हैं और पहली बार मेरे होंठों को क्षण भर के लिए अपने होठों से छू भर दिया है- शायद मैं इसी भरोसे पर यहाँ और तुम्हारे पास ही आयी थी कि मैं एक मैच्योर दोस्त से मिलने जा रही हूं। मेरे लिए भी तुम्हारी मस्त कर देने वाली मौजूदगी में अपने आपको नियंत्रण में रखना इतना आसान नहीं था। तुम्हें शायद पता न हो, मैं दोनों रात एक पल के लिए भी नहीं सोयी हूं। पहली रात तुम कमज़ोर पड़े थे तो मैंने तुम्हें सँभाला था। बेशक लहरों में बह जाना मेरे लिए भी सहज और आसान होता। दूसरी रात मैं कमज़ोर पड़ गयी थी और तुम्हारे पास चली आयी थी कि जो होना है हो जाये लेकिन कल रात तुमने मुझे कमज़ोर होने से बचा लिया और उठ कर दूसरे कमरे में चले गये थे। तब मैं नींद में नहीं थी। तुम्हारी नजदीकी का पूरा फायदा उठाना चाह रही थी लेकिन तुमने मौका ही नहीं दिया और भाग खड़े हुए ।

मैंने नकली गुस्सा दिखाया है- यू चीट।

- थैंक्स समीर।

- अब किस बात का थैंक्स भई?

- इस यात्रा में मेरे सेल्फ एक्चुअलाइज़ेशन के अनुभवों में एक और आयाम जुड़ गया है समीर।

मैं भोला बन गया हूं - वो क्या?

- मेरा ये अहसास और पुख्ता हो गया है कि देह से परे भी दुनिया इतनी खूबसूरत हो सकती है। सही कह रहे हो समीर कि हमारी ये यात्रा अगर देहों से हो कर गुज़रती तो उन्हीं अंधी गलियों में भटक कर रह जाती और हम उससे कभी बाहर न आ पाते। थैंक यू माय दोस्त,थैंक यू। हम दोनों ने ही आगे की मुलाकातों के रास्ते बंद नहीं किये हैं। खुले रखे हैं। थैंक्स अगेन।

मैं मुस्कुरा कर रह गया हूं। इस बात का क्या जवाब दूं। मैंने उनके बिखरे बाल समेट कर उनके कानों के पीछे कर दिये हैं। उनका चेहरा दमक रहा है।

•

एयरपोर्ट आते समय ड्राइविंग सीट मुझे वापिस मिल गयी है।

मैं चुहल करते हुए पूछता हूं - तो आपका रूफ टॉप गार्डन हमें कब देखने को मिलेगा?

- जल्दीबाजी न करें श्रीमन। अभी तो हमें इस जादुई यात्रा के तिलिस्म से बाहर आने में ही समय लगेगा। और याद रखें कि यात्राएं और मुलाकातें हमेशा संयोग से ही होती हैं। अचानक ही। जैसे ये मुलाकात हुई। हम ज़रूर मिलेंगे लेकिन कहां मिलेंगे और कब मिलेंगे, इसकी कोई भविष्यवाणी सेल्फ एक्चुअलाइज़ेशन नहीं करता। वे खिलखिला कर हंस दी हैं।

मैंने उन्हें ड्राप किया है। कार से उतर कर हम गले मिले हैं और फिर से मिलने का वादा करके बिछड़ गये हैं।

वापिस आने के लिए कार स्टार्ट करते समय मैं तय नहीं कर पा रहा कि मैं एकदम खाली हो गया हूं या किसी दैविक ताकत से भर गया हूं।



कहानी

कल्पवास



राजेंद्र वर्मा

"अरे हंसा! ई पांच लीटर तेल किती देर चली? जब दिन भर जनरेटर चलना है तो काहे नहीं बीस लीटर एकै साथ डालता!" हंसा को जनरेटर में डीजल टोटियाते देख बैंक-बाबू इलाही ने कहा। इलाही हाल ही में भर्ती हुआ था और घाघ किस्म के बाबुओं का छोड़ा हुआ कार्य निपटाने बैंक जल्दी आ जाता था।

हंसा की खिसियानी हंसी निकल पड़ी, बोला- "हमार बस चलै तो हम बीस का, चालीस डाल देई, लेकिन मिलै तो!।।" उसने जनरेटर चला दिया। सबेरे के साढ़े आठ बज रहे थे। अभी उसे बैंकिंग हाल, शाखा प्रबन्धक के चैम्बर और सिस्टम रूम की सफाई करनी थी। सभी जगह झाड़ू-पोंछा और टायलेट की धुलाई करते-करते साढे नौ तो बजते ही थे। तब तक फील्ड आफिसर, एकाउंटेंट, सिस्टम इंचार्ज और एकाध बाबुओं का आगमन शुरू हो जाता। शाखा प्रबन्धक तो खैर, आराम से दस-साढ़े-दस तक आते थे।

हंसा, यानी पचीस वर्षीय नाइन्थ फेल हंसराज जाटव, यानी पंडितजी का घरेलू नौकर! पंडितजी, अर्थात् पचास वर्शीय पं0 हरिप्रसाद तिवारी, जिनकी बिल्डिंग में बैंक था और उन्हीं का जनरेटर किराये पर चलता था। जितने रुपये महीने किराया मिलता था, उतने का ही डीजल लग जाता था, दो-ढाई हजार महीना मेंटिनेंस और हजार रुपये हंसा का वेतन उनकी जेब से जाता था। यह बिल्कुल घाटे का सौदा था, लेकिन बिल्डिंग के किराये से घाटा पूरा होता था। हालांकि बिल्डिंग का किराया भी कुछ खास न था- पन्द्रह हजार महीना, लेकिन नफा-नुकसान से महत्वपूर्ण प्रतिश्ठा का प्रश्न था- उनकी बिल्डिंग में कोई दूसरा कैसे जनरेटर लगा सकता था?

हंसा के परिवार में दो प्राणी और थे। पांच वर्षीय बेटी- मुन्नी, और इजाज के अभाव में दमा से जूझती मां! हंसा को नौकरी से ही फुरसत न थी। वह इसे पंडितजी की कम, बैंक की अधिक समझता था। मन में कहीं आस पल रही थी कि एक दिन, लालमन की तरह वह भी बैंक में रेगुलर हो जायेगा। इसलिए वह शाखा प्रबन्धक, फील्ड आफिसर, एकाउंटेंट, सिस्टम इंजार्ज सहित हर स्टाफ की चाकरी बजाने दौड़ता रहता था।

लालमन ब्रांच का स्थायी सफाई कर्मचारी था, लेकिन सफाई का कार्य वह हंसा से ही लेता था। इसके बदले वह उसे पांच सौ रुपये प्रति माह देता था। लालमन से पहले उसके पड़ोस के गांव के प्रदीप मिश्रा सफाई कर्मचारी थे, लेकिन प्रमोशन पाकर पड़ोस की एक ब्रांच में बाबू हो गये थे। हंसा से सफाई करवाने की नींव उन्होंने डाली थी।

जब लालमन की भर्ती हुई तो हंसा को लगा कि अब सफाई के काम से उसे फुरसत मिल जायेगी, क्योंकि लालमन स्वीपर बिरादरी के थे और वह जाटव! इस लिहाज से वह लालमन से ऊँची जाति का था। लेकिन धन की देवी लक्ष्मी ने सामाजिक सोपान बदल दिये थे। यहां मनु महाराज की नीति काम न आ रही थी- एक दलित दूसरे दलित का शोषण कर रहा था .... धन निर्धन का शोषण कर रहा था ....बड़ी मछली छोटी को खा रही थी।

बहरहाल, हजार रुपये पंडितजी से, पांच सौ लालमन से और दो-ढाई सौ स्टाफ की टिप्स- कुल मिलाकर महीने में सत्रह-साढ़े सत्रह सौ रुपये हंसा के हाथ में आ जाते थे। बंधे-बंधाये पौने दो हजार रुपये महीने कम न थे- पर इनमें से चार-पांच सौ तो वह दारू और बीड़ी को भेंट कर देता .... पहले वह कभी-कभार होली-दीवाली में चोरी-चुपके दारू पी लेता था, लेकिन जब से फील्ड आफिसर ने हफ्ते में दो बार ब्रांच की कैंटीन में शाम पांच बजे से दारू पार्टी आयोजित करनी षुरू की- जिसका इंतजाम हंसा के जिम्मे था, तब से वह भी बोतल में बची हुई व्हिस्की का मजा तीसरे-चैथे लेने लगा। मसालेदार देसी के मुकाबले यह बहुत हल्की थी, इसलिए हल्कापन दूर करने के लिए वह जल्द-ही मधुशाला का परमानेंट ग्राहक बन गया।

बारह सौ रुपये पत्नी के हाथों सौंप वह घरेलू जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाता। हर महीने 'सैलरी डे' पर पत्नी झल्लाती- ''तुम यहां क्या सोने आते हो? यह भी बन्द कर दो, तो कौन सा काम तुम्हारे बिना रुक जायेगा? पांच-छः सौ तो मैं भी दूसरों के घर मर-मर कमा लेती हूं।'' जब गुस्सा ठंडाता, तो कहती, ''तुम यह नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते? .... ऐसी नौकरी से क्या फायदा कि घर से दूर भी रहो और भूखे भी मरो!''

हंसा चुपचाप सुन लेता। सुनने की तो जैसे उसे आदत पड़ गयी हो- घर हो या बैंक। हर जगह, उसे दूसरी की सुनने का काम था। सवेरे ही, वह घर से निकल पड़ता .... पत्नी और मां अवश देखती रह जातीं ....

कभी-कभी वह भी भावुक हो उठता- वह भी मुन्नी के साथ खेले, उससे खूब बातें करे! कितने दिन हो गये उसे दौड़ते-भागते देखे! ....।अम्मा की सेवा तो जैसे उसके भाग्य में है ही नहीं! ....पत्नी का मुस्कुराता चेहरा आंखों में तैरने लगता ....जब ब्याहकर आयी थी, तो बिल्कुल हिरवाइन लगती थी- सांवला रंग, लेकिन चेहरे पर बड़ी-बड़ी मुस्कुराती आंखें,

गुलाब की पंखुड़ियों जैसे पतले-पतले होंठ और भरे-भरे गाल! जब हंसती तो गालों में गड्ढे पड़ जाते- बिल्कुल शर्मीला टैगोर की तरह! बस्ती में कोई भी ऐसी नक्ष-नैन वाली बहू न थी। सास को कितना नाज था बहू पर- आते ही घर संभाल लिया! बड़ो का लिहाज और छोटों से प्यार! कितनों की तो नजरें उसे चोरी-चोरी देखती रहतीं और सौन्दर्य-रस पीती रहतीं। कुछ नजरें तो उस पर घात भी लगाये रहतीं, पर मजाल कि कोई ऐसी-वैसी बात हो जाए! .... लेकिन आज उसकी हिरवाइन उलझे बालों वाली काली-कलूटी लगती है। चेहरे की लुनाई न जाने कहां गायब हो गयी? हाथ-पांव बिल्कुल खरहरा हो गये ....गरीबी ने सारा आब सोख लिया!

शाखा में कोई चपरासी न था। लालमन से चपरासी का कार्य लिया जाता। स्वीपर जाति के होने के कारण लोग उसके हाथ का पानी पीना टाल देते थे। यह सेवा भी हंसा को सम्पन्न करनी पड़ती था। इसके अलावा, लालमन कक्षा पांच तक ही षिक्षित था। अंग्रेजी उसे छू तक नहीं गयी थी, इसलिए वाउचर छंटवाने, अनस्कैंड सिग्नेचर कार्ड निकलवाने आदि में भी हंसा को उसकी मदद करनी पड़ती। लालमन यह मदद आदेश देकर लिया करता। इसके लिए वह हंसा को दूसरे-तीसरे पांच-दस रुपये भी देता। सात हजार तीन सौ प्रति माह वेतन पाने वाले लालमन के लिए पांच-छः सौ की राशि कोई खास न थी, जबकि हंसा के लिए वह आधी तनख्वाह थी।

नौकरी चीज ही ऐसी होती है। शुरू-शुरू में स्वाभिमान को ठेस पहुंचने पर कष्ट होता है, किन्तु कष्ट के बदले जब हर महीने बंधी-बंधाई रकम मिलने लगती है, तो स्वाभिमान को तिल-तिल मारना तथा दूसरों का शोषण करना जीवन का अभीष्ट बन जाता है। कैसी विडम्बना है- लक्ष्मी ही हमसे मनुष्यता छीनती है,फिर भी हम लक्ष्मी की कृपा पाने को क्या-क्या नहीं करते ?

हंसा भी जीवन की इस विडम्बना का स्थाई आनन्द लेना चाहता था। सोते-जागते उसकी आंखों में एक ही स्वप्न पलता- एक दिन वह बैंक में नौकर हो जायेगा। फिर सारा दुख-दारिद्रय छू-मन्तर हो जायेगा। वही पत्नी, जो उससे ठीक से बात नहीं करती, उसके लिए पलक-पांवड़े विछाये रहेगी। अम्मा भी अपने बेटे पर नाज करेंगी। बेटी भी अच्छे स्कूल में पढ़ेगी ....नदी से दूर बस्ती से सटा उसका अपना पक्का घर होगा जिसमें लैटरीन भी होगी- पत्नी और अम्मा को बाहर जाने की जरूरत न रहेगी!

पिछले तीन वर्षों से हंसा की यही दिनचर्या थी कि वह सवेरे सात बजे घर से निकल लेता और रात को नौ बजे तक पहुंचता। हल्के-फुल्के बुखार में भी वह नागा न करता। पिछले साल उसे अवश्य आठ-दस दिनों तक घर पर रहना पड़ा था, जब एक सियार ने उसके एक

पैर की पिंडली का अच्छा-खासा मांस उड़ा ले उड़ा था। अंधेरी रात में करीब नौ बजे जब वह साइकिल से रेंगते हुए घर लौट रहा था कि दाहिने पैर के पास किसी की आहट हुई। उस समय उसके पास टार्च भी नहीं थी। लगा कि कोई जानवर है। वह 'धत्-धत्' करता रह गया और सियार ने अपना काम दिखा दिया।

साइकिल से घड़मड़ाकर वह गिर पडा। लंगड़ाते-लंगड़ाते किसी तरह घर पहुंचा .... साबुन से घाव धोकर उसने कड़ुआ तेल लगाया, पर दर्द के मारे वह रात भर कराहता रहा। सवेरे अस्पताल जाकर एंटी रैबीज का इंजेक्शन लगवाया। मरहम-पट्टी करायी। फिर घर पर आराम! अगले दिन फिर इंजेक्शन! .... घाव अभी सूखा न था, लेकिन जैसे ही हंसा तनिक चलने-फिरने लायक हुआ, वह बैंक में हाजिर था। मन में कहीं डर बैठा हुआ था- किसी और को न रख लिया जाए!

पैर के घाव के कारण हंसा जब बिस्तर पर था तो पत्नी बड़े प्यार से समझाती- "यह नौकरी अब तुम छोड़ दो। क्या होता है हजार रुपल्ली में! मैं भी दूसरों के यहां कहां तक रोज-रोज खटूं? और मिलता भी क्या है- मुश्किल से पन्द्रह-बीस रुपये या सेर-दो-सेर अनाज! अब तुम यहीं कोई काम-काज ढूढ़ो। न हो, तो कोई छोटी-मोटी दुकान ही खोल लो! ....सहुआइन के ठाठ नहीं देखते। साहू के मरने के बाद उसने क्या किया? परचून की दूकान खोली। जब देखो, भीड़ लगी रहती है। साहू तो बस नाम के ही साहू रहे- जिन्दगी भर भगत बने रहे। भजन-कीर्तन करते रहे। अरे, इससे कहीं घर चलता है? अच्छा ही हुआ कि घर की दीवार ढहने से वे चल बसे और दीवार में गड़ी मोहरे सहुआइन को दे गये ....तुम भी दुकान खोल लो- बैंक से लोन ले लो, नहीं तो हमारी हंसुली-करधनी बेच दो। यहां रहोगे, तो मुन्नी और अम्मा की देखभाल तो हो पायेगी। मुन्नी स्कूल जाने की जिद करती है, लेकिन नदी-पार उसे कैसे भेजूं? अम्मा की दवाई भी अब डाक्टर हाल बताने पर नहीं देता, कहता है- मरीज को लेकर आओ! ....लेकिन तुम तो कुछ सुनते ही नहीं! और कितनी रामायन बांचूं?"

हंसा ने थोड़ा प्रतिवाद किया- "सहुआइन की बात तो तुम करो नहीं। वह ठहरी जवान विधवा! दुकान भी गांव के बीचोबीच! जितने ग्राहक आते हैं, उनसे ज्यादा उसके रसिया! .... हम यहां दुकान खोल भी लें, तो वह कौन-सी चलने वाली है? यहां कौन खरीदार बैठा है? सहुआइन की दुकान छोड़ गांव-वाले यहां सौदा लेने आयेगे? हां, तुम सहुआइन की तरह दुकान चलाओ, तो और बात है!"

पत्नी लजाकर बोली- "धत्!" फिर उसने कहा- "ठीक है, तुम खोलकर तो देखो, न चलेगी तो तिराहे पर रख लेना। वहां तो पान-बीड़ी की तो दो-तीन गुमटियां हैं।"

"वहां चोरी करवाने के लिए दुकान रखूं। दिन में तो लोग मौका चूकते नहीं, रात की तो बात ही क्या!" हंसा ने प्रस्ताव खारिज करते हुए कहा।

"लेकिन कुछ-न-कुछ तो करना पड़ेगा! इस तरह कब तक चलेगा?" पल-भर बाद उसकी आंखें चमक उठीं, बोली, "तुम यह भी कर सकते हो कि सवेरे सामान ले जाओ और शाम को वापस ले आओ।" पत्नी की यह बात हंसा को कुछ ठीक लगी, पर चुपचाप लेटा रहा। पत्नी ने जब दुकान वाली बात पर जोर दिया, तो उसने लेटे-लेटे ही 'हां-हूं' की और फिर घर से निकल पड़ा। वह बड़बड़ाती रह गयी ....ऐसा नहीं कि उसने मामले पर गंभीरता से विचार न किया हो, लेकिन पंडितजी की नौकरी छोड़ते न बनती थी। बार-बार यही विचार आता कि एक-न-एक दिन वह बैंक में रेगुलर हो जायेगा।

पंडितजी ने शाखा प्रबन्धक से हंसा की सिफारिश उसके सामने ही कर दी थी। भोले हंसा को क्या पता कि सिफारिश दिखाने-भर को थी, अन्दर से तो वे यही चाहते थे कि वह उनका घरेलू नौकर बना रहे।

पंडितजी क्षेत्र के प्रतिष्ठित और जमीन-जायदाद वाले आदमी थे। सीलिंग कानून के बावजूद वे तीस एकड़ से भी अधिक भूमि के स्वामी थे। पंपिंग सेट, आटा चक्की, धान मशीन आदि के वे थोक व फुटकर विक्रता थे। फर्टिलाइजर, पेस्टीसाइट्स आदि की दुकान थी। सारा कारोबार उनके दोमंजिला कोठी के निचले हिस्से में बनी दो दुकानों में चलता था। व्यापारिक बुद्धि के साथ वे दुनियादार भी थे- मेहमानों की खातिर में वे जहां कोई कसर न उठा रखते, वहीं गरीबों के शोषण में भी कोई परहेज न करते।

कभी-कभी उन्हें अपराध-बोध होता, पर इसका उपचार वे किसी धार्मिक आयोजन से करते अथवा होली-दीवाली गरीबों को पूड़ी-आलू अथवा चार लड्डुओं के पैकेट बांटकर किया करते थे। इन आयोजनों के पीछे उनका निःसन्तान होना भी एक कारण था। पंडिताइन की सलाह पर वे पुण्य कमाने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। हर साल रामनवमी को 'श्रीरामचरित मानस' का धुंवाधार अखण्ड पाठ होता। दो-तीन सालों में श्रीमद्भागवत का सांगीतिक पाठ भी रखवाते जिसमें चढ़ावे की राशि का आधा-आधा तय रहता। कथावाचक को इसमें कोई आपत्ति न होती, क्योंकि उनके यहां चढ़ावा जमकर आता था- सौ-डेढ़-सौ आदमी तो सौ के नोट से नीचे चढ़ाते ही न थे। डेढ़-दो-सौ लोग बीस से पचास तक। रामायण के आयोजन का खर्च वे भागवत से निकाल लेते, पुण्य की कमाई घाते में!

हंसा उनकी भक्ति-भावना का कायल था। अपने शोषण के बावजूद वह पंडितजी की बड़ाई ही करता। उनके विरुद्ध कुछ कहने का तो सवाल ही न था, वह कुछ सुनने को भी तैयार न होता। ऐसे स्वामिभक्त सेवक आसानी से मिलते कहां हैं! मिल भी जाएं, तो टिकते कहां हैं?

इस कारण तीज-त्योहार सौ-पचास रुपये इनाम के साथ-साथ पहनने लायक पुराने कपड़े भी हंसा की गोद में गिरने लगे। हंसा की स्वामिभक्ति और भी निखरने लगी।

इस बार माघ के महीने में कुंभ का योग था। पंडितजी न केवल कुंभ में गंगास्नान करना चाहते थे, बल्कि महीने भर 'रामनगरिया' में कल्पवास भी करना चाहते थे। उनके साले साहब इस मामले में पर्याप्त अनुभवी थे। वे प्रत्येक वर्ष माघ-भर में गंगा किनारे बसायी गयी 'रामनगरिया' में कल्पवास किया करते थे। इसी कल्पवास के सहारे वे अपनी बहू को जलाने के बावजूद जेल जाने से बचे थे। गंगा मैया ने सारे पाप धुल दिये थे। पंडितजी अपने साले को बहुत पसन्द नहीं करते थे, पर पंडिताइन के जोर देने पर उन्होंने साले के साथ कल्पवास के लिए निकल पड़े!

ठंड खूब पड़ रही है, पर हंसा के पास मतलब-भर का ओढ़ना-बिछौना है। रात में जाड़ा जब ज्यादा दिक करता है, तो वह बीड़ी पीना शुरू कर देता है। दिन में पहनने को एक स्वेटर है। अब उसे घर वालों की चिन्ता है। पत्नी के पास एक स्वेटर है- उसी से उसका जाड़ा कटेगा। शाल है, लेकिन वो कभी-कभार ही ओढ़ती हैं, कहती है- "रोज ओढ़ेंगे, तो फट नहीं जायेगी! फिर कहीं आने-जाने में क्या ओढ़ेंगे?" मां के पास बस एक सलूका है- वह भी पांच-छः साल पुराना। दिन-रात हने रहती है- चीलर पड़ गये हैं, लेकिन जब कभी उसे धुलने की बात करो, तो कहती है, "अरे! रह्यौ द्यो, चीलरौ रहिहैं और हमहूं रहब।" बदबू तो उसे लगती ही नहीं- भले ही दूसरा उसके पास बैठने से कतराता हो। मुन्नी तो बदबू के मारे उसके पास जाती ही नहीं, वरना वह दादी के पास ही सोती थी। गनीमत है कि पत्नी ने लड़-झगड़कर पिछले साल एक बड़ी रजाई भरवा ली जिसे तीन लोग आराम से ओढ़ सकते हैं।

दो दिनों से शीत-लहर चल रही है। घर से खबर आयी है कि ठंड से अम्मा की तबीयत बिगड़ गयी है। डाक्टर ने भर्ती कराने को कहा है। हंसा ने पंडिताइन से दो सौ रुपये लेकर घर भिजवा दिये हैं, लेकिन उसका मन नहीं लग रहा- न बैंक में, न पंडितजी के यहां! रात को जरा-सी झपकी आयी कि उसे भयानक सपना आया- अम्मा कहीं जा रही हैं। उनकी बिदाई हो रही है। ....सभी लोग रो रहे हैं। अकेली अम्मा ही खुश हैं। कुछ बोल तो रही हैं, लेकिन सुनाई कुछ नहीं पड़ रहा ....हंसा के मुंह से भी आवाज ही नहीं निकल रही ....रोती हुई पत्नी उससे लिपटने को थी कि उसकी आंख खुल गयी! सपने के फलितार्थ की आशंका ने आंखों की नींद हर ली।

सवेरे पंडितजी की गाय की सानी-पानी की। फिर उसे दुहकर घर पहुंचा। मां अचेत पड़ी थी। कहने-भर को जीवित थी- सांस चलने की धीमी खरखराहट सुनाई देती थी। हाथ-पांव बिल्कुल ठंडे। आंखें डूबीं-सी। हंसा को देख उनमें जरा-सी चमक आयी, लेकिन हंसा को छोड़

इसे कोई देख न पाया। पत्नी ने मां को जीप से अस्पताल ले जाने को कहां, पर पड़ोसियों ने डॉ०क्टर को यही लाने की सलाह दी। हंसा को भी यही ठीक लगा ....

डॉ०क्टर आया। दो इंजेक्शन लगाये, कुछ दवाइयां लिखीं और सौ रुपये लेकर चलता बना ....चार-पांच दिन कट गये। हंसा की जान में जान आयी ....गरीबों का तजुर्बा है कि अगर बूढ़ों का जाड़ा सही-सलामत कट गया, तो समझो उन्हें साल-भर की जिन्दगी मिल गयी! पति-पत्नी, दोनों को आशा बंध गयी है, अम्मा अब बच जायेंगी।

आज कुछ धूप निकली है। पछुआ का उत्पात भी कम है। बूढ़ा को थोड़ा आराम मिला- ढाई-तीन बजे आंखें खोलीं। गरम-गरम खिचड़ी खायी तो चेहरे से मुर्दनी छंट गयी ....घंटे भर बाद हंसा बैंक के लिए चलने को हुआ। पत्नी ने रोकने की कोशिश की, पर हंसा नहीं माना।

शाम सात बजे वह बैंक से पंडितजी के यहां आ गया। यहां गौ माता की सानी-पानी बड़ी बेसब्री से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। रात में भी गाय की रखवाली करने का काम भी उसी के जिम्मे था। हालांकि जब पंडितजी घर में रहते थे, तो गाय की देखभाल मुंशी के जिम्मे था। लेकिन आजकल मुंशी तो जैसे हंसा का मालिक बन गया हो। बात-बात पर फरमान जारी करता है- "ये करो, वो करो!" पंडिताइन भी उसी के सुर में सुर मिलाती हैं।

मां की दवाइयां उसने कस्बे में आते ही ले लीं, पर अब उन्हें भिजवाने की चिन्ता थी। वह वापस घर जाने की सोच रहा था कि उसके पड़ोस के गांव के एक सज्जन दिख गये। दौड़कर उन्हें दवाइयों का लिफाफा पकड़ाया। उनके पैर छूते हुए निवेदन किया कि यह लिफाफा आज ही उसके घर पहुँचा दें। उन सज्जन ने, "ठीक है", कहकर लिफाफा ले लिया। हंसा निश्चिंत हो गया। फिर, पता नहीं किस धुन में वह शराब की दुकान पर पहुंच गया और कब उसने दो मसालेदार पाउच कड़वी दालमोठ के साथ गटक लिये- पता ही नहीं चला!

उधर, जिन सज्जन के हाथ उसने मां की दवाई भिजवायी थी, वे भी पियक्कड़ निकले। मधुपान से निवृत्त होते-होते उन्हें खासी देर हो गयी। आधे रास्ते में साइकिल भी खराब हो गयी। अपने ही गांव पहुंचते-पहुंचते उन्हें नौ बज गया- हंसा का गांव तो एक किमी। और आगे था। सोचा, सबेरे दवाइयां पहुंचा देंगे और पहुंचाया भी, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

पंडितजी की गौमाता का नित्यकर्म करवा हंसा जब घर पहुंचा, तो लाश को बिस्तर से उठाकर जमीन पर रखा जा रहा था। हंसा की आंखों में यह दृश्य जैसे अटक गया। उसकी समझ में न आ रहा था कि वह क्या करे! थोड़ी देर में पड़ोस के गिरधारी काका ने उसके कंधे पर हाथ रखा- "धीरज से काम लो बेटा! यह तो एक दिन सभी के साथ होना है। जो आया है, सो जायेगा! अब कफन-दफन का इंतजाम करो।"

सास की मृत देह से लिपटी रो रही हंसा की पत्नी उसे देख जोर-जोर से रोने लगी ....एक स्त्री ने उठकर उसे संभाला। अब हंसा की रुलाई भी फूट पड़ी। वह बच्चों की तरह धाड़ मारकर रोने लगा ....।पड़ोसी कफन लेने चले गये। जब वे लौटे, टिकठी तैयार थी। कंधों पर ही लाश को मुर्दनिया घाट ले जाकर नदी में विसर्जित कर दिया गया। हंसा ने नाम-मात्र को कंधा दिया। उसे जैसे कुछ होश न था, मूक दर्शक बना हुआ था।

हंसा की मां के न रहने की खबर पंडितजी के घर पहुंच गयी। अब वह दस दिनों तक न आयेगा। पंडिताइन को गाय की चिन्ता थी। मुंशी ने दूध तो निकाल दिया, बाकी काम पड़ा हुआ था। पंडितजी को लेने जीप जा चुकी थी- आज शाम तक वे आ जायेंगे!

मां को मरे आज पांचवा ही दिन था कि हंसा बैंक में हाजिर था। इलाही सहित स्टाफ के कई लोगों ने उसे डांटा कि बैंक आने की क्या जरूरत थी? क्या बैंक उसके बिना बन्द हो जायेगा? हंसा को खबर मिली थी कि बड़े साहब का ट्रांसफर हो गया है और वे कुछ ही दिनों के मेहमान हैं। वे खुद ही यहां से जल्द जाना चाहते हैं। उनकी जगह कोई शुक्लाजी आने वाले हैं।

जब हंसा का इंटरव्यू हुआ, तब नये साहब ने चार्ज संभाला ही था। उन्होंने हंसा को दिलासा दिलायी कि वे सिफारिश कर देंगे। हंसा आश्वस्त था, पर परिणाम निराशाजनक निकला। किसी कश्यप की नियुक्ति हो गयी। बाद में पता चला कि वह रीजनल आफिस में किसी बाबू का रिश्तेदार है।

बैंक में नौकरी न लगने से हंसा विक्षिप्त-सा हो गया। बैंक में उसके लायक अब कोई काम नहीं। लालमन की नौकरी वह करे भी तो किसलिए? पंडितजी की नौकरी बेगार लगने लगी। वह तो बैंक से बंधी थी ....जब मूल ही टूट गया, तो शाखा में क्या धरा है?

पंडितजी के कल्पवास से आने के बाद हंसा जब उनसे मिला था, तो उसकी मां की मृत्यु का समाचार सुन उनकी आंखों में कोई संवेदना न दिखी। उल्टे पंडिताइन की शिकायत पर उन्होंने हंसा को डांट पिलायी कि उसने घर का काम ठीक से क्यों नहीं किया? गाय की सानी-पानी तक दूसरों के नौकर से करानी पड़ी थी!

हंसा चुपचाप पंडितजी की डांट खा रहा था, लेकिन वह समझ नहीं पा रहा था कि कल्पवास पंडितजी का हुआ था या उसका!

सुवर्णा बुआ

० माला वर्मा ०

आज अम्मां की चिट्ठी से पता चला कि सुवर्णा बुआ की बड़ी लड़की कृष्णकली पढ़ाई के सिलसिले में न्यूजर्सी चली गई। मैं अवाक् रह गई। घर-गृहस्थी के चक्कर में कितने रिश्तेदार जो बेहद सगे होते हुए भी भूला दिये जाते हैं, उसमें सुवर्णा बुआ भी थी।

सुवर्णा बुआ मेरी अपनी सबों की चहेती एक खास व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। सांवला रंग, सुन्दर कद-काठी, लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी काली आँखें, नाक सुतवां, भरे होंठ। पहली झलक में उन्हें देखकर सभी कह उठते ' अरे... ये तो फिल्म अभिनेत्री राजश्री की तरह लगती है।' समझिए मेरी बुआ इतनी सुन्दर थी।

सुवर्णा बुआ हमारे साथ रही तथा बाबा दादी गाँव में। बुआ को पढ़ने का बड़ा शौक था। गाँव में प्राइमरी स्कूल की शिक्षा लेने के बाद वे आरा चली आई थी। एक मात्र भाई डाक्टर था। मेरी अम्मां को भी ननद के रुप में एक सहेली मिल गई थी।

सुवर्णा बुआ मितभाषी थी। पढ़ने में औसत से ज्यादा तेज। घर का काम अम्मां के साथ निबटाती फिर बड़ी फुर्ती से कभी अचार डालती तो कभी अदौरी-दनौरी बनाती। इन सबसे फुरसत पाती तो पढ़ने लगती।

बुआ आई. ए. की परीक्षा में अव्वल आई। अम्मा पापा तो इतने खुश थे मानो उन्हीं लोगों ने डिग्री हासिल की हो। खबर पाकर गाँव से बाबा धमक पड़े थे। उन्हें बुआ के अव्वल आने से कोई सरोकार नहीं था। उल्टे बेटे के उपर दबाव देने लगे कि सुवर्णा को इससे ज्यादा पढ़ाना ठीक नहीं कोई लड़का देखकर इसकी शादी कर दो। बुआ चुपचाप सिर झुकाये खड़ी थी। प्रतिवाद करने का हाल उन्हें नहीं मालूम था।

परन्तु उस रात बुआ अम्मां के सामने रोने लगी 'भौजी, हम ग्रेजुएट होना चाहते हैं बस दो साल की पढ़ाई है उसके बाद हम शादी कर लेंगे....'

बुआ का कातर स्वर अम्मां को ह्रदय तक बेध गया। दूसरे दिन अम्मां ने बिना लिहाज किए आखिर अपना फैसला सुना ही दिया' सुवर्णा बीबी और आगे पढ़ना चाहती हैं। वैसे भी कायस्थ घर का कोई लड़का पढ़ी-लिखी ग्रेजुएट ही व्याहना चाहता है। एक डिग्री और बढ़ जाने से डाक्टर इंजीनियर आसानी से मिल जायेंगे।'

डाक्टर इंजीनियर दामाद के नाम पर बाबा की आँखे चमकने लगी थीं। दूसरे दिन वे गाँव लौट गये। इस तरह सुवर्णा बुआ की पढ़ाई आगे चल निकली। महिला कॉलेज से निकलकर वे जैन कॉलेज में चली आई। उन दिनों महिला कॉलेज में बी.ए.की पढ़ाई नहीं होती थी। जैन कॉलेज में लड़के भी पढ़ते थे। बुआ को बहुत संकोच होता था। अम्मां उन्हें छेड़ती 'का हो सुवर्णा बीबी ! कोनो लड़का पसंद आइल?'बुआ लाज से दुहरी हो जातीं। झूठमूठ नाराज होती और सिर किताबों में घुसा लेती।

इस बीच दादी गुजर गई। हम सब शाहपुर गये। श्राद्धकर्म निबटाकर वहां से लौटे तो बाबा को भी आरा लिवा लाये। वहाँ गाँव में उनकी देखभाल कौन करता। यहां आने पर जब उन्हें पता

चला कि बुआ जिस कॉलेज में पढ़ती हैं वहां लड़के भी आते हैं,तो बहुत नाराज हुए। वे पापा से कहते'बबुआ राजिन्दर,लड़की बिगड़ जाई कॉलेज में...'परन्तु पापा उन्हें समझा बुझा कर शांत कर कर देते।

एक बार सुवर्णा बुआ के कॉलेज में कोई समारोह था। रोज सूती साड़ी ही पहन कर जाती थीं। उस दिन अम्मां ने उन्हें अपनी एक सिल्क की साड़ी जबर्दस्ती पहनने को दी। पहली बार बुआ ने मैचिंग बिंदी माथे पर और हल्की लाली होठों पर धरी। सचमुच सुवर्णा बुआ बहुत सुन्दर लग रही थी। एकदम हीरोइन राजश्री की तरह।

बाबा बरामदे में बैठे थे। सुवर्णा बुआ को यूं चकाचक साड़ी और बिंदी लगाये देख बुरी तरह गुस्सा हो गये। लगे अम्मां को डांटने, 'दुल्हीन ई काम ठीक नइखे होत। गाँव के लड़की सिलिक साड़ी पहने और लोल रंगे,ई हमरा तनिको नइखे सुहात। ऐकरा से कह द मलमल के साड़ी पहने..

बुआ रो पड़ी थी। अम्मां को तो जैसे काठ मार गया। बुआ फिर कॉलेज जाने के लिये तैयार ही नहीं हुई। अम्मां ने बहुत समझाया बुझाया,चिरौरी की तब बुआ नरम पड़ी। उन्होंने अपनी रोजाना वाली सूती साड़ी पहनी,बिंदी हटायी होंठ साफ किये। फिर कालेज गई। मुझे उस दिन बाबा पर बड़ा क्रोध आया। दिनभर वे मुझे अपने पास बुलाते रहे पर मैं नहीं गई। पापा डिसपेन्सरी से लौटे तो मैंने सारी कहानी कह डाली तथा बाबा को गाँव भेजने की भी राय दी। बुआ की आजादी छिनते देख मेरे बाल मन को ठेस पहुंची थी।

बुआ की फाइनल परीक्षा नजदीक आ गई थी। वे ज्यादा से ज्यादा समय पढ़ने में गुजारने लगी थीं। मैं दसवीं कक्षा में थीं। बुआ की मेहनत का नतीजा था कि वे मगध विश्वविद्यालय में फर्स्ट डिवीजन से पास हुई। अम्मा-पापा गौरव से भर उठे। जिस दिन रिजल्ट निकला बुआ से ज्यादा मैं खुश थी। सारे दिन मुहल्ले में फुदकती रही और बुआ के कारनामे बताती रही जिसने भी सुना आश्चर्य व्यक्त किया। बुआ पर कोई खास असर नहीं पड़ा । उन्हें कम बोलने और शांत रहने की जैसे आदत पड़ गई थी।

बाबा को इस बात की ज्यादा खुशी थी कि अब पढाई का झंझट खत्म हुआ। वे शीघ्र बुआ की शादी कर देना चाहते थे। पापा-अम्मां को भी एतराज नहीं था। बुआ को दुख था कि अब ये घर छोड़कर जाना पड़ेगा। अम्मां-पापा ने उन्हें सगी बेटी सा ही समझा था, ऐसा स्नेह ममत्व फिर नसीब होगा कि नहीं।

बुआ के लिए लड़कों की कमी न थी कि उनकी सुन्दरता, पढ़ाई और स्वभाव सभी जानते थे। पटना के एक श्रीवास्तव इंजीनियर लड़के से बात तय हो गई। लड़का धनबाद में काम करता थ। देखने में वो भी सांवला था पर नाक-नक्श तीखे थे। लड़के तथा उसके घरवालों को पापा ने अपने घर बुलवाया ताकि लड़का-लड़की एक दूसरे को पसंद कर लें। बाबा को एतराज था कि लड़की शादी के पहले मुंह खोले सामने नहीं जायेगी , पर पापा की जिद से चुप हो गये।

बुआ को नापसंद करने का सवाल ही नही उठता था लड़का तो एक ही झलक देख लट्टू हो चुका था। बुआ को उन्होंने एक सोने की चेन पहना कर अपनी रजामंदी जाहिर की।

एक महीने बाद शादी की तारीख पड़ी। अम्मां का उत्साह देखने लायक था। सगी बेटी की तरह शादी की तैयारी होने लगी, बुआ ने सारे कपड़े लत्ते अपनी पसंद के खरीदे। बुआ सिलाई-

कटाई सब जानती थी फिर भी अम्मां ने ब्लाउज सिलने नहीं दिया और न ही साड़ी में फॉल लगाने दिया। सब के सब दर्जी के पास भेजे गए। अम्मां को ये पसंद नही था कि महीने भर बुआ खटती रहें अपनी शादी के लिए। अम्मा का ये औदार्य अभी भी भूल नहीं पाती। ननद-भाभी का रिश्ता मां बेटी जैसा भी हो सकता है- मैं ये सब नहीं देखती तो शायद कभी विश्वास भी नहीं होता।

बहुत धूमधाम से बुआ की डोली उठी। अम्मां बुआ का एक दूसरे से लिपट कर रोना मुझे अभी भी याद आता है। पापा अपने आंसुओं को बार-बार गटक रहे थे, मैंने बहुत बार लक्ष्य किया। औरतें इस मामले में कहीं भाग्यशाली हैं जो रो-रो कर अपना जी हल्का कर लेती हैं पर पुरुषों को सबके सामने धीर गंभीर बने रहने की मजबूरी रहती है। बिदाई के समय जब बुआ पापा के पास पहुंची तो सारी धीरता गंभीरता पापा ने ताक पर उठा कर रख दी तथा रो पड़े। जिसके आंसू अब तक न गिरे थे वे भी रोने लगे थे। भाई बहन का प्रेम अद्भुत दृश्य उपस्थित कर रहा था। बारात वाले भावुक हो उठे थे। बाबा अलग हिलक रहे थे। मैं बुआ-बुआ......करके रोये जा रही थी। थोड़ी देर के लिए फुफा हतप्रभ रह गए। उनकी आंखें भी डबडबा आई।

आखिर सबको रुलाती हुई और खुद बिलखती हुई बुआ पटना चली गई। बुआ को वहां सभी ने हाथों हाथ लिया। उनकी चार ननदें थी। दो की शादी हो गई थी तथा दो कुंवारी थी। बुआ की सुंदरता वहां भी चर्चा का विषय बन गई। ननदों की ढेर सारी सहेलियां जुटी थीं। सुवर्णा बुआ को देख सब ने कहा. भाभी एकदम राजश्री जैसी हैं। फुफा भी ऐसी सुंदर पढ़ी-लिखी बीवी पाकर पूरे इतराए हुए थे।

शादी के दस-पन्द्रह दिनों के बाद बुआ और फुफा आरा आए थे। हरदम शांत रहने वाली बुआ अब कुछ मुखर हो चली थी। फिर भी पापा के सामने लज्जा भाव पूर्ववत मौजूद रहता। अम्मां बुआ से पूछ कर खाना बनाती जो फुफा को पसंद था।

शादी के बाद बुआ को रंगीन साड़ी में,भर भर हाथ चूड़ियां पहने, माथे पर बड़ी सी बिंदी, मांग में चटकीला सिंदूर,पावों में पायल, गले में सतलड़ा हार, कान में झुमके...देख मैं विस्मित थी। बुआ पूर्णिमा की चांद की तरह दमक रही थी। सच उन्हें देख कर मेरे दिमाग में पहली बार ये ख्याल आया कि मेरी शादी भी जल्दी हो जाती तो इतने सारे कपड़े और गहने पहनने को मिलते और तब मैं भी बुआ की तरह सुंदर बन जाती।

सुवर्णा बुआ 5-6 दिन आरा में रही फिर वापस पटना लौट गई। पटना में कुछ दिन रहकर वे अपने पति के साथ धनबाद चली गई। बुआ अपनी नई गृहस्थी में रम गई। चिट्ठियां बराबर समय से आती रहतीं। अम्मां को शुरु-शुरु में बुआ का जाना बहुत खला था। चिड़चिड़ी सी हो गई थी। बाद में परिस्थिति से समझौता करना ही पड़ा। पापा अपने मरीजों में व्यस्त हो गए। बाबा की तबीयत खराब रहने लगी थी। वे गांव जाना चाहते थे पर पापा उन्हें भेजने को तैयार नहीं हुए। यहां सब तरह की सुविधा थी। गांव में अपना कौन सगा बैठा था जो देखभाल करता।

एक साल निकल गए। मेरी मैट्रिक की परीक्षा होने वाली थी। उन्हीं दिनों धनबाद से तार आया। सुवर्णा को लड़की हुई है। हम सब बहुत खुश हुए। मैं बच्ची को देखने के लिए छटपटा गई

थी पर परीक्षा की वजह से मैं न जा सकी। सिर्फ पापा धनबाद गए। सुवर्णा बुआ की लड़की के लिए ढेरों सामान भी गया।वहां से आकर पापा ने बताया लड़की बिल्कुल सुवर्णा पर गई है। बाबा अपनी शारीरिक लाचारी की वजह से अब चलने फिरने में अक्षम हो गए थे। बाद में तय हुआ, लड़की तीन-चार महीने की हो जाएगी तो बुआ को बुलाया जाएगा।

मेरी परीक्षा हो गई। रिजल्ट निकला। मैं अच्छे नंबरों से पास हो गई थी। मेरा नाम आई. एस. सी. में लिखवा दिया गया। साइंस की पढ़ाई महिला कॉलेज में नहीं होने की वजह से मुझे जैन कॉलेज में जाना पड़ा। कुछ महिने बाद बुआ अपनी बेटी के साथ आई। फुफा कुछ दिन आरा में रहकर वापस धनबाद लौट गए। उनकी छुट्टियां खत्म हो चुकी थी। उनके लौट जाने से मुझे खुशी हुई, अब बुआ कुछ दिन निश्चिंत होकर आरा में रह सकती थी। बेटी का नाम मैंने अपनी पसंद से 'कृष्णकली' रखा। कृष्णकली बहुत जल्द मुझसे हिलमिल गई। मुझे देखते ही अपनी दोनों छोटी बाहें फैला देती। मैं भी सारा काम छोड़ छाड़कर उसे थाम लेती।

बुआ खुश थी, पर एक बात उन्होंने जरुर कही। ससुराल में बेटी पर किसी ने अपनी खुशी जाहिर नहीं की।सबके दिलों में यही था कि पहिलौंठा बेटा होता तो ज्यादा अच्छा था। मुझे सुनकर बहुत गुस्सा आया। इतनी तो सुंदर-सी प्यारी बेटी बुआ ने दी पर कोई खुश नहीं। मैंने बुआ से कहा, कृष्णकली को यहीं छोड़ जाइए। जब अगली बार बेटा होगा तो उसे ही बड़ा करेंगी। बुआ अम्मां सुनकर हंस पड़ी थी। सुवर्णा बुआ मेरे गालों को थपकते हुए कह उठी, 'ऐसा भी कहीं होता है? पर तेरे फुफा बहुत खुश हैं।'

दो महिने के बाद फुफा आए। बुआ के साथ कृष्णकली भी चली गई। घर सूना-सूना हो गया। इतने छोटे बच्चे को संभालने का यह मेरा पहला मौका था।

सुवर्णा बुआ का इस बार बाबा से मिलना अंतिम भेंट साबित हुआ। बाबा की मृत्यु पर वे नहीं आ सकी थी। अम्मा ने बताया बुआ को फिर बच्चा होने वाला है। अंतिम महिना चल रहा है। अतः रेल का सफर उनके लिए ठीक नहीं होगा। बुआ बहुत रोई थी कि बाबूजी के अंतिम दर्शन भी उनके भाग्य में नहीं।

बुआ को दुबारा लड़की हुई पर मुझे तो बस ये चिंता सता रही थी कि अब कौन सा नाम सुझाऊं। मैंने जल्दी ही फैसला कर लिया। कृष्णकली की बहन 'सुरंगमा' ही हो सकती है। ऐसे नामों को रखने के पीछे एक बड़ी राजनीति ये थी कि मैं सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका 'शिवानी' की अनन्य भक्त थी। उनकी नायिकाओं का नाम मैंने बुआ की लड़कियों को देना शुरु कर दिया।

इस बार सुवर्णा बुआ से जल्दी भेंट न हो सकी। दो छोटे बच्चों के साथ उनका निकलना संभव नहीं था। इधर बाबा की मृत्यु के बाद पापा भी बाहर नहीं निकल सके। बुआ को मैंने नाम लिख भेजा था। जब उनका जवाबी खत आया तो पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई। मेरे कहने के अनुसार उन्होंने अपनी दूसरी बेटी का नाम 'सुरंगमा' ही रखा।

इधर मेरी आई.एस.सी.की परीक्षा खत्म हुई उधर बुआ अपनी दोनों बेटियों के साथ आरा आ पहुंची। कृष्णकली चलने लगी थी। सुरंगमा अब आठ महीने की हो गई थी। कृष्णकली जहां सांवली थी वहीं सुरंगमा गोरी चिट्टी। सबने कहा ये तो रंग के मामले में बिल्कुल मिनी पर गई है मुझे सुनकर बहुत खुशी हुई। बुआ तीन महीने आरा रह गई। मेरा समय खूब मजे से गुजरा।

कृष्णकली और सुरंगमा के साथ समय निकलता जा रहा था।

बुआ लौट गई और मैं अपनी पढ़ाई में दिनों दिन उलझती गई। आई.एस.सी. पास करके मैं अब बॉटनी आनर्स लेकर बी.एस.सी. पढ़ने लगी। इसी बीच पापा ने एक सुझाव अम्मां के सामने रखा, सुवर्णा को अगर बी.एड. करा दिया जाए तो क्या हर्ज है?

अम्मा को भला क्यों एतराज होता। बुआ के पास चिट्ठी गई तो उन्होंने तुरंत हामी भर ली शायद पापा दूरदर्शिता का सहारा ले रहे थे। दो बेटी हो चुकी हैं आगे का कोई ठीक नहीं। बी.एड. की डिग्री रहने से जरुरत अनुसार सुवर्णा कभी स्कूल में नौकरी कर सकती है।

बुआ को एडमीशन के लिए बुलाया गया। रिक्शे से उतरते समय बुआ के उभरे पेट पर पहले नजर पड़ी। बुआ का नाम बी.एड. में लिखवा दिया गया। पढ़ाई शाम को होती थी। मुझे देखकर बड़ा खराब लगता, बुआ पेट निकाले पढ़ने के लिए जाती और पीछे से दोनों बेटियां रोती हुई उनके पीछे भागती। मेरे रहने से बुआ को बड़ा सहारा था। मैं दोनों को पुचकारती हुई वापस लौटा लाती और उनका मन बहलाती। रात गए बुआ लौटती तब तक दोनों सो चुकी होती।

बुआ की तीसरी लड़की आरा में हुई। पापा ने उन्हें जाने नहीं दिया था। फुफा उस वक्त छुट्टी लेकर आ गए। इस बार की बेटी ने सबका दिल तोड़ दिया था। पर पापा ने इसके बावजूद इतने धूमधाम से 'छट्ठी' की रस्म मनाई कि लोग देखते ही रह गए। बुआ बार-बार मना करती रही कि लड़की होने में इतना क्या खर्च करना है। फुफा बहुत मायूस थे पर बाद में सामान्य होते गए। इसमें बुआ का तो कोई दोष नहीं था।

तीसरी बेटी का नाम मैंने 'माणिक' रखा। गोल-मटोल सुंदर गुड़िया जैसी। बुआ का मन बहलाने के लिए एक बार मैंने उनसे कह भी दिया, ' इतनी सुंदर-सुंदर बेटियां मुझे होती रहे तो मैं लाईन लगा दूं।' बुआ फीकी हंसी हंस दी थी। उनके दिल पर क्या गुजर रही थी इसे सिर्फ वही समझ सकती थी।

बी.एड. की परीक्षा बुआ ने बड़ी तकलीफ और हैरानी परेशानी से दी। ताज्जुब है ! बुआ ने काफी अच्छे नंबरों से बी.एड. पास किया। बुआ को जो आदमी गाइड करने के लिए आता था वो स्वयं फेल कर गया। जब बुआ वापस लौटने लगीं तो मैंने जिद करके कृष्णकली और सुरंगमा को अपने पास रख लिया, ताकि धनबाद जाकर बुआ को थोड़ा आराम मिले। वैसे भी हरदम एक साथ तीन बेटियों को देखकर फुफा भी खिन्न हो जाते।

समय गुजरता गया। ग्रेजुएट होने के साथ-साथ मेरी शादी कलकत्ते में तय हो गई। पापा ने डाक्टर दामाद चुना था। शादी में बुआ आई थी। तीनों बेटियां अब कुछ बड़ी तथा समझदार हो गई थी। बड़ी कृष्णकली अब नर्सरी में जाने लगी थी। मेरी शादी खुशी-खुशी संपन्न हुई तथा मैं अपने पति के साथ कलकत्ता आ गई।

जीवन का ढर्रा बदल गया था। छोटी जगह से बड़े शहर में आ गई थी। अम्मां की चिट्ठी से सबका हालचाल मिलता। बुआ अपनी घर गृहस्थी में बिजी रहती थी। बुआ ने मुझे बहुत बार धनबाद आने को लिखा पर मेरा निकलना नहीं हो पाता था।

मात्र दो साल और बीते थे कि पता चला बुआ को चौथी लड़की हुई है। मैंने बुआ को तत्काल एक चिट्ठी लिखी थी,' बुआ पढ़ी लिखी होकर तुम ये गंवारों जैसा क्या कर रही हो ?'

प्रत्युत्तर में बुआ की एक लंबी चिट्ठी आई। पढ़कर मुझे अफसोस हुआ कि मुझे इस तरह चिट्ठी नहीं लिखनी चाहिए थी।

फुफा को किसी भी हालत में एक 'बेटा' चाहिए था। अब तो वे साधु पंडित के चक्कर में पड़ गए थे। आए दिन कभी ये ताबीज,तो कभी चमत्कारी अंगुठी बुआ को पहनाना शुरु कर दिए थे। इतना सब करने के बाद भी जब चौथी लड़की हो गई तो बुआ का विश्वास इन अंधविश्वासों पर से हमेशा के लिए उठ गया। अब जब कभी अंगुठी या ताबीज घर में आती तो बुआ उन्हें उठाकर नाली में फेंक देती।

धीरे-धीरे घर में कटुता बढ़ती गई। बेटा का होना कितना जरुरी होता है, अब तक मुझे पता न था। बुआ पर बड़ा तरस आता। आखिर एक बेटा हो जाता तब भी बुआ की शान वापस लौट आती। फुफा इतने पढ़े लिखे इंजीनियर होकर भी अनपढ़ों जैसा क्यों कर रहे थे?

दो महीने बाद बुआ की चिट्ठी आई जिसमें लिखा था, 'मिनी मेरी इस सुंदरी बेटी का नाम नहीं सुझाओगी? चिट्ठी पढ़कर मेरी आंखें भर आई थी। मैंने नाम भेजा'शिवानी'। साथ ही बुआ को ये भी लिख डाला, 'बुआ इस बार शिवानी की नायिका मुझे नहीं मिल रही है तो शिवानी को ही भेज दिया है। मेरे नामों का अक्षय कोष अब से खाली ही समझना। इसके बाद मैं कोई नाम नही सुझा पाऊंगी ।'

बुआ ने मेरी बात रखी। शिवानी उनकी चौथी तथा अंतिम संतान रही। बुआ की चारों लड़कियां पढ़ने में काफी तेज निकली। धनबाद में अंग्रेजी स्कूलमें पढ़ती थी। समय सरकता रहा... सरकता रहा। बुआ को जिद्द हो गई थी कि वे चारों को पढ़ा लिखा कर लड़कों जैसा मान सम्मान दिलवाएगी। पैसे की कमी तो थी नहीं फुफा के पास।

बड़ी लड़की कृष्णकली स्कूल फाइनल में इतने अच्छे नंबर लाई कि उसका एडमीशन आगे पढ़ने के लिए दिल्ली में करवाया गया। उसके बाद तो बारी बारी तीनों दिल्ली चली गई पढ़ने के लिए। जो भी सुनता वही अवाक् रह जाता। सबकी जुबान पर यही रहता,'लोग बेटा के ऊपर खर्च करते हैं यहां तो लड़कियों के ऊपर पैसा बहाया जा रहा है।' दबी-दबी आवाज में अम्मां-पापा ने भी सुवर्णा बुआ को समझाना चाहा था पर उन पर जैसे कोई फितूर सवार हो गया था। बेटा न होने का आक्रोश वे बेटियों को आगे पढ़ा लिखा कर प्रकट कर रही थीं।

फुफा खुद इस पक्ष में नहीं थे कि जवान लड़कियां अकेली दिल्ली में रहकर पढ़ाई करें पर हमेशा चुप रहने वाली बुआ अब वाचाल हो उठी थी। ये तो खैरियत रही कि बेटियां अपनी मां की आशाओं पर पूर्ण रुप से खरी उतरीं। उन चारों ने दिल्ली में भी अपनी पढ़ाई की धाक जमायी। मेरे पति अक्सर कहते, 'उन चारों ने अपनी मां का दुख झेला है। समझा है तभी इतना आगे बढ़ पाई, घर में एक भी बेटा न होने का गम वे चारों भूलवा देना चाहती हैं'।

पति का कथन कुछ हद तक सही भी था। उन की प्रगति देखकर बुआ का जमाना याद आ गया। बेटी होकर भी अपने रुप और विद्या से नाम रौशन किया था। आज उनकी चारों लड़कियों ने अपने मां-बाप का नाम रौशन किया था।

कृष्णकली उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका चली गई। किस्मत की बात देखिये सुरंगमा, माणिक और शिवानी भी इतनी प्रतिभावान निकली कि उन्हें भी अमेरिका में नौकरी मिल गई।

बुआ की छाती अब कहीं जाकर ठंडी हुई होगी। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि बेटों के पीछे हाय-हाय करने से कोई लाभ नहीं। अगर लड़कियों को अच्छी राह दिखायी जाए और उनका मनोबल ऊपर उठाने की कोशिश की जाए तो बेटियां किसी भी हालत में किसी बेटे से कम नहीं।

अम्मां की चिट्ठी परे रखकर मैंने एक गहरी सांस ली। पास ही मेरे दो बेटे सोये हुए थे, उन्हें देखकर एकाएक मन में ख्याल आया-क्या ये अपनी फुफेरी बहनों कृष्णकली, सुरंगमा, माणिक और शिवानी की तरह ये उपलब्धियां हासिल कर सकेंगे?

ooooooooooo

dhy



, l vkj gjukV

og gkirk gvk xko d pkiFk ij igprk gA ekFkk vkj eg ilhu l rjcrj gA Hkhrj d diM Hkhx x, gA mudh fytfytkgV ml cgn ij'kku fd, g, gA deht vkj cfu;ku xhyh gkdj cjh rjg ihB l fpid xb gA og [kM&[kM vthc rjhd l d/k mpdkrk g ftll peMh e fpiVh cfu;ku FkkMk <hyh gk tk,A mldh ;g enk fdlh cdMkl d LVi tlh gA xy d uhp deht d rhu cVu [ky gA og cfu;ku d vxy flj dk ,d mxyh l ckgj [khprk g vkj BkMh uhp dj Hkhrj db Qd ekjrk gA ,lk dju l dN jkgr feyrh gA nk, d/k ij peM dk cx g ftl ij LoVj yVd jgk gA LoVj dh ,d ckt dk eg tehu l f?klVk gvk g ftll [kc lkjk ?kkl mle Ql x;k gA ck, gkFk e dkV gA ik"k dk 'k:vkrh eghuk gA T;knk xeh Hkh ugh gA ijUr mld ;g gky lMd l yxHkx ikp fdykehVj dh [kMh p<kb p<dj g, gA

og tl gh lLrku yxrk g vpkud nk&rhu dRr Hkkdr g, mldh rjQ yidr gA og lge tkrk gA lkeu ,d ndku gA ogk cjken e rk'k [kyu d fy, pkdMh cBh gA nk&pkj rek'kchu g ftud chp ,d&nk cPp Hkh gA ,d v/kM iRrk Qdr g, cB&cB dRrk dk nRdkj nrk g rk o pipki ihN dh vkj Hkkx tkr gA ml vkneh dh lkl e lkl vkrh gA dN nj ogh [kMk gkdj viu Fkd 'kjhj vkj cne lkl dk lrfyr djrk gA 'kjhj dh xekgV BMh gokvk l f'kfFky iMu yxh gA ml gYdh lnh dk ,glkl gkrk gA nk&pkj dne vkx ndj viuk cx ndku d cjken d ,d fdukj j[krk g vkj LoVj dh ckt l ?kkl >kM dj igu yrk gA xyk l;kl l cjh rjg l[k jgk gA

^FkkMk ikuh feyxk \^

mlu fcuk fdlh lEck/ku d rk'k dh pkdMh dh rjQ fuonu fd;k gA

viuk /;ku rk'k d iRrk ij fVdk, ogh v/kM vkokt lu dj iNrk g]

^dku tkr gk \^

^ifMrA^

tkr crkr g, mld pgj ij J"Brk dh xtc dh ped idV gk tkrh gA bl idVu e tl 'kjhj dh Fkdku N&e= gk xb gA

v/kM Hkh gYdk lk eLdjkrk g vkj ikl [kM yMd dk ikuh yku Hkt nrk gA yMdk ndku e ?kl dj ihry d ykV e ikuh y vkrk g vkj ml idMk nrk gA

ykVk idMr gh og ,d iy :d dj fxykl dk brtkj djrk g] ij yMdk mld eg d vkx [kMk jgrk gA og fxykl ekxu dh fgEer ugh tVk ikrk vkj >ViV [kMh xnu dj ikuh eg e mMyu yxrk gA ,dk,d [k[kkj vkrh g vkj vk/kk ikuh ukd&eg l ckgj fudy tkrk gA lHkh mldh rjQ n[ku yxr gA v/kM lpr djrk g]

^jke jke l HkkbA^

yMdk gkf'k;kj g og Qrh l pkj dne ihN gV tkrk g rkfd tB NhV Åij u iMA og lgt gkdj fQj ikuh xVdu yxrk g vkj [kkyh ykVk Fkekr g, mlh yMd l iNrk g]

^og norkk dgk g \ mld ikl tkuk gA^

mld bl rjg iNu l yMd d pgj ij Hk; ilj tkrk gA og fcuk dN cky ykVk Hkhrj NkM dj dgh xe gk tkrk gA

v/kM u mldk i'u lu fy;k gA tku tkrk g fd og vkneh dgk tkuk pkgrk gA ij vulquk dj nrk gA lHkh rk'k e eXu g vkj cPp lj cur n[k jg gA fdlh dk Hkh /;ku mldh rjQ ugh g ekuk vc mldh mifLFkfr d ogk dkb ek;u ugh jg x, gA tl og ogk g gh ughA tl mu ykxk d fy, mld ogk gku ;k u gku l dkb eryc ugh gA

rHkh ,d yMdk gkFk e ckljh fy, i'kvk dk gkdrk Åij dh vkj l uhp vk jgk gA og vkneh jkLrk NkM dj ,d rjQ gk tkrk gA tl gh yMdk mld ikl igprk g] og cgr /kheh vkokt e iNrk g]

^mld ikl tkuk g-----------eryc nork d ikl-------;kfu fd uxk norkd ikl A^

yMdk ,l #drk g ekuk dkb Mjkouk lki vpkud vkx Qu Qyk, [kMk gk x;k gkA ml vkneh dk fgdkjr l n[krk gA eu e ogh Ni&cB lokyy mBu yxr gA ,d iy d fy, eu e vkrk g fd mld eg ij Fkd nA ftruk gk ld Hkyk&cjk dg] ij pi jgrk gA fdlh rjg og viu dk vu'kkflr djrk gA ml

vkneh d diMk l yx jgk g fd og vPN ?kj dk i<k&fy[kk gA vPNh ukdjh&i'kk gA bl rjg d ykxk l ml lfgr xko d cPp&c< cgr vl l okfdQ g] ;kfu tc l xko clk gkxk rHkh lA

^n[kk cVk] e cgr nj l vk;k gA ykVuk Hkh gA i[kyk gA igyh ckj ;gk vkuk gvk gA^

og vkneh ml d vkx fxMfxMku yxk gA

yMdk my>uk ugh pkgrkA og ckljh l Åij dh rjQ b'kkjk djrk g vkj vkx fudy tkrk gA

vletl dh fLFkfr gA nk&pkj dne Åij nrk g vkj ihN gV dj rk'k [ky jg xob;k d ikl tkdj gkFk tkM nrk g]

^e> cgr nj ykVuk gA Åij l fnu <y jgk gA dkb xj ;k itkjh pyrk ej lkFk rk vPNk gkrkA e mldk egurkuk n nxkA^

ogh v/kM mldh rjQ ,d ljljh fuxkg nrk g vkj rk'k [kyr&[kyr le>ku yxrk g]

^n[kk Hkkb mldk pkrjk Åij igkMh ij gA gekj xko e mldk uke ugh yr u dN crkr gA vki nj l vk, g blfy, crk jgk g fd mldk dkb ;gk itkjh ugh gA xj ugh gA tk dN djuk g vdy djkA rjhdk rk fdlh u le>k;k gkxk ghA^

^th-----th-----og rk le>k;k g] ftl vk>k u ;gk Hktk g] mlh uA^

^rk tkdj olk gh djk] vdy] ;gk l dkb ugh tk,xk] u tkrk gA^

ml v/kM d pgj ij gYdh lh [kht mHkjrh gA og vkneh vnktk ugh yxk ikrk fd ;g rk'k d [ky e ck/kk d dkj.k g ;k mld bl rjg iNu dh otg lA

og pipki th-------th-----------th----'kCn dk pckrk gvk tYnh&tYnh Åij p<u yxrk gA

•

og tl gh igkMh ij igprk g ml pkrj ij dkB dh dkyh vknedn efr fn[krh gA mldh ckN f[ky tkrh gA pgj ij xtc dh ped g tl ml cjlk

dk [kk;k dkb Lo.k dk [ktkuk fey x;k gk ;k fd og viu thou dk dkb cgr ud dke dju tk jgk gkA viuk cx ,d rjQ j[krk g vkj efr d lkeu tkdj [kMk gk tkrk gA iy Hkj e Hkhrj Hkjk }"k vkj uQjr pgj ij ?kkj oeuL; d Hkko mRiUu dj nr gA vk[kk e [ku mrj vkrk gA og viu 'k= dk db ckj uke yrk gA mld cki dk uke yrk gA xk= vkj irk crkrk gA /ki&jkV tyk&p<k dj rhu ekVh&ekVh dhy efr dh Nkrh e xkM nrk gA mld ckn viu nk, ij d tr l efr dh [kc fiVkb djrk gA ;g lc dju d ckn mld pgj ij ldu gA Fkdku ugh gA eu 'kkr gA tl euk ck> flj ij l mrj x;k gkA viuk dke dju d ckn og pkrj l ,l uhp mrjrk g ekuk fdlh cM ijLdkj dk iklr dj ykV jgk gkA

•

og txg xko d dkQh Åij ,d Åph igkMh ij gA ogk NkVk lk pkrjk cuk gA bl vux< iRFkjk vkj ekVh jkMh&fleUV l fpuk&ikFkk x;k gA jkLr l Åij p<u d fy, ,d f'kyk crkj lh<h tehu e fVdkb xb gA ihN dh rjQ NkVk lk Vhyk g ftld lgkj og vknedn ydMh dh efr LFkkfir gA n[kr gh mld fuiV yxk gku dk ,glkl gk tkrk gA blh dkj.k ml uxk nork dgr gA [ky vkleku d uhp ihB d cy ihN dh vkj gYdh lh >dh bl efr u vufxur cjlkrk vkj cQ d eklek dk dgj lgk gkxkA Hkh"k.k xeh >yh gkxhA vkf/k;k&rQku cjnk'r fd, gkxA bl cuku e dku lh etcr ydMh bLreky dh xb gkxh] bldk vueku yxkuk e'kfdy gA ijUr pkj&ikp lk lkyk l bl blh rjg n[ku dh ckr crkb tkrh gA fuiV uxh efr d xy l uhp ijh Nkrh e txg&txg pkj] ikp vkj Nk&Nk bp dh db dhy Bkdh xb gA o"k Hkj budh l[;k lk l T;knk pyh tkrh gA fQj nork dk xj bUg fo'k"k fof/k l fudkyrk g vkj fQj o"k Hkj d fy, ogh flyflyk 'k: gk tkrk gA

efr d vkj&Nkj db ykg dh tx luh xjt xMh g ftue vufxur ykg d NkV&cM dMky fijk, x, gA dN piV g ftUg fdlh ykgkj l ?kMk;k x;k g vkj dN ekVh rkjk dk ekM dj cuk, x, gA ,l gh cgr l dMky pkrj d vklikl tehu ij Hkh fc[kj iM g tk tx l xy&VV dj viuh 'kDy vk/kh&v/kjh dj cB gA txg&txg xg d vkV dh p[kfV;k j[kh xb g ftUg vkxrdk u nork dk jkV d :i e p<k;k gA bud chp dkyh vkj yky jx dh phfV;k iljh gb gA chp&chp e nk&pkj dko vkj euk, ckjh&ckjh vkdj nk&pkj pkp ekj tkr g ftl dkj.k mudh pkp vkx l gYdh lQn gk xb gA ;g rHkh gkrk g tc xko d dRr ;gk ugh vkr] vU;Fkk o vkV dk pkV&pkV dj lQkpV dj tkr gA

•

nk, rFkk ihN dh vkj Hk;dj <kd gA uhp n[ku ij vk[k iFkjk tkrh g vkj fny Hk; l dkiu yxrk gA nj uhp igkMh unh ,l cg jgh g tl dkb Hk;kud dkcjk QQdkjrk gvk viu f'kdkj dh ryk'k e Hkkxk tk jgk gkA ml ikj Hkh iRFkjhy igkM g tk Åij igp dj fo'kky yEch /kkjk dk fuek.k djr gA txg&txg fo'kkydk; pVVku ,d nlj d Åij ,l fn[krh g tl Mk;uklkjk d lfn;k ijku vo'k"k mue fpiV iM gkA yxrk g tl vkleku bUgh /kkjk dh ihB ij

fVdk gvk gkA dgh&dgh t:j txyh >kfM;k dh gfj;kyh g vkj b/kj&m/kj ?kklf.k;k gA mu rd igpu d fy, unh d fdukj l db jkLr Åij p<r g vkj /kkjk ij xe gk tkr gA ; ,l fn[kkb nr g tl fdlh ;ok u fQYeh LVkby e viu cky dVokdj mud chp db lh/kh /kkfj;k cuk nh gkA bud chp db vkjr viuh&viuh cdfj;k d lkFk ?kkl dkVrh utj vk tk,xhA ; tc viu&viu ?kjk dk drkjk e ykVrh g rk yxrk g fdlh dEl;Vjhdr ifVXk dk ekml l fgyk;k tk jgk gkA

ykx bl nork dk bLreky viuh n'keuh vkj cnyk yu d fy, djr gA mudk fo'okl g fd viu ftl ljhd ;k 'k= dk o nork yxk nx mldk louk'k fuf'pr gA bl v/ke dk vtke nu d fy, fdlh xj&py dh t:jr ugh gA itkjh&dkjnkj dh vko';drk ugh gA iph&ipk;r dh njdkj ugh gA bld fy, xgkj yxkr oDr HkM&cdjk Hkh ugh pkfg,A ftl brdke yuk g og ml vkneh dh rjg pipki ;gk vkrk gA /ki tykrk gA ,d nk p[kfV;k vkV dh efr d vkx p<krk g vkj fQj viu bfPNr 'k= dk uke vfr ?k.kk vkj Øk/k l yrk gA ml ftruh xkfy;k n ldrk g nrk gA ,lk djr mldh vk[k vkj eg yky gk tkrk gA ijk cnu HkHkdu yxrk gA Øk/k] [kht vkj ngd l vkB QMQMku yxr gA ftruh Hkh n"dkeuk,] b";k] nHkko vkj cn[okgh Hkhrj Hkjh gkrh g] nork d lkeu idV gku yxrh gA tl og ;gk lfn;k l blhfy, gA mlh dh luu cBk gA

eu dh lkjh HkMkl fudyr gh og tc l rhu ;k ikp ykg dh dhy fudkyrk g vkj ikl iM fdlh iRFkj l nork dh Nkrh ij Bkd nrk gA ,d&,d dhy d lkFk og nork dk ved dk louk'k dju d fy, ifrcf/kr djrk tkrk gA mld ckn viu nkfgu iko dk trk [kkyrk g vkj rMkrM ml efr d flj vkj eg ij n ekjrk gA ml tyhy djrk gA FkRdkjrk gA Qthgr djrk gA tl og nork ugh mldk vijk/kh gkA viuk n'eu gkA dhy Bkdr vkj trk dk igkj djr g, og viu 'k= dk uke yrk tkrk g--------------------tk nok mldk lR;kuk'k djA og v/kk gk tk,A yyk&yxMk gkdj ?keA mldk dN u jgA VCcj ekj gk tk,A og ,lh chekjh l ej ftldk bykt u gkA mld chch&cPp ej tk,A i'k ej tk,A [krh&ckMh u"V gk tk,A ;kfu ftruk cjk og cky ldrk g ckyrk tkrk gA dN nj ckn pgj ij ,d dfVy eLdku Nk tkrh gA vk[k vthc rjg l pedu yxrh gA tl mlu vkt thou dk dkb lokRre dk; dj fn;k gkA tr igurk g vkj pyk vkrk gA

•

bl rjg d n'; 'kkL=h frFkkjke d NkV cV dyenr mQ dye u i'k pjkr vkj Ldy l vkr&tkr >kfM;k vkj pVVkuk d ihN l Ni&Ni dj cgr ckj n[k gA vkBoh e i<rk gA vPN&cj dh [kc igpku gA n'eu&nkLr dk Qd ekye gA tkr&dtkr tkurk gA Åp&uhp le>rk gA ij tc dkb ;gk vkdj viu lx Hkkb] lx pkpk vkj lx lEcU/kh d vfu"V d fy, nork dk foo'k djrk g rk mld jkxV [kM gk tkr gA dy tk ckgj dk vku yxrk gA dye d ckyeu e Hkhrj gh Hkhrj tl db&dN VVu yxrk gA njdu yxrk g fd viu [ku d fj'rk e Hkh D;k bl rjg dhy xkMh tk ldrh g \

og mlh nork l iNuk pkgrk g fd D;k gekj ij[kk u r> bUgh dkjxtkfj;k d fy, ;gk ykdj itk FkkA D;k r lpep fdlh d bu fu"Bj vkgokuk l mldh LokFkifr d fy, bl dkB dh efr l fudy dj m/kj pyk tkrk g \ ;g lkpr g, og db ckj fuHk;rk l pkrj ij tkdj nork d lkeu [kMk gk tkrk gA vk[k l vk[k feykrk gA og nork l lh/kk lokn djuk pkgrk gA dhy Bkd dj ugh vkj u gh trk ekj djA fouerk vkj Lug lA Hkky vkj fu'Ny eu lA viu xko d ukr&fj'r lA--------fd D;k ckj&ckj og nljk d gkFkk viu lhu dk Nyuh djokrk jgrk gA ?kkj vieku lgrk jgrk gA

yfdu dye ckr dj Hkh rk fdll-------\ ogk rk dkb nork ugh gA dkB dh efr g tk tM gA Hkkoghu gA dgh dkb vuHkfr ughA vfHkO;fDr ughA ml yxrk g fd efr dk flj g ij fnekx ugh gA dku g ij lur ugh gA vk[k g ij n[krh ugh gA ukd g ij l?krk ugh gA eg g ij tcku ugh gA fny g ij /kMdrk ugh gA ckt&Vkx g ij dkb gjdr ugh djrhA ijUr tl gh dkb ;gk vkdj mld lhu e dhy Bkdu yxrk g] ml trk l ihV&ihV dj tyhy dju yxrk g rk ekuk ;gh mldh lthouh gA fnekx fdlh vk/kfudre ;= tlk pyu yxrk gA vk[k n[ku yxrh gA dku luu yxr gA ukd l?ku yxrk gA fny /kMd jgk gA ckt&Vkxk d lkFk ij 'kjhj e mld vthckxjhc gjdr gkuh 'k: gk xb gA og nork l vpkud Hkr&fi'kkp e cny tkrk gA vc tl og lEi.k i'kkfpdrk l viu ny] cy vkj vL=&'kL= d lkFk vkØe.k d fy, r;kj gkA

dye d gn; e db fnuk l vufxur loky iui jg g] ij tokc ugh gA ftKklk, g ij lek/kku ugh gA my>u g ij ly>ko ugh gA u firk mQ itkjh frFkkjke d ikl] u cM nork d xj vkj fdlh dkjnkj d ikl] u Ldy e ekLVjk d iklA u fdlh xko oky d iklA tc Hkh og iNrk g rk lHkh d pgjk ij ,d viR;kf'kr Hk; idV gku yxrk g] ekFkk ilhu l rjcrjA Hkhrj dk /klrh vk[k ekuk ekFk ij l dkb fcPN ljdrk gvk eg ij pyk vk;k gk vkj og vHkh Md ekj nxkA >>ykgV l ckr dk Vky tkr g] ;gh dg dj fd] ^jke-------jke-------cVk] mldk uke er yb;kA^ ij ml ,d vkl g fd mlh nork d xj 'kxy nknk d ikl t:j mldk dkb mRrj gkxkA

mld efLr"d e firk vkj xko okyk dh fgnk;r fopju yxrh gA fd cPp vkj vkjr ml txg u tk,A efr dk n[ku l cpA viu i'k ogk u y tk,A n/kk: xk;k ij mldh nf"V u iMA v/k vkLFkk g fd tk cfPN;k ogk xb o xkHku ugh gkrhA n/kk: xk, n/k ugh nrhA HkkMk dh Åu mud 'kjhj e gh xy&lM tkrh gA yMfd;k n[k y rk oj ugh feyrA 'kkfn;k ugh gkrhA cPp fcxMu yxr gA Ldy ugh tkrA ge'kk Qy gkr jgr gA xko ij ldV d ckny eMjku yxr gA

yfdu dye lkroh rd dHkh Qy ugh gvk gA Dykl e gj ckj vCcy vk;k gA gkjh&chekjh ugh yxh gA cky&pky vkj le>&c> e rk db ckj ekLVjk dk ekr n tkrk gA viu ?kj&xko okyk dk gjku&ij'kku dj nrk gA nk pkj xk,&Hkl ge'kk vkcj e lb jgrh gA jt d n/k&?kh gkrk gA nlh cyk dh tkMh [kc iyh&c<h gA tc mld firk [krk e gy tkrr g rk mudh rt&eLr pky n[kr gh curh gA ljhd eg e mxfy;k nck, jg tkr gA HkM&cdfj;k Hkh [kc eeu tk, j[krh gA Åu&cdjkFkk e dHkh dkb deh ugh gb gA ?kj e mUgh l cu iVV vkj

[kkjp lHkh vk<r&fcNkr gA mUgh dh drkbi l dkV cudj igu tkr gA vukt dh deh ugh gA [krh&ckMh [kc gfj;krh gA Qly nrh gA vkt rd ?kj e Hkh dkb chekj ugh gvk g u gh ?kj e dkb vugkuh ?kVh gA

•

dye tc fdlh vkneh dk nork dh Nkrh e dhy Bkdr n[krk g rk Hkhrj rd ngy tkrk gA ;g ngy Vhoh vkj jfM;k d lekpkj vkj Hkh rh[kh dj nr gA igy ?kj e Vhoh ugh Fkk rk og cl jfM;k d lkFk gj oDr fpidk jgrk FkkA lekpkj lur jguk mlI vPNk yxrk FkkA tc l Vhoh yxk g] lc dN vk[kk d lkeu ?kVrk pyk tkrk gA tl ijk n'k mld ?kj e ?kl vk;k gA u,&u, lekpkjk vkj lhfj;yk dh nfu;k dh pdkpk/k mI fofLer fd, jgrh gA ogk Hkh mI yxrk g fd lc dN vPNk ugh gA Hkkb] Hkkb dh Nkrh e dhy Bkd jgk gA nkLr] nkLr dh Nkrh eA ifr iRuh] vkj iRuh ifr dh Nkrh eA iMklh] iMklh dhA cVk firk dk ugh c['k jgk gA lkl d ikl cg d fy, dhy g vkj cg d ikl lkl d fy,A cgu d ikl Hkkb d fy, vkj Hkkb] cgu d fy, ydj pyk gA ;kfu dkb Hkh fj'rk fcuk dhy d ugh jg x;k gA ,d tkfr nljh tkfr dh Nkrh ij dhy xkM jgh gA ,d n'k dh dhy nlj n'k dh Nkrh ij gA ,d /ke nlj /ke dh Nkrh Nuuh dj jgk gA jktuhfr] jktuhfr dh Nkrh chu jgh gA dye n[krk g fd dkb Hkh [kkyh gkFk ugh gA gj vkneh d ,d gkFk e dhy g vkj nlj e trk gA viu LokFk d fy, dkb fdlh dk c['kuk ugh pkgrkA tl ijh nfu;k e n'eukb] ?k.kk vkj uQjr dh [krh gk jgh gA fo'okl?kkr gk jgk gA ihB e Nj ?kki tk jg gA og ;g lc n[k dj lkprk jg tkrk g fd mu phtk dk mld xko d nork l dkb okLr rk ugh g \

bl rjg d dR;k dk n[kr&lur vkj mu ij lkpr g, dye dk flj pdjku yxrk gA tc dN ugh l>rk rk grk'k&fujk'k og dHkh viu i'kvk d chp pyk tkrk g rk dHkh viu fdrkck d cLr dk ,d vkj NkM dj fdlh pVVku ij cB dj ckljh ctku yxrk gA ogh ,d /ku------------------- ftl og ckj&ckj ctk;k djrk g&&

^p<;k r[r vk ekg.kk p<;k r[r]
vk;k eju vk ekg.kk vk;k eju]
Hkkb;k jh dhrh;k vk vk;k ejuA^

¼fgekpy in'k d ,d fty fcyklij dk ;g ifl) xhr gA ogk d ekjfl?kh uked xko dk fuoklh ekg.k cgr Hkyk vkneh FkkA mldk Hkkb fcyklij d jktk d ikl ukdjh djrk FkkA mlu ,d fnu fdlh otg l viuh iRuh dh gR;k dj nh vkj ekg.k dk dgk fd og bl gR;k dk vijk/k viu flj y yA mlu Hkkb dh vkKk dk iky.k fd;k vkj Qklh p< x;kA½

gkykfd ;g ykdxhr ftl og ckljh ij ctkrk g] mld {k= dk ugh g fQj Hkh u tku D;k jfM;k l mlu db ckj lu dj vkRelkr dj fy;k gA blds yEch /ku tl mld eu e ?kj dj xb gA ;gh ugh bl ykd xhr d ihN dh dFkk Hkh mlu jfM;k ij db ckj ukVd d :i e luh gA ml ;kn g viu Ldy d

Vuke.V e tc mlu bl xku dk igy xkdj vkj ckn e cklj ij luk;k Fkk rk db iy cPpk vkj ekLVjk d chp lUukVk ilj x;k FkkA lHkh dh vk[k ue gk xb Fkh vkj ml loJ"B xhr vkj cklj hoknd dk ijLdkj Hkh feyk FkkA

•

mldk firk frFkkjke 'kkL=h [kn xko d cM nork dk itkjh vkj ljip gA bru cM nork dh nk&nk ftEenkfj;k HkkX; l feyrh gA mlh d fy, mlu 'kkL=h dh ukdjh rd NkM nh gA xko ijxu e nj&nj rd mldh vPNh&[kklh lk[k cuh g fd frFkkjke u ; lc no&lok d fy, fd;k gA ij frFkkjke tkurk g ukdjh l T;knk eku&ifr"Bk nork d lkFk gA ncxrk nork d lkFk gA lokPprk nork d lkFk gA lo.krk nork d lkFk gA nork d ckn mlh dh ifr"Bk gA tk p<kok efnj e vkrk g] mlh d ikl mldk HkMkj Hkh gA og fdruk j[k] fdruk yxk, ;k fdruk bLreky dj dkb dN ugh dgrkA dkb ugh iNrkA

cM nork egkHkkjr d egku ;k)k crk, tkr g] tk no:i e ;gk idV g, FkA xko dh igkMh ij ftl nork dh Nkrh ij dhy Bkdh tkrh g vkj viu&viu LokFk lk/ku dh xjt l trk l fiVkb gkrh g mldk gkykfd cM nork l dkb yuk&nuk ugh g] ij xko d ykxk u bUg ,d nlj l tkM fn;k gA cM nork dk xj vkj nlj dkjdu fo'k"k volj ij gh ogk tkr gA ;g volj lk>h no ipk;rk dk gkrk gA igkMh ij pkrj d lkFk ,d dkBhuek pkjl dejk cuk g ftldh Nr lUnj LyVk vkj nonkj dh ydMh l Nokb xb gA ;g pkjk rjQ l [kyk gA Q'k jxhu Vkbyk l fufer gA vc cM nork dk xj mcM&[kkcM pkrj ;k tehu ij rk ugh cBxk] blfy, vyx l ;g LFkku cuk;k x;k gA ipk;r e ux nork dk xj Hkh ogh lkeu cBrk gA nj&nj l ykx ;gk Qfj;kn ydj vkr gA nk"k fuokj.k gkrk gA blh fnu ;g Hkh r; gkrk g fd fdl&fdl d ?kj tkuk gA ftl ?kj ;k 0;fDr ij nork yxk;k gkrk g ml vU; itk&lkexh d lkFk [kc gVV&dVV HkM d icU/k d fy, Hkh dgk tkrk g rkfd nork dk mldh ihB ij fcBk dj okfil yk;k tk,A

frFkkjke 'kkL=h d eu e Hkh vl l ,d dhy pHkrh jgh g fd ux nork dk LFkku xko d cM nork d flj ij D;k cuk gA ftldk xj ,d ckgj dh tkr dk gA og ml nork dk Hkh ckgj dh fcjknjh l gh ekurk gA yfdu mldk Hk; bl pHku dk Hkhrj gh Hkhrj nck, j[krk gA D;kfd ;gh Hk; ux nork dh lRrk gA rkdr gA mPprk gA ftld vkx ifMrk vkj Bkdjk d eg ij rky tM gA ol Hkh cM nork vkj ij ifMrk d xko d flj ij cB ml nork d opLo vkj irki l gh ;gk nj&nj l ykx dk vkuk&tkuk yxk jgrk gA [kkuk&ihuk gkrk gA ekl&Hkkr dh /kke yxrh gA bu lHkh e Hkh Qk;nk frFkkjke 'kkL=h dk gh T;knk gA itkjh vkj ljip gku d ukr vkjk l vf/kd no&Hkkx ml gh feyrk gA ftl ogk tkuk gkrk g og cM nork d ikl Hkh t:j eFkk Vd yrk gA :i;k&ilk p<k;k tkrk gA Ny&cdjk n tkrk gA

•

frFkkjke 'kkL=h tc l itkjh gvk g mldk dPPkk edku nk eftyk goyhuek gk x;k gA bDdrhl gkFk yEck vkj mUuhl gkFk pkMkA ij ?kj e nonkj dh ydMh yxh gA vkx vkj nk,&ck, cjkenk g ftldh Xyt jxhu 'kh'kk l nj rd pedrh

gA gj l[k&lfo/kk dk lkeu Hkhrj gA frFkkjke 'kkL=h u ?kj d ,d cM gky e lelx dk 48 bp LØhu okyk LekV Vyhfotu yxk;k gA VkVk Ldkb dh fM'k yxh gA lk&iPpkl ykxk d fy, fcLrj gA Fkkfy;k&fxykl gA tk dN lkuk&pknh g og 'kgj d ,d cd d ykdj e ljf{kr gA nk&rhu cpr [kkr Hkh gA dN ilk 'k;j ck tkj e Hkh yxk gA viu lkFk iRuh vkj cPpk rd dh thouchek ikfyfl;k Hkh y j[kh gA ncnck bruk g fd dHkh dHkkj tc dkb ljdkjh vQlj] ipk;r d i/kku] i{k&foi{k d NkV&cM urk xko vkr g rk mBu&cBu vkj jgu d fy, frFkkjke dk gh ?kj gkrk gA ml fnu nork dk vfir nk&rhu cdj t:j dVr gA egxh vxth 'kjkc gkrh gA fcuk lØkUr nork dh iph Hkh gk tkrh gA mudk nork dk vk'khokn fey tkrk gA lHkh dk [krjk igkMh ij jgu oky nork l gkrk g fd dgh fdlh u yxk rk ugh fn;k gA mldh Nkrh e mud uke dh dhy rk ugh Bkd nh gA blfy, ml nork d xj dk Hkh ml fnu cyk fy;k tkrk gA fu/kkfjr ipk;rk e rk og vkrk gh gA D;kfd cM nork dk dke&/kU/kk mlh l T;knk pyrk gA [ktkuk mlh l Hkjrk tkrk gA HkM&cdj mlh d uke l vkr gA

•

ux nork dk xj 'kxy ykgkj gA i'r&nj&i'r mud ifjokj l gh ml nork dk xj fu;Dr gkrk gA 'kxy dh me vHkh nk de iPpkl gb gA nork d uke l yEc cky g ftUg og lQn ixMh ck/k dj <d jgrk gA pkMk ekFkk g ftl ij og fdlh fo'k"k ydMh dh jk[k dk yEck&pkMk fryd yxk j[krk gA yEch dkyh nkMh gA xky&eVky eg gA N% QV dk toku n[ku e Hkh lUnj gA og lØkUr ;k nljh no ipk;rk dk igy fnu xko igp tkrk g vkj frFkkjke 'kkL=h d ;gk :drk gA fuEu tkfr dk gku l og ?kj dh nljh efty ij ugh vk ldrkA blfy, mld fy, uhp dh efty e ,d dej e lku&cBu dk icU/k fd;k tkrk gA mldk xko nl ehy l Hkh nj gA ux nork d lkFk mlh xko d ykgkjk dk cky c/kk gA ol Hkh og dkb ckge.k nork ugh gA fuEu tkfr dk nork g] ftld fy, dkb ifMr ;k Bkdj xj dl gk ldrk gA

'kxy tc Hkh frFkkjke d ?kj vkrk g rk lcl igy pid l og dye d fy, nork fd x.kr djok yrk g fd dgh mldk idki cV ij rk ugh vk x;k gA ,lk og blfy, djrk g fd dye cgr ftnnh gA mldh le> e firk dh db ckr ugh vkrh gA frFkkjke le>krk g fd xko e tk fuEu tkfr d cPp g og mul nj jgk djA tc Ldy tk, rk mul viuk cLrk u Nok,] ,lk djd mldh jkfV;k HkkV tk,xh ;kfu vifo= gk tk,xhA viu Ldy e Hkh dye dk ;g ckr [kVdrh g fd tc nkigj dk [kkuk ijklk tkrk g rk cPpk dk tkfr d uke ij vyx&vyx D;k fcBk;k tkrk gA og n[krk g fd ckge.k fcjknjh dh ,d vyx ifDr gkrh gA Bkdjk dh nljhA ykgkj d nk&pkj cPp rhlj e cBr g tcfd pkFkh e nljh fcjknjh d cPp gkr gA lcl nj cpkj tr xkBu oky dkexjk d cPp fcBk, tkr g vkj db ckj rk mu rd f[kpMh ;k [kkuk cVr&cVr [kRe gk tkrk gA

db ckj ekLVj dye dk Vkd nr g ij og ugh ekurkA mUgku frFkkjke dk Hkh mldh f'kdk;r dh g ij ml ij dkb vlj ugh gkrkA og irk ugh D;k dHkh bl tkr&fcjknjh d >>V e iMk gh ughA blfy, tc 'kxy xj mud ?kj vkrk g

rk og mlh d ikl Mjk tekdj cB tkrk g vkj nj jkr dFkk&dgkfu;k lurk jgrk gA frFkkjke bll cgr fp<rk gA db ckj rk ml 'kd gku yxrk g fd dye e lkj d lkj x.k fuEu tkfr okyk d ilj g] dgh og 'kxy dk gh tk;k rk ugh--------- \ ,lk lkpr gh mldk ekFkk Budu yxrk gA flj e >u>ukgV gkrh g vkj og duf[k;k l viuh ifMrkbu dk fugkj yrk gA fnekx dk ,d >Vdk lk yxrk g fd mldh Hkh lkp fdruh uhp tk jgh gA ifMrkbu cpkjh Hkyh vkjr gA 'kxy dk viuk NkVk Hkkb tlk ekurh gA vc tc eg Hkj og ml Hkkb ckyrh g rk ,lk lkpuk Hkh iki g] frFkkjke viuh lkp ij gh d<u yxrk gA

•

ml ux nork d ukr 'kxy dh iN cM nork d xj vkj i tkjh l Åij gh jgrh gA D;kfd ogh tkurk g fd ;fn ml nork dk fdlh u yxk fn;k g rk ml gVkuk fdl fof/k l gA cMk nork Hkh ml ugh gVk ldrkA u mld fØ;k&dykik e ck/kk Mkyrk gA 'kxy xj fl) gA nork mldh eVBh e gA mldk cky j[krk gA eku&e;kfnk j[krk gA bTtr&irhr cuh jgrh gA xko] ipk;r] ijxu vkj mll Hkh nj igkMk e mldh iN gA eku&lEeku gA ykx no nk"k gVku ml vk, fnuk y tkr gA ij cM nork d lkFk mldk Hkh opu gA tc rd ml cM nork d vkn'k ugh gk tkr og dgh ugh tkrkA mldh vkKk&vkn'k flj ekFkA tc btktr feyrh g rk og vdyk ugh tkrkA frFkkjke 'kkL=h lkFk gkrk gA nk&rhu dkjnkj vkj nk etnj tk ¼[kkM½ HkM dk nork d pkrj rd yku e enn djr gA

tgk 'kxy vkj dkjnkj tkr g ogk [kc vknj&lRdkj gkrk gA /kke yxrh gA jkrHkj itk&ikB gkrk gA lcg pkj ct ux nork d nk"k fuokj.k dk le; gkrk gA ml ml ?kj&ifjokj l tkuk gkrk gA ftl yxk;k x;k g mldk NkMuk gkrk gA 'kxy nork dk vkgoku djrk gA lkeu ,d ykg d NkV l ik= e dk;y ty dj HkHkd jg gkr gA mle /ki Mkyk tkrk gA og db ckj viu ckyk dk ml ij l ?kekrk gA mue /kvk jpkrk gA dN nj e mldk 'kjhj dkiu yx tkrk gA flj dh ixMh fxju yxrh g rk frFkkjke lHkkyrk gA 'kxy d cky [ky tkr gA

vc og 'kxy ykgkj ugh gA nork gA lkeu ykg dk 'kxy j[kk jgrk g ftl ,d yEch fdyd d lkFk xj db ckj viuh ihB ij iVdrk gA ml ?kj d ykx gkFk tkM dj [kM jgr gA og mBrk g lcd Åij l viuk ykg dk 'kxy ?kekrk gA ,d dkjnkj d ikl ykg dh cMh xjt gkrh gA ftl Hkh lHkh ij l lkr ckj ?kek;k tkrk gA nljk dkjnkj ml ykg d ik= dk mBkrk g vkj vkxu e y vkrk gA xj vkj lHkh ykx ckgj vk tkr gA HkMk yk;k tkrk gA db eU= cky tkr gA eU=k l ml ck/kk tkrk gA mle nork dk nk"k ifjokj ;k ftld fy, yxk;k gkrk g] vk tkrk gA vc vkx l Hkj ik= dk HkM dh ihB ij j[kk tkrk g vkj blh d lkFk lHkh ykx ogk l fudy iMr gA 'kke rd mUg okfil xko igpuk gkrk gA o lh/k pkrj ij uxk nork d ikl tkr gA HkM dk [kMk djd fn[kkr g fd og mldk nk"k okfil y vk, gA ,d pVVku d ihN xko dk ,d 0;fDr rt /kkj oky njkV dk mBk, jgrk gA HkM dk ?klhV dj mld ikl y tkr g vkj og iy Hkj e mldh xnu /kM l vyx dj nrk gA

vc /kke dk le; gA xko d ykxk dk igy gh Qku djd crk fn;k tkrk g fd o HkM ydj igp jg gA bl le; dgh dkb Hk; ugh gA uxk nork dk uke yu

l Hkh dkb ugh MjrkA cM nork d xj] dkjnkj] ctrjh vkj xko d en vkj cPp lHkh /kke dk vkun yr gA cl vkjr ogk ugh tkrh ftud fy, [kkuk ?kj y tk;k tkrk gA 'kkL=h frFkkjke] 'kxy xj dk rk ?kj d fy, Hkh dPpk ekl fey tkrk gA bld ckn ml ifjokj dk ftldk nk"k fuokj.k gvk g Qku ij lfpr fd;k tkrk g fd nork u mudk HkM [k'kh&[k'kh Lohdkj dj fy;k gA vc og bld nk"k l eDr gA

dye dk ;g rek'kk yxrk gA [ky yxrk gA v/k fo'okl tlk dN yxrk gA eux<r tlk yxrk gA og ekl&Hkkr dk 'kkdhu Hkh ugh gA ?kj e Hkh tc ekl idrk g rk dye ugh [kkrkA ml fnu ml [kc ?kh&'kDdj feyrk g ij og ml Hkh ckgjh eu l xVdrk gA ml ;g dHkh ugh Hkk;k fd viu et d fy, nork d uke ij HkM&cdj dh xnu dkVh tk,A bl ete e dHkh Hkh 'kkfey ugh gkrk ftld fy, ml frFkkjke 'kkL=h dh >kM luuh iMrh gA ukjktxh >yuh iMrh gA

•

dye Vyhfotu n[ku dk 'kkdhu rk g ghA mld yxu d ckn dye d et gh et gA tc og Ldy d dke l Qkfjx gkrk g rk blh d vkx cB dj lekpkj lurk jgrk gA dkb flj;y n[k yrk gA n'k&nfu;k dh [kcjk e mldk eu yxk jgrk gA i'k pxkr oDr Hkh nk pht ge'kk mld ikl jgrh gA ckljh vkj fdrkcA mldk eu nlj cPpk d lkFk [kyu e Hkh ugh jerkA frFkkjke 'kkL=h dHkh&dHkh mldh vknrk dk n[k dj gjku gk tkrk gA lkprk g fd dye oDr l igy gh cMk vkj le>nkj gku yxk gA og viu ckn mlh dk itkjh vkj ljip d in ij vklhu gkr n[ku yxk gA ijUr dye dh viu xko d cM nork d dkj&HkkMkj vkj itk&vpuk e dkb fnypLih ugh gA frFkkjke pkgrk g fd og mld lkFk nork dh iph&ipk;r e pyk djA tc nork dk jFk&NRrj nljh txg tkrjk d fy, tkrk g rk lkFk jg] ij og ge'kk bu dkek l Vyrk jgk gA Ldy d dke dk cgkuk dj nrk gA iV ;k flj e nn crk nrk gA mldh ek mld eu dk le>rh g] blfy, frFkkjke dk le>krh g fd cPpk g] D;k tcjnLrh djr jgr gkA cMk gkxk [kn viu [kkunku dh ftEenkjh le>xkA frFkkjke eku rk tkrk g ij eu rjg&rjg dh 'kdkvk e my>u yxrk gA ogh ,d cVk gA rhu cgu g] tk vc ijk, ?kjk dh vekur gk xb gA

dye tc n'k fon'k d lekpkjk e vkrdokfn;k d dgj n[krk g rk mldk flj ?ke tkrk gA cMh LØhu ij ce QVu] cnd pyu vkj ykxk d grkgr gku dh ykbo rLohj ml fopfyr dj nrh gA ftl fnu i'kkoj e vkrfd;k u Ldy d 132 cPpk dh fuee gR;k dj nh Fkh ml fnu mlu jkVh rd u [kkb FkhA mldk firk vkj ek gjku&ij'kku gk x, Fk fd bl rjg d lekpkjk dk og D;k viu fny l yxk yrk gA yfdu ; ?kVuk NkVh ugh FkhA frFkkjke dh fcjknjh d ykx Hkh 'kke dk ogh Vyhfotu n[ku vk tk;k djr FkA o Hkh bl Hk;dj ?kVuk dk n[kdj nx jg x, FkA vkt frFkkjke 'kkL=h ;g t:j lkp jgk Fkk fd mlu ?kj e bruk cMk Vhoh vkj VkVk Ldkb dh fM'k yxkdj xyr fd;k gA mld eu e Hkh ng'kr gA

•

dye nlj fnu vueu eu l Ldy x;k FkkA vkt ikFkuk dh txg ekLVjk u lHkh cPpk dk cykdj nk feuV dk eku j[kk FkkA Ldy d Cydckm ij vkt d

lekpkj fy[ku dh ckjh Hkh dye dh FkhA bl fy, og vk/kk ?k.Vk igy igp x;k FkkA mlu Ldy d v[kckj dh dkb gMykbu ugh n[kh FkhA vU;Fkk lekpkj fy[ku d fy, cPp fgUnh d igy i"B l udy dj fy;k djr FkA mlu vkr gh Hkhrj l pkd mBk;k Fkk vkj Cyd ckM d ikl tkdj Hkjh vk[kk l fy[k fn;k Fkk]

^ikfdLrkj d i'kkoj e 132 Ldyh cPpk dh vkrfd;k u fuee gR;k dhA^

^gR;k dh^ 'kCn fy[kr g, mlu pkd dk bru tkj l Cydckm ij nck;k Fkk tl dpgjh e dkb tt ekr dk Ql yk fy[kr g, viu iu d fuc dk dkxt ij nck dj rkM nrk gA

ftu cPpk u lekpkj ugh lu Fk mu lHkh u Cydckm l tkudkjh gkfly dj yh Fkh vkj ckn e Ldy d i/kkukpk; u bl n[kn ?kVuk dk eku lHkk e foLrkj l crk;k FkkA vkt fdlh dk eu u i<u dk Fkk u i<ku dk] bl fy, Ldy l tYnh NVVh gk xb FkhA ;gh lc 'kk;n vkj Ldyk e Hkh gvk gkxkA lHkh u mu ekle cPpk dh ;kn e eku j[kk gkxk] dye lkprk&lkprk ?kj pyk vk;k FkkA

•

vkt dye dk eu ihB ij mBk, fdrkck d cLr l Hkkjh gA mld lkFk mld xko&cM d cPp g ij yxrk g fd og fuiV vdyk gA og py ugh jgk g cfYd ixMMh ml [khprh pyh tk jgh gA ijk Vkxk e tku ugh gA tl og clkf[k;k d lgkj py jgk gA ef'dy l lkl vk jgh gA ml yxrk g gj rjQ ,d xgjk lUukVk iljk gvk gA ?kklf.k;k e dkb gypy ugh gA vkj&ikj vkjr ?kkl rk dkV jgh g ij tl mUgku eku or y j[kk gA mudh njkfV;k pi gA dykb;k e pfM;k dh NuNukgV [kkek'k gA iMk vkj >kfM;k l ifN;k dh pgpkgV ugh vk jgh gA o pipki 'kkdkdy cB gA dye dk gj pht 'kkdkdy yx jgh gA Hk;krj yx jgh gA tl dky diMk l eg <d f'kdkjh iMk] iRFkjk] ukfy;k vkj ?kkl dh vkV e gfFk;kjk l yl ?kkr yxk, cB gA og tkj l fpYykrk g]

^Hkkxk-------Hkkxk---------dkb g tk ge ekj nxk--------HkkxkA^

lkFkh cPp mldh fpYykgV lu dj Hkkxu yxr gA xko d lehi igp dj mUg le> ugh vkrk fd o Hkkx D;k jg gA Mj g, D;k gA D;k dye vkt bruk fopfyr vkj lgek gvk gA og mll iNuk pkgr g ij og dgh ugh gA

dye lh/kk igkMh ij uxk nork d pkrj ij pyk x;k gA viu cV Hkh ugh [kky gA ihB e dkfi;k&fdrkck l Hkjk cLrk g ij ml yxrk g mle ,d lk cRrhl eklek dh yk'k gA Hkkxr g, mld ekFk vkj eg ij l ilhu dh cn fxj jgh ij ml yxrk g tl mu yk'kk l [ku Vid jgk gA dN iy og ydMh dh efr d lkeu fuLrC/k [kMk jgrk gA utj efr dh Nkrh ij xMh vufxur dhyk ij pyh tkrh gA ml egll gku yxrk g tl og] og ugh g ml vknedn efr e rcnhy gk x;k gA o dhy mldh viuh Nkrh ij xMh gA og vFkkg onuk l dgjku yxrk gA pkrj ij cLr ler fxj tkrk g vkj NViVkr g, viuh Nkrh l ,d&,d dj mUg fudkyu dk i;kl djrk gA ij mudh tM tl cgr xgjh gA o cgr Hkhrj rd /klh gb gA bl i;kl e og viuh Nkrh ij l deht d fpFkM&fpFkM dj nrk gA

dkQh nj d ckn ml gk'k vkrk gA og yM[kMkrk gvk ,l mBrk g tl d'rh d v[kkM e gkjk gvk igyoku mB jgk gkA bl mBkiVd e mldh cklh

cLr l pkrj ij fxj xbZ gA og ,dVd mll n[krk g vkj mBk yrk gA ue vk[k g] mxfy;k ckljh d ?kjk ij nkMu yxrh gA fQj ogh ekg.kk d xhr dh nnhyh /ku ctrh g------------------------

fdl ct.kh vk ekg.kk] fdl ct.kh]

itcn ejyh vk ekg.kk] fdl ct.khA

vk;k ejuk ok ekg.kk] vk;k ejuk]

Hkkb, jh fdfr, gk ekg.kk] vk;k ejukA

^;kfu vc dk.k ejh ckljh ctk,xk ekg.kk] D;kfd r rk viu Hkkb d fy, ej jgk gA mldk /kk[kk rjh ftnxh y jgk gA^

dye vkBk l tl gh ejyh gVkrk g mld vkx Vhoh LØhu nkMu yxrh gA ogh etj] ogh 'kkj] ogh /kekd ogh xkfy;k dh rMrMkgV vkj ogh Ldy dh cfn;k e fyiV [ku l yFkir NkV&cM cPpk d 'kjhjA og dk/krh fctyh dh ekfQd mBrk g vkj efr d flj ij viuh ckljh iVd nrk gA Hkhrj Hkjh onuk, rho vkØk'k e cny xbZ gA og efr mQ nork l vk[k feykdj ckr dj jgk g]

^n[k nork] rjh Nkrh ij ftruh dhy g ru mruh gh n'efu;k fuHkkbZ gA irk ugh fdru cjlk l r ,d dBiryh dh rjg vutku ykxk d LokFk d fy, bLreky gk jgk gA n[k----e rk rj xko dk g--------rjk viuk g-----------ru ejk cpiu n[kk g------------------------e rk ge'kk rj lkFk jgk g---------dHkh Mjk ugh-------------------vkt r ejk ,d dke dj n---------------------------,d i.; dk dke-------------------A^^

dye viu cLr e l db dhy fudkyrk gA ikl l iRFkj mBkrk g vkj dgu yxrk g]

^tk-----vkt r> nlj n'k tkuk gA mudk louk'k djuk g ftUgku mu ekle cPpk dk ekjk gA o cpu ugh pkfg,A mUg ,lh ltk fey ftldh mUgku dHkh dYiuk rd ugh dh gA tk------pyk tk------------A n[k e mud uke ugh tkurkA xk= ugh tkurkA mud cki d uke Hkh ekye ugh g e>A ij bruk tkurk g fd mudk dkb /ke ugh gA o fdlh etgc d ugh gk ldrA o vkneh Hkh ugh gA fdlh Hk;dj vkj fo"kyh tkfr d [k[kkj HkfM, g----------------r NkMuk ugh mudk-----------------------A^

;g xgkj yxkr g, dye db dhy iRFkj d lkFk ml efr dh Nkrh e Bkd nrk gA fQj viu iko l nkuk tr fudkydj ihVrk jgrk gA Fkdgkj dj irk ugh dc og cgk'k gk x;k gA

fdlh u frFkkjke 'kkL=h dk [kcj dj nh gA 'kxy xj Hkh vkt mlh d lkFk gA o nkuk Hkkx dj pkrj d ikl igpr g vkj ogk dk etj n[kdj nx jg tkr gA

dye cl/k iMk gA mld vklikl fdrkc&dkfi;k fc[kjh gA tr d fpFkM efr d vklikl gA dN nj ykg d dMkyk d chp VVh gbZ ckljh g ftld ,d&nk ?kj cp g, gA rt gok tc mu ?kjk l Vdjkrh g rk fdlh ykdxhr d ckyk dh lh /ku dh vkokt vku yxrh gA

कहानी

ग्लोबल गाँव के अकेले

रमेश उपाध्याय

बेटा-बहू के पास अमरीका जा रही अपनी पत्नी को हवाई अड्डे पर विदा करके घर लौटते हुए श्यामशरण की समझ में नहीं आ रहा था कि इस समय वे जो महसूस कर रहे हैं, वह क्या है--दुख? उदासी? अकेलापन? जीवन की निरर्थकता? या सिर्फ एक झुँझलाहट?

उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि घर लौटकर वे क्या करेंगे--इतने बड़े मकान में अकेले? वे किसी से मिलना और कहना चाह रहे थे कि देखो, बेटा-बहू तो पहले ही अमरीका जाकर बस गये थे, अब ये भी चली गयीं। वहाँ बहू को बच्चा होने वाला है और इस अवसर पर बेटे को अपनी माँ की जरूरत है, इसलिए उसने अपनी माँ को तो अपने पास बुला लिया, मुझे नहीं बुलाया। हालाँकि यह खुशी का अवसर है, हम पहली बार दादा-दादी बन रहे हैं, लेकिन प्रेमशरण ने सिर्फ अपनी माँ को बुलाया। वह मुझे भी तो बुला सकता था। मैंने फोन पर उससे कहा भी था--'ये अकेली इतनी दूर कैसे आयेंगी?' आशय बिलकुल स्पष्ट था कि मुझे भी बुलाओ, लेकिन प्रेमशरण ने इशारा समझा ही नहीं। कह दिया--'मम्मी कोई अनपढ़-गँवार नहीं, दिल्ली विश्वविद्यालय की रिटायर्ड प्रोफेसर हैं। आप उन्हें एयरपोर्ट पहुँचा दीजिए। मैं यहाँ एयरपोर्ट पर उन्हें रिसीव कर लूँगा। ऐज सिंपल ऐज दैट!' ''

''नथिंग इज ऐज सिंपल ऐज दैट!'' श्यामशरण किसी से मिलकर कहना चाह रहे थे, ''पता है, प्रेमशरण को पालने, पढ़ाने और अमरीका पहुँचाने में मैंने अपनी जिंदगी होम कर दी। खुद निहायत कंजूसी से जिया, पर उसे कभी कोई अभाव महसूस नहीं होने दिया। ठीक है, उसके निर्माण में उसकी माँ का योगदान भी रहा, लेकिन इतना तो मैंने भी किया ही होगा कि वह तीन महीने के लिए मुझे भी अपने पास बुला लेता। मैं भी अमरीका देख लेता। कौन मुझे हमेशा के लिए उसके साथ वहाँ रहना था!''

उन्हें अपनी पत्नी पर भी गुस्सा आ रहा था। वे किसी से मिलकर पत्नी की शिकायत करना चाह रहे थे--''और देखो, ये भी कैसी हैं। एक बार झूठे को भी उससे नहीं कहा कि मैं अकेली कैसे आऊँगी, इन्हें भी बुला ले। झट कह दिया कि ठीक है, आती हूँ। जैसे जिंदगी भर विश्व-भ्रमण ही तो करती रही हों! अरे, यह तो सोचा होता कि तुम वहाँ जाकर करोगी क्या? बच्चे की देखभाल करोगी मुफ्त की नर्स या आया की तरह। हुँह! दादी बनने गयी हैं अकेली! जैसे दादा तो बच्चे का कुछ लगता ही नहीं! इतना ही नहीं, अभी विदा करते समय जब मैंने मजाक में कहा--'लौट आना, कहीं ऐसा न हो

कि तुम भी वहीं की हो रहो!' तो पता है क्या बोलीं? कहती हैं--'प्रेम चाहेगा, तो वहीं रह जाऊँगी। यहाँ तुम्हारे साथ अकेले रहने से तो लाख गुना अच्छा कि वहाँ अपने बच्चों के साथ रहूँ।' बोलो, ऐसा कहना चाहिए एक पत्नी को? एक जीवनसाथी को? अब इस उम्र में क्या मैं अकेला रहूँगा?''

श्यामशरण किसी से मिलकर यह सब कहना चाह रहे थे, लेकिन उन्हें सूझ नहीं रहा था कि ये बातें किससे कही जा सकती हैं। दिल्ली में उनके सहपाठी, सहकर्मी, अफसर, मातहत आदि रहे सैकड़ों परिचित हैं। लेकिन सबके सब 'भूतपूर्व' हो चुके हैं। श्यामशरण ने औपचारिक संबंध यथासंभव सबसे बनाये रखे, लेकिन घनिष्ठ और अंतरंग होने की इजाजत किसी को नहीं दी। उनका सिद्धांत रहा--'जिन्हें ऊँचे चढ़ना होता है, वे ज्यादा सामान लेकर नहीं चलते। कामचलाऊ संबंध सबसे रखो, पर किसी को इतने नजदीक न आने दो कि संबंध बोझ बन जाये।' इसी सिद्धांत पर चलकर पहले उन्होंने अपना कैरियर बनाया, फिर अपने बेटे का। लेकिन आज उन्हें लग रहा था कि उनके इस सिद्धांत ने उन्हें इतनी बड़ी दिल्ली में बिलकुल अकेला बना दिया है।

कहने को मित्र-परिचित बहुत हैं--जबसे रिटायर हुए हैं, सुबह-शाम पार्क में सैर करते समय मिलने वाले कई रिटायर्ड लोग अच्छे मित्र बन गये हैं। मगर वे सब अपनी-अपनी कहने वाले लोग हैं। श्यामशरण की बात सुनने वाला कौन है? कोई सुनता भी है, तो समझता नहीं। खुद को ऊँचा और श्यामशरण को नीचा दिखाना ही जैसे सुख-दुख बाँटना हो! कुछ दिन पहले की बात है, श्यामशरण ने अपने सफल जीवन पर संतोष व्यक्त करते हुए पड़ोस के शुक्लाजी से कहा था, ''देखिए, दुनिया कितनी तरक्की कर गयी! हम गाँव में पैदा हुए, दिल्ली आकर पढ़े और दिल्ली में बस गये; जबकि हमारा बेटा भारत में पैदा हुआ, अमरीका जाकर पढ़ा और वहीं बस गया।'' लेकिन शुक्लाजी मुँह बनाकर बोले, ''अब तो सारी दुनिया ही गाँव बन गयी है--ग्लोबल गाँव। कोई कहीं भी रहे, समझो गाँव में ही रहता है।''

सब ऐसे ही हैं। श्यामशरण ने सोचा और उन्हें लगा कि वे बिलकुल अकेले और निस्सहाय-से हो गये हैं। दुनिया में कोई ऐसा नहीं, जिसके पास जाकर दिल पर पड़ा बोझ हल्का किया जा सके।

अचानक उन्हें लगा कि वे एक बहुत पुरानी परिचित सड़क से गुजर रहे हैं। देखा कि यह तो अपने कॉलेज की ओर जाने वाली सड़क है, जिस पर इकबाल का ढाबा हुआ करता था, जहाँ बी।ए। में पढ़ते समय वे अक्सर अपने दोस्तों के साथ आकर चाय पिया करते थे। क्या जमाना था! कैसी आजादी! कैसी मस्ती! कितनी बातें और बहसें करते थे हम! कितना हँसते थे! एक चाय पीने के बहाने घंटों बैठे रहते थे। कभी-कभी जेब में चाय के पैसे नहीं होते थे। तब इकबाल अपने खास अंदाज में मुस्कराते हुए कहता था--''कोई बात नहीं, मियाँ श्याम, कल दे देना!''

बरसों से क्या, दशकों से वे इस सड़क से नहीं गुजरे। गुजरे भी होंगे, तो कभी इकबाल के ढाबे की याद नहीं आयी। आज याद आयी, तो वे बेकरार-से होकर उसे खोजने लगे। दिल्ली रोज इतनी बदलती है कि अगले दिन पहचान में नहीं आती। क्या वह ढाबा अभी तक होगा?

वाह! क्या जगह थी! न इतनी पास कि वहाँ लड़के-लड़कियों की भीड़ जुटी रहे, न इतनी दूर कि पैदल चलते हुए वहाँ तक जाया न जा सके। मुसलमान के हाथ का खाने-पीने में अपने धर्म की हानि समझने वाले वहाँ नहीं जाते थे, लेकिन प्रेमी और प्रगतिशील अक्सर वहीं जाते थे। वहाँ नीम और जामुन के पेड़ों के नीचे काफी खुली जगह थी, जहाँ मेजों के इर्द-गिर्द पड़ी बेंचों पर समूहों में और मेंहदी की झाड़ियों की बाड़ के पास पत्थर की पटियों पर एकांत में जब तक जी चाहे, बैठा जा सकता था। लेकिन श्यामशरण एकांत में बैठने वाले प्रेमी नहीं, समूह में बैठने वाले प्रगतिशील थे। और इकबाल भी खूब था! उन्हें देखकर ऐसे खिल जाता था, जैसे गरीबी के कैक्टस में प्यार का फूल!

हाँ, वह है! अभी तक है! श्यामशरण ने सड़क के किनारे टीन-टप्पर से बने उस ढाबे को बरसों बाद देखा, तो उन्हें ऐसा लगा, जैसे बरसों बाद कोई बिछुड़ी हुई प्रेमिका मिल गयी हो। उन्होंने गाड़ी किनारे करके ढाबे के पास रोक दी और उतर पड़े।

ढाबा तो वही था, मगर बदल गया था। नीम और जामुन के पेड़ कट गये थे और दोनों तरफ ऊँचे मकान बन गये थे, जिसके कारण वह खुली-खुली खुशनुमा जगह बहुत छोटी और वीरान-सी हो गयी थी। उस समय वहाँ कोई ग्राहक नहीं था। टीन के नीचे, भट्ठी के पास, सफेद बालों और सफेद दाढ़ी-मूँछों वाला एक जईफ इंसान ऊँघता-सा बैठा था।

श्यामशरण ने नजदीक जाकर कहा, ''कैसे हो, इकबाल भाई?''

इकबाल अचकचाकर उठ खड़ा हुआ और उन्हें पहचानकर बोला, ''अक्खाह! जहे-नसीब! जहे-किस्मत! आपका नाम भूल रहा हूँ, मगर मैं आपको पहचानता हूँ। वक्त ने आपको भी बूढ़ा बना दिया है, पर।।।''

''मैं श्यामशरण.....योगी, भरत, साधना वगैरह के साथ यहाँ चाय पीने आया करता था।''

''मैं तो आपको देखते ही पहचान गया, श्याम साहब!''

''तो उसी जमाने की-सी एक बढ़िया कड़क चाय पिलाइए।''

''अभी लीजिए, आप यहाँ बैठिए। चाय के साथ कुछ खायेंगे? समोसे तल दूँ?''

''हाँ, अगर दिक्कत न हो ।आपके स्वादिष्ट समोसे खाये एक जमाना बीत गया।''

"दिक्कत काहे की, साहब! यह तो हमारी खुशकिस्मती है कि आप आये। वरना तो अब स्टूडेंट लोगों में भी ऐसी फिरकापरस्ती आ गयी है कि हिंदू लड़के इधर का रुख कम ही करते हैं। समोसे तलने के लिए तेल गरम करने में कुछ वक्त लगेगा। तब तक आप ये अखबार देखिए।"

इकबाल ने एक हिंदी और एक अंग्रेजी अखबार श्यामशरण की ओर बढ़ाकर ढाबे के सामने पड़ी काठ की दो बेंचों में से एक पर बैठने का इशारा किया। श्यामशरण ने बेंच पर बैठते हुए महसूस किया कि बेंच अब पहले जैसी पुख्ता नहीं रही, उसकी चूलें हिलती हैं।

श्यामशरण ने अखबार ले तो लिये, पर खोले नहीं, बेंच के सामने पड़ी काली-मैली मेज पर रख दिये और सड़क की तरफ देखने लगे। पत्नी को उन्होंने शाम के पाँच बजे विदा किया था और अभी साढ़े पाँच ही बजे थे, लेकिन अँधेरा-सा घिर आया था। आसमान की तरफ देखा, तो सूरज कहीं नजर नहीं आया। अप्रैल के महीने में तो दिल्ली का आसमान अक्सर बिलकुल साफ रहता है, लेकिन पता नहीं क्यों, आज उस पर धुंध या धूल-सी छायी हुई थी, मानो आँधी आने के आसार हों।

अचानक उन्होंने स्वयं को बिलकुल खाली-सा महसूस किया। उन्हें लगा कि वे अब और कुछ नहीं, सिर्फ एक रिटायर्ड, बूढ़े और अकेले आदमी रह गये हैं, जिसके लिए मौसम गरमी का होता है न सर्दी का, वक्त सुबह का होता है न शाम का, दिन छुट्टी का होता है न काम का। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आसमान में धुंध है या कोहरा, बदली छायी हुई है या धूल। सामने सड़क पर सुस्त चाल से चलते पैदलों और तेज रफ्तार से गुजरते वाहनों में भी मानो कोई फर्क नहीं रह गया है। सबके सब ऐसे लगते हैं, जैसे सूखे-मुरझाये पेड़-पौधे हों, जिन्हें चलने और चलते रहने के लिए थके-पिराते पाँव तो दे दिये गये हों, पर यह न बताया गया हो कि उन्हें जाना कहाँ है।

"बेकार है, सब बेकार!" श्यामशरण सोच रहे थे, "अपना और अपने बेटे का कैरियर बनाने में ही सारी जिंदगी बर्बाद कर दी। माता-पिता, भाई-बहन, रिश्तेदार और दोस्त--सब छूट गये। पत्नी है, बेटा-बहू हैं, पोता-पोती भी होंगे, पर इन सबका होना भी क्या है? दिल्ली में अपना मकान है, बची-खुची जिंदगी आराम से जी लेने के लिए पेंशन है, बैंक में जमा पैसा है। फिर भी क्या है? इतने बड़े शहर में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसके पास जाकर बता सकें कि आज हमें कैसा लग रहा है! उफ! कैसी तन्हाई! कैसी बेचारगी!"

अचानक हँसने की दो आवाजें--एक खिलखिलाहट जैसी, दूसरी ठहाके जैसी--सुनकर श्यामशरण चैंक गये। उस दिशा में देखने पर उन्होंने पाया कि जींस पहने एक लड़का और एक लड़की उन्हीं की तरफ आ रहे हैं। उन्होंने झट सतर्क होकर अपने-आपसे पूछा, "क्या मैं इन्हें जानता हूँ?" और खुद ही खुद को उत्तर दिया, "नो, आइ डोंट।"

हिंदी में पूछे गये अपने ही सवाल का जवाब अंग्रेजी में उन्होंने शायद इसलिए दिया था कि लड़का-लड़की अंग्रेजी में बात करते हुए आ रहे थे। श्यामशरण मन ही मन उन दोनों को अंग्रेजी में अपना

परिचय देने लगे, “माना कि मैं तुम दोनों की तरह इस ढाबे पर चाय पीने आया हूँ, लेकिन यह मत समझना कि मैं कोई मामूली आदमी हूँ! मैं श्यामशरण हूँ। श्रम मंत्रालय में डिप्टी-डायरेक्टर के पद पर पहुँचकर रिटायर हुआ हूँ। मेरी पत्नी दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की प्रोफेसर बनकर रिटायर हुई है। मेरा बेटा न्यू यार्क यूनिवर्सिटी में पढ़ाता है। मेरी बहू भी वहाँ एक कंपनी में ऊँची पोस्ट पर है। यहाँ साउथ दिल्ली में मेरा अपना मकान है। चाहता तो मैं महँगे से महँगे रेस्टोरेंट में जाकर चाय पी सकता था। यहाँ चाय पीने तो मैं इसलिए आया हूँ कि अपने उन बीते दिनों को याद कर सकूँ, जब मैं तुम्हारी उम्र का था और यहाँ आकर इकबाल भाई के हाथ की चाय पिया करता था। मैं भी सेकुलर और प्रोग्रेसिव हूँ, समझे?”

लड़के-लड़की को अपनी तरफ आते देख श्यामशरण “यस प्लीज?” कहने ही वाले थे कि वे दोनों इकबाल की ओर मुड़ गये।

“चाचा, दो चाय।” लड़के ने इकबाल से कहा।

“बस, चाय? कुछ खिलाओगे नहीं?” लड़की ने लड़के से कहा।

“चाचा, दो समोसे भी।” लड़के ने इकबाल से कहा।

“चाचा, मैंने खाँसी की जो दवा लाकर दी थी, उससे चाची को कुछ आराम हुआ?” अब लड़की इकबाल से पूछ रही थी।

“आराम है, बिटिया, काफी आराम है। तुमको दुआएँ देती है। अलबत्ता बुढ़ापे में खाँसी कोई बीमारी नहीं। असली बीमारी तो बुढ़ापा है, या फिर गरीबी, जिससे तमाम बीमारियाँ पैदा होती हैं।” इकबाल ने हँसते हुए कहा। फिर मानो बात बदलने के लिए पौने से कड़ाही के गरम तेल में समोसे उलटते-पलटते हुए उसने लड़के से कहा, “मियाँ संजीव, एक बात बताओ--पढ़ाई ही करते रहोगे या नौकरी-चाकरी और ब्याह-शादी भी करोगे?”

“पीएच।डी। हो जाने दो, चाचा, फिर नौकरी-चाकरी और ब्याह-शादी भी कर लेंगे।”

“यानी बनोगे प्रोफेसर ही!” इकबाल ने लड़के को छोड़ लड़की को संबोधित किया, “रेखा बिटिया, आप बताओ कि आजकल प्रोफेसरी में क्या धरा है? अच्छे-खासे पढ़े-लिखे हो आप दोनों। किसी मल्टीनेशनल कंपनी में लग जाओ। या अमरीका-वमरीका चले जाओ। नहीं तो यूसुफ की तरह दुबई ही चले जाओ। आप लोग एम. ए.कर चुके हो, यूसुफ तो बी.ए. भी पास नहीं कर पाया। फिर भी पता है, वहाँ कितना कमा रहा है? यहाँ के हिसाब से पचास हजार माहवार!”

या तो इकबाल कुछ ज्यादा ही ऊँची आवाज में बोल रहा था, या श्यामशरण उन तीनों की बातें कुछ ज्यादा ही ध्यान देकर सुन रहे थे। वे जान चुके थे कि लड़के का नाम संजीव है और लड़की का रेखा।

लेकिन यूसुफ? वहीं बैठे-बैठे उन्होंने पूछा, ‘‘ये किसकी बात हो रही है, इकबाल भाई? यूसुफ आपका बेटा है?’’

‘‘जी, श्याम साहब!’’

‘‘दुबई में है?’’

‘‘जी, हाँ।’’

‘‘तो आप यहाँ क्यों पड़े हैं? आप भी क्यों नहीं चले जाते उसके पास दुबई?’’

‘‘अजी, श्याम साहब! हमारा बस चले, तो हम, और हम ही क्या, पूरा हिंदुस्तान ही अमीर मुल्कों में जा बसे! मगर वही बात है कि हमें तो जीना यहाँ, मरना यहाँ!’’

‘‘यूसुफ के और भाई भी तो होंगे?’’

‘‘कहाँ, साहब! तीन बहनें हैं, सो तीनों अपने-अपने घर की हुईं। यूसुफ कहकर गया था कि पैसा कमाकर लौट आयेगा और यहाँ शानदार होटल खोलेगा। लेकिन सिर्फ एक बार लौटा और अपने बीवी-बच्चों को लेकर चला गया।’’

श्यामशरण को लगा, जैसे उन्हें उनकी ही कहानी सुनायी जा रही हो। वे चुप हो गये और फिर सड़क की ओर देखने लगे। अपने-आप में डूबे हुए, खोये हुए, अकेले और निस्सहाय-से।

थोड़ी देर बाद इकबाल ने एक गिलास में चाय और एक प्लेट में दो समोसे लाकर उनके सामने रख दिये। गर्मागरम समोसों की रुचिकर सुगंध से श्यामशरण प्रसन्न हो गये।

तभी उन्होंने सुना, रेखा नामक वह लड़की कह रही थी, ‘‘कोई बात नहीं, चाचा! आज की दुनिया ऐसी ही हो गयी है। लेकिन आप फिक्र मत करो। कोई भी काम पड़े, आप हमसे कहो।’’

और संजीव नामक वह लड़का कह रहा था, ‘‘वैसे तो हम अक्सर इधर आते ही हैं, फिर भी वक्त-बेवक्त के लिए आप मेरा फोन नंबर लिख लो। आधी रात को भी याद करोगे, तो दौड़कर आ जाऊँगा। या लाओ, मैं ही लिखे देता हूँ।’’

लड़का जेब से कागज-कलम निकालकर नंबर लिखने लगा।

श्यामशरण को न जाने क्यों रोना-सा आ गया। उन्होंने कहना चाहा, ‘‘बेटा, अपना फोन नंबर मुझे भी दे दो।’’ लेकिन कह नहीं सके।

व्यंग्य..



दिलविहीन, सदा सुखी

गिरीश पंकज

लोग उनको हँसने वाले शख्स के रूप में पहचानते हैं। हँसी का गोदाम है उनके पास। लेकिन बंदे की खासियत यही है कि बिल्कुल सुबह-सुबह हँसता है, वो भी हास्य क्लब में। आजकल केवल बगीचों में चलने वाले हास्य क्लबों में जा कर हँसने का फैशन-सा चल पड़ा है। वैसे तो किसी के पास हँसने की फुरसत ही नहीं। कुछ लोगों के पास तो मरने की भी फुरसत नहीं। दिन भर तरह-तरह के घोटालें, साजिशों और आगे बढने के लिए किसम-किसम के खटराग करने के चक्कर में बेचारे लोग हँस नहीं पाते। मजबूरी में उन्हें सुबह-सुबह क्लब जा कर हँसना पड़ता है। वे जितनी देर हँसते हैं, उतनी देर की ऊर्जा बनी रहती है।

हँसने वाले जिस शख्स के बारे बता रहा हूं, उनका बड़ा नाम था। उसके दर्शन के लिए मैं एक दिन हास्य क्लब जा पहुँचा। देखा, महाशय हे..हे..हो..हो करते हुए हँस रहे हैं। व्यायाम भी किए जा रहे थे। सेहत उनकी ठीक-ठाक थी। हँसने के कारण उनकी सेहत भी ठीक रहती है, ऐसा लोगों ने बताया था। हास्य क्लब के हँसने का कार्यक्रम खत्म हुआ, तो मैं उनके पास पहुँचा ।

उन्होंने मुझे घूर कर देखा। लगभग गुस्से में । मैं घबरा गया। सोचने लगा कि क्या ये वही शख्स है जो कुछ देर पहले हँस रहा था।

मैंने कहा, "नमस्कार।" उन्होंने बहुत महान किस्म के लोगों की तरह केवल सिर हिला दिया। मैंने कहा-"आपसे कुछ बात करनी है।"

उन्होंने रूखे स्वर में कहा- "अगर रूपये-पैसे माँगने आए हों, तो बता दूँ कि वो मैं नहीं दूँगा।"

मैं हँस पड़ा। वे मुझे चौंक कर देखने लगे। मैंने कहा- "मैंने आपकी बड़ी तारीफ सुनी थी कि आप कमाल का हँसते हैं और लोगों को हास्य-व्यायाम भी सिखाते हैं। हँसने वाले लोग निर्मल हृदय के हो जाते हैं इसलिए सोचा दर्शन कर लूँ।" मैंने कुछ बड़ी-सी बात कह दी थी। सामने

वाले को फँसना ही था। निर्मल हृदय वाला जो कह दिया था। अब वे हल्की सी मुस्कान बिखरते हुए बोले, बस, ऐसे ही। मगर आपको किसने बता दिया?

मैंने कहा- "सुना था किसी से। दरअसल मैं भी हँसना चाहता हूँ। लेकिन जीवन की आपाधापी में हँसने का अवकाश ही नहीं मिलता। जैसे ही हँसने की कोशिश करता हूँ, बीमार पिता का चेहरा सामने आ जाता है। उससे उबरता हूँ तो बेटी की शादी की चिंता सताने लगती है। घर बनाने का सपना तैरने लगता है। कुल मिला कर बात यह है कि जैसे ही हँसने की सोचता हूँ, आर्थिक चिंताएँ आ कर डरा देती है । इसीलिए आपसे पूछने आया था। हँसी और स्वास्थ्य के कुछ टिप्स तो बताइए न।"

हँसी सिखाने वाले ने गंभीर हो कर कहा- "हँसने को ले कर ज्यादा तनाव नहीं पालने का। दिन भर तो मैं भी नहीं हँसता। गंभीर रहता हूँ। मेरे कारण लोग रोते हैं। मैं तो सुबह-सुबह हास्य क्लब में आ कर हँस लेता हूँ। उछल-कूद भी कर लेता हूँ। इससे मेरी सेहत बनी रहती है। फिर दिन भर मुझे जो करना होता है, करता हूँ। तब हँसने की जरूरत ही महसूस नहीं होती।

तभी किसी का फोन आ गया। सज्जन गुस्से में बोले, निबटा दो साले को। मनाता है तो ठीक वरना जैस हम करते हैं, वैसा करो। मैं अपने रास्ते के हर रोड़े को हटा देने वाला हूँ। समझे न?

इतना कह कर उसने फोन काट दिया। पता नहीं, ये किसको निबटाना चाहता है। उनकी बात सुनकर मेरी हालत पतली होने लगी। मैं भागने की मुद्रा में आ गया।

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा-"हँसना कठिन काम नहीं है। आप यहाँ हास्य क्लब में आइए। मैं कुछ टिप्स दूँगा। बाकी दिन भर अपना काम कीजिए। जो भी करते हों। सही-गलत। जैसा भी काम हो। किसी का मर्डर भी करवाना हो, तो टेंशन नहीं होगी। किसी को गाली भी देनी हो तो तनाव से नहीं गुजरना होगा। रिश्वत लेनी या देनी हो तो भी बिंदास-भाव से यह कर्म किया जा सकता है। सुबह-सुबह की हँसी बड़े काम की चीज है। मेरा वर्षों का यही अनुभव है। हँसना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। बस, एक बात का ध्यान रखना कि हँसी को दिल से नहीं, दिमाग से जोड़ कर चलो। दिल से हँसोगे, तो तुम भी आदमी बन जाओगे, तब जीवन जीने में बड़ी तकलीफ होगी। हर वक्त नैतिकता, आदर्श, चरित्र और मूल्य आदि बेकार की बातें दिमाग में हॉवी रहेंगी। इसलिए हँसी को केवल दिमाग तक सीमित रखो, तब तुम सारे खुराफात करके सफल आदमी बन सकते हो। जीवन दिल से नहीं,

दिमाग से चलता है। मैं दिमाग से चलता हूँ, दिल से नहीं। हास्य क्लब में आने वाले लोग दिमाग वाले हैं। दिल वाले एक-दो लोग हभी हैं, मगर उनसे अपनी नहीं बनती। ये टुच्चे लोग होते हैं। आदर्शवादी। पाखंडी। हिप्पोक्रेट। इसीलिए कंगाल हैं। हम लोग मालामाल हैं क्योंकि दिल का यही कोई लफड़ा ही नहीं। तुम भी दिल नहीं, दिमाग से काम लो। यहाँ आओ, और खूब हँसो। और दिन में वे सारे काम करो, जो तुम्हें नहीं करने चाहिए। तब देखना तुम पिताजी बीमारी से घबराआगे नहीं, उसके लिए पैसों को इंतजाम भी कर लोगे। बेटी की शादी की चिंता भी नहीं रहेगी। क्योंकि इतनी दौलत कमा लोग कि टेंशन फ्री हो जाओगे। मैं टेंशन फ्री हूँ। भ्रष्टाचार को शिष्टाचार समझो और क्रूरता को जीवन की जरूरत। अच्छा, चलता हूँ। कल से हमें ज्वाइन करो और ज़िंदगी को फाइन करो।"

वे लम्बा ज्ञान दे कर चले गये। फिर बगीचे में एक-दो और लोगों से मिला। ये सब हँने की कला में पारंगत थे। उनका भी यही फंडा था कि हँसने के कारोबार को बगीचे तक ही सीमित रखो। क्योंकि हँसनेवाला निर्मल मन वाला होने लगता है। निर्मल मन वाला पाप से बचता है। गाली देने से बचता है। गलत काम से डरता है। मतलब यह कि वह नैतिकता के साथ जीवन जीना चाहता है। इसलिए ध्यान रखो कि हँसना एक क्रिया है और जीवन जीना बिल्कुल दूसरी प्रक्रिया। लोगों के भयंकर किस्म के व्यावहारिक विचार सुन कर मैं घबरा गया। जीवन में हँसी की तलाश में आया था और उदास हो कर लौट गया। अब तक भटक रहा हूँ कि जीवन में हँसी का वर्चस्व कैसे बढ़े।

कुछ दिन बाद एक समाचार पढ़ा कि हास्य क्लब में हँसने वाले सज्जन किसी के साथ गाली-गलौज और मारपीट के आरोप में गिरफ्तार हो गए हैं। मुझे लगा कि ऐसा हँसना तो अपने से बिल्कुल भी न हो पाएगा। लेकिन हँसना तो पड़ेगा। जीवन को लम्बा खींचना है, तो हँसी जरूरी है, मगर लफड़ा यहीच्च है कि हँसने का सीधा असर मेरे दिल पर होने लगता है। मैं दिल को ठीक-ठाक रखना चाहता हूँ, लेकिन अनुभव यही बताते हैं कि दिल दुरुस्त रहे तो आदमी भला हो जाता है लेकिन उसे तरह-तरह की तकलीफें भी भोगनी पड़ती है।

दिलविहीन आदमी दिमागदार होते हैं और सदा सुखी रहते हैं। इन दिनों इसी उहापोह में हूँ कि करूँ क्या? हास्य क्लब ज्वाइन कर लूँ? एक बार हँस कर देखूँ तो सही कि मुझ में कैसे परिवर्तन होते हैं । नकारात्मक या सकारात्मक। नकारात्मक हुए तो फलानेजी जैसा बन जाऊँगा और सकारात्मक हुए तो कोई बात नहीं, मनुष्य बन कर तकलीफें झेलता रहूँगा, और क्या। जिसकी जैसी किस्मत।

मेरे जाने -अनजाने 'आवारा'

डॉ० गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

बात कोई ३२ साल पहले की है जब मैंने दो-तीन नाम लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के सूचना पट्ट पर लटकते हुए देखे थे | हक़ीक़त में कोई नाम नहीं लटक रहा था बल्कि वह एक कागज़ मात्र था जो एक पिन पर झूल रहा था,जिसमें निबंध लेखन की प्रतियोगिता की सूचना थी| उस सूचना में संभवत:डंडा लखनवी और भारतेंदु मिश्र 'इंदु' के साथ एक नाम 'आवारा नवीन' का भी था|

यह आयोजन युवा रचनाकार मंच का था और इन दोनों नामों में से एक अध्यक्ष था तो दूसरा सचिव और तीसरा किसी और पद का धारक /संधारक|उस प्रतियोगिता में मुझे दूसरा स्थान मिला था| उस पर कुंवर चंद्र प्रकाश सिंह के प्रदीर्घकाय हस्ताक्षरों ने मुझे सबसे अधिक सम्मोहित किया था|मेरे विद्यार्थी जीवन का वह दूसरा ऐसा पुरस्कार था जिसने लेखन में मेरा मनोबल बढाया था| पहला था स्नातक में मिला वाद-विवाद प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार और दूसरा यह था जो परास्नातक द्वितीय वर्ष में मिला था| यह प्रयोगवाद पर लिखे गए निबंध पर मिला था| शायद 'प्रयोगशील अज्ञेय और उनका बिंबविधान'विषय पर लिखा गया था|

'आवारा नवीन' की संज्ञा ने मुझे सबसे पहले आकर्षित किया था| बहुत दिनों तक तो इस विशेषण वाची व्यक्तिवाचक संज्ञा का अर्थ ही लगाता रहा था|बडे गोपनीय सूत्रों से पता लगा के दम लिया कि ये 'आवारा' नहीं सुरेश कुमार हैं| जाति का तब भी पता नहीं चल पाया | उन दिनों मेरे लिए किसी व्यक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण उसकी जाति हुआ करती थी| जब जाति पता नहीं चल पाई तो इनके बजाय भारतेंदु जी से निकटता बढ गई जिनके नाम में 'इंदु' के पहले मिश्र भी था| उनके साथ शास्त्री करते हुए (जो कभी पूरा नहीं हुआ)संस्कृत की पंडिताऊ किताबें भी घोटी थीं| 'इंदु'जी भी शास्त्रीय भाषा(संस्कृत) से अधिक भाखा (हिंदी भाषा) पर रीझे हुए थे| सुमधुर कंठ के चलते उनकी कविताएँ भी खूब चल निकली थी| उसी पर रीझ कर उन्हें मैं भी एक कवि सम्मेलन में महमूदाबाद ले गया था| उन गाढे के दिनों में भी कविता (ब्रह्मानंद सहोदर)के आनंद का चस्का ऐसा था कि उन्हें अपनी जेब से दस रुपए किराए के यह कहकर दिए थे कि ये संयोजक ने दिए हैं| उस सम्मेलन से और कुछ लाभ हुआ हो या न हुआ हो लेकिन यह लाभ ज़रूर हुआ था कि लखनऊ और महमूदाबाद जैसे पहले कभी बस से जोडे गए थे अब साहित्य से भी जुड गए थे| इसके बाद लखनऊ का 'युवा रचनाकार मंच' और 'महमूदाबाद 'अवध' के 'निराला साहित्य परिषद' सहोदर संस्थाओं की तरह काम करने लगे थे| इस जोड के अलावा बाद में इन संस्थाओं से हमारा कोई और खास नाता नहीं बन पाया | लेकिन जब-तब इनमें से किसी न किसी संस्था में अवैध घुसपैठ अवश्य कर लेता था | उन घुसपैठों में प्राय:दो नाम अपने

साहित्यिक समर्पण के लिए ज़रूर याद किए जाते थे| बात लखनऊ से चलती तो महमूदाबाद पर आकर रुकती|लखनऊ से एक नाम 'नवीन ' का उछलता तो दूसरा महमूदाबाद से श्री प्रकाश का | तब तक 'आवारा नवीन जी'केवल 'नवीन जी' के उपनाम से हम लोगों के बीच जाने जाने लगे थे| एक को साहित्य का हनुमान माना जाता था तो दूसरे को शिव यानी भोला भंडारी| महमूदाबादी भाई भांग खाकर सब कुछ लुटा देने की मुद्रा में बस हाँ में सिर हिलाने वाले श्रीप्रकाश थे तो पहले थे हनुमान की मुद्रा में गदा के बजाय सदा साइकिल की मुठिया पर हाथ कसे 'नवीन'जी|अभी मार्च में उनसे मिलना हुआ तो पता चला कि साठ के होने वाले हैं|लेकिन उनकी साइकिल अब भी उसी तरह सम्मान के साथ दरवाज़े से लगी थी जैसे बेटी की 'एक्टिवा' |

'साठा पर पाठा' जैसे लोक विश्वास को चरितार्थ करते हुए होली के अगले दिन भाभी जी के साथ शहर में होली मिलने निकले या कि टहलने यह मुझे अच्छी तरह याद नहीं लेकिन एक बार पवन तनय के पांव देहरी से बाहर क्या निकले, निकल लिए ससुराल | भाभी जी मना करती रहीं कि," ऐसे कपडों में मायके कहाँ चलेंगे ? लेकिन ये थे कि नंदी की तरह एक बार जिधर को सिर उठा दिए तो उठा दिए| उन दिनों मैं इनके बगल में ही घर बनवा रहा था तो सोचा कि चलो 'नवीन' जी से होली मिल आएं | घर पहुंचा तो बेटी ने बताया कि," बाहर गए हैं|" मुझे क्या पता था कि होली के दिनों में नवीन जी के शब्द कोश में 'बाहर' का अर्थ ससुराल भी होता है| होली में ससुराल जाने का दुस्साहस या तो शिव कर सकते हैं या फिर भोला भंडारी|यह इनकी 'साठा पर पाठा' वाली जवानी का ही जीता जागता उदाहरण है कि कहीं से भी कहीं को तान सकते हैं| खासकर ससुराल की ओर जहाँ जवान तो जवान बुड्ढे भी हुरमुट्टा बन कर होली खेलते हैं| होली में उत्तर भारत जहाँ ससुरा भी देवर लगता है वहाँ जीजा की कैसी दुर्गत हो सकती है ,यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है|इसके बावज़ूद नवीन जी का वहाँ जाना इनके अपौरुषेय पौरुष का प्रमाण नहीं तो और क्या है? इसीलिए न कि इनको न तो ब्लडप्रेशर की दवा लेनी है और न ही शुगर की|जीवन में इससे अधिक सुख भला और किस बात का हो सकता है|

अभाव इनके सच्चे साथी रहे| न अभावों से इनका कभी साथ छूटा और न अभावों का ही कभी इनसे मोह भंग हुआ|लेकिन एक बात खास है कि कोई भी अभाव इनका स्वभाव नहीं बदल पाया |इनके घर की ज़गह को कम करते हुए इनके सम्मान इनके इसी स्वभाव और समर्पण के प्रमाणपत्र हैं| इन्हेंसंस्थाएं सम्मानित कर-कर के सम्मानित होती रहीं|

ये साहित्य और समाज दोनों के अजात शत्रु हैं| बुद्ध की तरह इन्होंने भी अपनी वाणी की वीणा के तार ज़्यादा कभी नहीं कसे| जिससे भी बोले बस सम पर सुर निकलते रहे|मांगना तो इनका स्वभाव ही नहीं रहा | वैसे किसी का कुछ भी चाहे फालतू पडा रहे पर इन्होने उसे अपने काम का समझकर कभी पाना नहीं चाहा|वह राज ही क्यों न हो | 'संतन को कहा सीकरी सो काम' वाली मुद्रा में ये न जाने कितनी गद्दियों पर पांव

रखकर निकल गए| ये किसी से भी मित्रता अच्छी निभा सकते हैं पर बैर नहीं | इनके स्वभाव के चलते दूसरा कोई इनसे बैर रख ही नहीं पाएगा|

जब भी इनसे बातें करें तो मैं की उम्मीद न करें| उत्तम पुरुष सर्वनाम इनकी भाषा मेंमेहमान की तरह आता है| वह भी 'मैं' तो शायद ही कभी सुना हो| मैं ही क्या हर कोई इनके 'मैं' के लिए तरसता होगा| ये दूसरों की ही बातें जैसे इनके जीवन का पहला उद्देश्य ही है ,"पर सेवा पर उपकार में हम जग जीवन सफल बना जना जावें|" इनके इसी व्यक्तित्त्व ने मुझे भी ऐसे नेह नाते से बांधा कि वह बंधन न कभी छूटा है और न कभी छूटेगा|

कोई भी आयोजन हो बिना किसी लाभ-लोभ के इन्हें दौडते-भागते देखा जा सकता है| लखनऊ की कुछ संस्थाओं की तो प्राय: हर साहित्यिक बरात के सहबाला यही होते हैं|औरों की तरह धूप इनको भी लगती है लेकिन ये तमतमाते नहीं बल्कि हर आने वाले को तपाक से गले लगाकर स्वागत करते हैं|जल पिलाते हैं|कोई अगर इन्हें नहीं भी पहचानता हो तो भी इनके काम को देखकर आंख मूंद्कर कह देगा कि हाँ यही नवीन जी हैं|

किसी साहित्यकार ने साहित्य कितना रचा इससे अधिक महत्त्वपूर्ण उसने साहित्य कितना जिया?इन्होंने साहित्य रचा कम जिया ज़्यादा है| साहित्यिक मूल्य जितने इनके जीवन में हैं उतने बहुतेरे साहित्यकारों की सारी किताबों में भी नहीं मिलेंगे|इनको देखकर कहा जा सकता है कि जो मूल्यों पर लिखते और बोलते हैं ,उनकी तो आलोचना होती है पर जो मूल्यों को जीते हैं लोग उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं| मैं इनके मूल्यों की पक्षधरता का ऐसा ही अनुयायी हूँ|

कोई भी किताब या पत्रिका मंगाइए संस्था के लिए अलग कीमत और व्यक्ति के लिए अलग | लेकिन इनके यहाँ ऐसा कोई द्वैध नहीं है| व्यक्तिगत और संस्थागत दोनों के लिए ये एक ही भाव में उपलब्ध रहने वाले जीवंत साहित्य हैं| दुनिया का कोई भी आवारा न तो पहले कभी इनकी तरह सम्मानित हुआ है और न ही आगे कभी हो पाएगा|यह पुण्य वचन मुझ जैसे अनुभवी ऋषि के मुख से ही प्रस्फुटित हो सकता है| मैं यह वचन ऐसे ही नहीं बोल रहा हूँ| मैंने अनेक पांच-पांच ,छह-छह फुटे, सिर फुटे आवाराओं का उपचार भी कराया है| उनके सम्मान के और भी अनेक तरीके हैं,जिनसे वे प्राय: व्यक्तिगत या संस्थागत रूप से सम्मानित होते रहते हैं| लेकिन ये जिस तरीके से सम्मानित हो रहे हैं यह केवल इन्हीं इकलौते आवारा को मिल रहा है| सच में बडे लाभदायक आवारा हैं| अभी तो हम इनके पडोसी भी बन गए हैं| मुझे लगता है मैं भी जल्दी से साठ साल का हो जाऊं और इनके पास उठने-बैठने का मौका मिले| काश इनकी षष्ठिपूर्ति पर मैं भी मौज़ूद होता और इनके साथ अपना भी बिना सींग -पूंछ का बेसुरा सुर मिलाता और गाता, "आवारा हूँ||आवारा हूँ /आसमान का तारा हूँ......" |

थोडा जाने पर उससे अधिक अनजाने मित्र हैं 'आवारा नवीन' जी | इनकी वैचारिकी से तो अवगत हूँ पर आवारगी से तो अब भी पूरा का पूरा अनजाना ही हूँ | इनकी आवारगी के

अनुगमन का मौका तो नहीं मिला या यह कहें कि इन्होंने दिया ही नहीं पर वैचारिक नवता और दैहिक फुर्ती दोनों ने समान भाव से मुझे सदैव हौले-हौले झिड़का-झकझोरा है| सेवानिवृत्ति के बाद इनके साथ रहूंगा तो साहित्य भी सीखूंगा और साथ-साथ टहल कर स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त करूंगा| बिना किसी निजी या अपने रिश्तेदारों के नाम से पंजीकृत संस्था के किसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ-लोभ के ऐसे लाभदायक 'आवारा' के सर्वदा स्वस्थ और 'नवीन'बने रहने के साथ शतायु होने की मंगल कामना करता हूँ|



हिंदी व्यंग्य का वर्तमान स्वरूप



गिरीश पंकज

व्यंग्य क्या है? यह अन्याय के विरुद्ध एक रंजक-बौद्धिक प्रतिवाद है| जिसे अँगरेज़ी में हम 'सटायर' कहते हैं वही हिन्दी में व्यंग्य कहलाता है| व्यंग्य संस्कृत का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है विकलांगता। विकल- अंग। यानी विकृतियों के विरुद्ध गद्य या पद्य में रोचक शैली में लिखी गई रचना व्यंग्य है| बात को सीधे-सीधे न कह कर वोनोदपूर्ण तरीके से कहना व्यंग्य है| हिंदी व्यंग्य का भविष्य उज्ज्वल है। साहित्य की लगभग समस्त विधाओं में व्यंग्य ही इकलौती विधा है जो सच को सीधे-सीधे सच कहने का साहस करती है। साहित्य भी सच नहीं कहेगा तो कौन कहेगा? लेकिन अब सच को छिपा कर कहने का चालाक समय है। हर कोई सुरक्षित रहना चाहता है। सत्ता या व्यवस्था से पुरस्कृत होने की ललक बढ़ी है इसलिए अपने को बचा कर सच कहने की परम्परा-सी पड़ गई है। हम इधर की अनेक कविताएँ या कहानियाँ पढ़ते हैं, जिसमें अपने समय के सच को रूपायित करने की कोशिश की जाती है, ऐसा उसके लेखक ही बताते हैं। लेकिन उनकी रचनाओं में साफ-साफ वो सच दीखता नहीं। बताना-समझाना पड़ता है कि देखिए, सच यहाँ है। ऐसा अद्भुत अमूर्तन हत्प्रभ कर देता है। विसंगतियों की ऐसी कलात्मक नक्काशी कि आप विसंगतियाँ खोजते रहे जाएँ। वहीं किसी भी सफल व्यंग्य को पढ़ते हुए साफ-साफ समझ में आ जाता है कि यह राजनीति पर कटाक्ष है या समाज पर।

रचना वही सार्थक और कालजयी होती है अथवा जो युगीन पीड़ा को स्वर देती है। अन्याय के बरक्स खड़ी होती है। इस निकष पर देखें, तो व्यंग्य में ही वो ताकत है। साहित्य का अर्थ ही यही है जो हित को साथ ले कर चले। जनहित तो सच का पर्दाफाश करने में है। जो छिपे हुए नकली लोग हैं, उनका सच सामने लाना ही रचना का धर्म है। ये लोग राजनीति, साहित्य, कला, समाज या किसी भी क्षेत्र में पाए जा सकते हैं। लेकिन मेरा यह मानना है कि कलात्मक तरीके से सच की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। ऐसा करने से रचना की सम्प्रेषणीयता बढ़ जाती है। रचना अमूर्तन के स्तर तक न जा पहुँचे कि पाठक अर्थ ही तलाशता रह जाए। मुझे लगता है कि विसंगतियों की रंजक अभिव्यक्ति ही व्यंग्य है। व्यंग्य को अगर रोचकता,

रंजकता के साथ न प्रस्तुत किया जाए तो उसमें एक तरह की जड़ता या कटुता भी आ जाती है। सरसता भी व्यंग्य का एक तत्व है। इसलिए यह बेहद जरूरी है कि व्यंग्य को पठनीय बनाने के लिए उसके शिल्प पर भी ध्यान दिया जाए। उसे उबाऊ लेख न बना कर पठनीय रूप दिया जाए। यह तभी संभव होगा, जब उसे विनोदपूर्ण स्थितियों के साथ उसे प्रस्तुत किया जाए। विनोद का तड़का भी ज्यादा न हो। व्यंग्य में विनोद की मात्रा उतनी रहनी चाहिए जितनी कड़वी दवा पिलाने के लिए शक्कर की मात्रा दी जाती है। शक्कर अधिक होने से दवाई का असर खत्म हो सकता है, उसी तरह विनोद या हास्य अधिक होने से व्यंग्य की अपना असर खत्म हो जाएगा। हम यह भी कह सकते हैं कि व्यंग्य समाज की तल्खीभरी आलोचना का नाम है। यही युगीनधर्म है व्यंग्य का।

व्यंग्य को सच कहने के संस्कार कबीर से मिले, यह कहूँ तो अतिरंजना नहीं होगी। कबीर के दोहों या पदों में जो व्यंग्य दीखता है, वह आज भी सार्थक है। तुलसीदास जी का महान कृति में भी व्यंग्य शब्द मिलता है। ठेठ व्यंग्य के अर्थ में ही। व्यंग्य की उपस्थिति बगैर साहित्य कभी सफल नहीं हो सकता। कबीर-तुलसी आदि तक व्यंग्य पद्य रूप में ही मिलता है मगर भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद व्यंग्य गद्य रूप में विकसित हुआ। और उसके बाद तो हर व्यंग्यकार भारत की या समाज की दुर्दशा को अपनी-अपनी शैली में प्रस्तुत करता रहा। भारतेंदु युग में व्यंग्य पुष्पित-पल्लवित होता रहा, मगर आजादी के बाद व्यंग्य एक वृटवृक्ष बन गया। परसाई और शरद जोशी जैसे व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को जो प्रतिष्ठा दी, उसके कारण व्यंग्य साहित्य के केंद्र में आ गया। लगभग हर रचना में व्यंग्य नज़र आने लगा।

आजादी के बाद मोहभंग की स्थितियाँ बनती गई। नायक खलनायक बन गए। हालत यह हुई कि खुद नायक अपने आप को खलनायक कह कर गौरवान्वित होता रहा। सेवा की आड़ में मेवा खाने की नई संस्कृति ने सारे मूल्य ध्वस्त कर दिए। राजनीति सर्वाधिक कलुषित हो गई। और उसके साथ चलने वाले प्रशासन भी जुगलबंदी करने लगा। तब नई कविता और उसके बाद अकविता आंदोलन में इन विसंगतियों को रेखांकित करने की कोशिश की लेकिन कविता की अपनी शब्द-सीमा थी। तभी व्यंग्य ने उस पूरे दौर को संभाला और कहा जा सकता है कि साठवें दशक के आसपास साहित्य का मानो व्यंग्यावतार हुआ, जिसने चुन-चुन विसंगतियों, विद्रूपताओं पर प्रहार करने का काम किया। उस दौर की पत्रकारिता भी मिशन की तरह काम कर रही थी इसलिए व्यंग्य का भी पूरा स्पेस मिल जाता था। उस दौर में व्यंग्य व्यंग्य ही था।

वर्तमान काल में व्यंग्य का जो स्वरूप हम देख रहे हैं, वो बेहद निराश करता है। कम से कम मुझे ऐसा लगता है, क्योंकि व्यंग्य को मैं मसखरी से अलग करके देखता हूँ। आज विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य के नाम पर जो कुछ भी परोसा जा रहा है, उस में व्यंग्य कम मसखरी ज्यादा नजर आती है। अब व्यंग्य हड़बड़ी में लिखे गए समाचार की तरह हड़बड़ी में लिखा गया हलका-फुल्का साहित्य बन कर रह गया है। कहा जा सकता है कि समकालीन व्यंग्य बेहद अखबारी हो गया है। इतना अखबारी कि कई बार अंतर करना कठिन हो जाता है कि यह व्यंग्य है या समाचार। व्यंग्य रचना के ऊपर अगर व्यंग्य न लिखा रहे तो समझ में नहीं आ सकता कि वह व्यंग्य है। इस स्तर तक आ चुकी गिरावट के कारण ही व्यंग्य पर प्रश्नचिन्ह लगता रहा है। वैसे हरिशंकर परसाई कहा करते थे कि हमें अपने युग के प्रति ईमानदार होना है। जो युगीन स्थितियाँ हैं, उन पर प्रहार होना ही चाहिए, लेकिन जब व्यंग्य व्यक्ति विशेष पर केंद्रित हो कर लिखा जाने लगता है, तब उसकी गरिमा खत्म हो जाती है, तब वह राग-द्वेष का सामान हो जाता है।

दरअसल व्यंग्य वह कला है जो व्यक्ति-निरपेक्ष और समाज सापेक्ष होती है। शरद जोशी भी ऐसे कालजयी व्यंग्यकार हैं, जिन्हें साहित्य में फैला माफिया लेखक ही नहीं मानता। उनकी रचनाओं पर चर्चा नहीं करता। एक को उठाना और दूसरे को गिराना ही हिंदी आलोचना का चरित्र हो गया है। इस आलोचना ने व्यंग्य का बेहद नुकसान किया है। इधर अनेक आलोचनाओं में मैंने यही महसूस किया कि हमारे तथाकथित बड़े आलोचकों ने व्यंग्य के प्रति दोयम दर्जे का भाव रखा और एक विशेष नाम लेने के बाद व्यंग्य की यात्रा को बाधित करार देने का ही काम किया। जिन लोगों ने व्यंग्य को गरिमा प्रदान की, उन लोगों के साथ हिंदी आलोचना का भेदभाव नजरिया हैरत में डाल देता है। शरद जोशी जैसे महान व्यंग्यकारों की चर्चा किए बगैर हिंदी व्यंग्य का इतिहास अधूरा है। उन्होंने हिंदी व्यंग्य को एक पहचान दी। परसाई की तरह ही उनका अपना व्यापक अवदान है। आज जो व्यंग्य का स्वरूप दीख रहा है, उसके पीछे इन दोनों व्यंग्यकारों का खून-पसीना बहा है। इन दोनों व्यंग्यकारों को व्यंग्य लिखने के कारण परेशान भी किया गया।

हिंदी व्यंग्य को उसके और अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए ज़रूरी है कि व्यंग्य का अपना आलोचनाशास्त्र और ज्यादा प्रखर हो। व्यंग्यकार और व्यंग्यालोचक सुभाषचंदर ने हिंदी व्यंग्य का प्रामणिक इतिहास लिखा और लोकप्रिय व्यंग्यकार प्रो| प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्ययात्रा' पत्रिका के माध्यम से गंभीर व्यंग्य लेखन को प्रोत्साहित करने का काम शुरू किया। व्यंग्य पर जितना गंभीर आलोचनात्मक विमर्श होगा, उतनी ही प्रतिष्ठा इस विधा की बन सकेगी।

साहित्य की आलोचना तकरने वाले पेशेवर माफियाई आलोचकों के भरोसे व्यंग्य को प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती। इसलिए व्यंग्यकारों को अपने लेखकन के साथ ही व्यंग्य विमर्श का काम करना होगा। व्यंग्य पर अब चर्चा कम होती है यी कारण है कि साहित्य के विद्यार्थी भी व्यंग्य में उतनी रुचि नहीं लेते। हाँ, कभी-कभार जब कोई विद्यार्थी पीएच-डी की उपाधि अर्जित करने के लिए व्यंग्य साहित्य पर शोध कार्य करता है तो सुखद अनुभूति होती है कि चलो, कुछ लोग तो हैं जो व्यंग्य के माध्यम से अपने कैरियर का एक अध्याय गढ़ रहे हैं। लेकिन जैसा कि मैंने पहले ही कहा जो कुछ हो रहा है, वो ऊँट के मुँह में जीरा की मानिंद है। बहुत कम है। व्यंग्य को साहित्य के केंद्र में लाने के लिए उस पर निरंतर चर्चा जरूरी है। संगोष्ठियाँ हों, व्यंग्यपाठ हों, शोधकार्य हों। और सबसे बड़ी बात यह है कि वह युग लौटे जिस युग ने व्यंग्य के व्यंग्य बनाया। पत्र-पत्रिकाओं में, पाठ्य पुस्तकों में व्यंग्य मौजूद हो, मगर दुर्भाग्य यही है कि जिन लोगों के हाथों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने का अधिकार होता है, वे ही व्यंग्य को नापसंद करते हैं। क्योंकि व्यंग्य उनकी भी पोलें खोलता है। व्यंग्य सत्ताधीशों को, व्यवस्था से जुड़े दलालों को आहत करता है। जो गलत लोग हैं, वे व्यंग्य से विचलित होते हैं। अगर व्यंग्य को साहित्य में व्यापक स्थान मिलेगा तो पीढ़ियाँ बागवत करेंगी। सत्ता के खिलाफ जागरुकता बढग़ी। सत्ता यह सब नहीं चाहती। दल कोई भी हो, उसे गूँगे-बहरे लोग चाहिए।

इस समय हिन्दी में दो तरह के व्यंग्यकार सक्रिय हैं। एक वे जो पत्र-पत्रिकाओं में नजर आते हैं, और दूसरे वे जो स्वांत:सुखाय लिख रहे हैं, लेकिन व्यंग्य साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। यही कारण है कि व्यंग्य के वर्तमान स्वरूप को लेकर चिंता स्वाभाविक है। उसे साहित्य के केंद्र में दुबारा प्रतिष्ठित करने के लिए बचे-खुचे वरिष्ठ व्यंग्यकारों को ही काम करना होगा। और व्यंग्य की सर्वकालिक प्रतिष्ठा के लिए भले ही लघु पत्रिकाओं में लिखा जाए, गंभीर व्यंग्य लिखना होगा।

चुल्ल मुक्त देश

दीपक शर्मा 'सार्थक'



हाल ही में रिलीज़ हुई मूवी कपूर एण्ड सन्स का एक गाना -
'लड़की ब्युटीफूल कर गई चुल्ल' हो
या फिर सिंह इज ब्लिंग का लोकप्रिय गाना -
'दिल करे चूँ चां चूँ चां चूँ हो
ये आज कल के नए ज़माने के गानों को सुनकर पुराने ज़माने के लोग मुँह बिचका के कहते हैं की आज कल के गीतकारों का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। हो क्या गया है आज के गीतकारों को?
लेकिन अगर गहराई से देखा जाये तो इसमें गीतकारों का क्या दोष है ,वो तो बिचारा बस वही लिखता है जो उसके वक्त के जनरेशन की मनोदशा हो। पुराने गीतकार तो अपने गीतों में चाँद का ज़िक्र करते नहीं थकते हैं तो कुछ गीतकारों को अपनी प्रेमिका के खबसूरत थोबड़े से तुलना करने के लिए दुनियां में कुछ मिल ही नहीं रहा है।
ये पुराने गीतकार ऐसे गीत इसी लिए लिख पाए क्योंकि उस वक्त के जनरेशन की यही मनोदशा थी। उस वक्त का व्यक्ति प्रेम में मदहोश हो रहा था। प्रेमी प्रेमिका के मिलने या बिछड़ने पर संयोग या वियोग के रूप में प्रेम उत्पन्न हो रहा था लेकिन आज के यूथ में 'चुल्ल' उठ रही है।
ऐसे में अगर आज का गीतकार, 'लड़की ब्युटीफूल कर गई चुल्ल' के स्थान पर 'लड़की ब्युटीफूल कर गई मदहोश' कहे तो गीत में बनावटीपन आ जायेगा। गाने की मौलिकता ख़त्म हो जाएगी और यूथ उसे नकार देगा।
समय के साथ समाज की मनोदशा भी तेजी से बदल रही है पर एक अच्छी बात ये है कि समाज अपनी मनोदशा की अभिव्यकि के लिए नए शब्द गढ़ लेता है। उसने 'चुल्ल ' भी गढ़ लिया।
अब सोचने वाली बात ये है की आखिर ऐसा क्या हो गया है की आज के यूथ के दिल में प्रेम नहीं ,चुल्ल उठ रही है जिससे उसका दिल धड़कने की जगह चूँ चां चूँ चां कर रहा है।
लोग इसके चाहे जो कारण बतायें पर मेरे हिसाब से इसका कारण ये है कि पिछली पीढ़ी के पास मज़ा लेने के लिए सीमित साधन थे, जिससे उसके पास प्रेम में पड़ने, घण्टो चाँद को देखने और मदहोश होने का टाइम था।
पर आज की युवा पीढ़ी के पास टाइम नहीं है क्योंकि मज़ा लेने के पचासों साधन जो पैदा हो गए हैं। फेसबुक, व्हाट्सप्प, ट्यूटर, मोबाइल, टी वी, हज़ारों चैनेल कितने तो मज़ा लेने से साधन पनपते जा रहे हैं। और सबका मज़ा भी लेना ज़रूरी है पर कमबख्त टाइम तो उतना ही है।
इसलिए सभी प्रकार का मज़ा लेने के चक्कर में वो जल्दी में है और इसी जल्दबाज़ी से उद्भव होता है सर्वव्यापी निराकार 'चुल्ल ' का।
वो जल्दबाज़ी में अपने सारे काम करता है। जल्दबाज़ी में खाना भी खाता है इसी लिए फास्ट फूड का चलन चला है। फास्ट फूड मतलब जल्दी या दौड़ते हुए खाना। जल्दी में प्रेम भी कर लेता है अब इस आधुनिक यूथ के पास इतना टाइम कहाँ है की वो अपनी प्रेमिका के मुखड़े को याद करके सारी रात एक भौगोलिक पिंड (चाँद) को देखे। अब उसके पास इतना टाइम कहाँ है जो अपनी प्रेमिका की रेशमी ज़ुल्फों को सुलझाए। अब तो वो जल्दी में है। एक शायर ने कहा भी है -
अभी उलझा हुँ ज़रा वक्त को सुलझाने में

मौका मिला तो तेरी ज़ुल्फ़ भी सुलझा लूँगा।
मौका कहाँ है और भी तो मज़े लेने हैं। इसी जल्दबाज़ी के कारण यूथ 'जैंटल मैन' से 'माचो मैन' में बदल रहा है। मेरे एक मित्र को ये' माचो ' शब्द, हिंदी की एक प्रचलित मां की गाली से मिलता जुलता लगता है। वो कहते हैं की "हम पहले ही क्या कम थे जो एक दूसरे को गालियाँ देते थे जो अब खुद ही को माचो कहते फिरते हैं।
बात चुल्ल की हो रही थी आखिर इस जल्दबाज़ी से उत्पन्न चुल्ल का इलाज क्या है ?
मेरे वही मित्र के अनुसार 'चुल्ल' लाइलाज है पर सिगरेट आदि तम्माखू उत्पादों के सेवन से चुल्ल थोड़ी देर के लिए शांत ज़रूर हो जाती है। उनका मानना है की सिगरेट और तम्माखू का नशा गांजा भांग, दारु, और हीरोइन जैसा गहरा नशा नहीं होता है। सिगरेट पीने वालों को कभी नशे में बहकते नहीं देखा जाता है, इससे तो केवल चुल्ल शांत होती है तभी तो बेदर्द सरकार द्वारा लगातार टैक्स बढ़ाने के बावजूद इसकी बिक्री कम नहीं बल्कि बढती ही जा रही है।
सरकार सिगरेट निर्माता कंपनियों से कहती है कि पैकेट के 75 % भाग पर सड़ा हुआ मुँह बना होना चाहिए पर सरकार भी जानती है की लोग फिर भी तम्माखू सिगरेट उत्पादों का प्रयोग करेंगे। उसे मालूम है की लोगों में चुल्ल मची है उसे शांत करना भी सरकार की ही ज़िम्मेदारी है। उसे डर है की अगर ज़्यादा देर तक चुल्ल उठती रही तो यूथ भड़क उठेगा और कोई न कोई बहाने से आपस में लड़ने लगेगा वो बहाना चाहे देशभक्ति हो या देशद्रोह हो।जैसे कार्ल मार्क्स हर घटना के पीछे भौतिक द्वंद्व नज़र आता था ,मुझे तो अब चुल्ल नज़र आती है। भारत सरकार भी ये बात जानती है उसे पता है कि चुल्ल कैंसर से भी ज्यादा खतरनाक है तभी वो सिर्फ सिगरेट के पैकेट पर सड़े हुए मुँह बनाने की बात करती है। अगर वो सच मे कैंसर को लेके गम्भीर होती तो उस सिवर (फैक्ट्री) को ही बन्द नहीं कर देती जहाँ से गन्दगी सारे देश में फैल रही है।
पर वो तो दिखावे के लिए जनता से कहती है कि सिगरैट छोड़ दो लेकिन उसे मात्र अपने रोज के 500 करोड़ के राजस्व फिक्र है।
इस पर एक नसेड़ी का दर्द छलक उठा -
"एक सिगरेट की कीमत तुम क्या जानो लल्लूबाबू ...सुबह सुबह प्रेसर बनाती है ये सिगरेट
लडकियों को इम्प्रेस करती है ये सिगरेट....
और सबसे बड़ी बात चुल्ल शान्त करती है ये सिगरेट" ।
यूथ की इस भयानक समस्या पर मेरे अलावा किसी को फिक्र नहीं है। हमारे देश के प्रधानमंत्री ने चुनाव प्रचार के दौरान एक कविता सुनाई थी-
है कसम मुझे इस धरती की
मैं देश नही मिटने दूंगा...
क्योकि उनकी नज़रो में देशद्रोह सबसे बड़ी समस्या है। पर मैं ऐसा नही सोचता अगर मैं उनकी जगह होता तो इस कविता को कुछ इस तरह कहता-
है कसम मुझे इस धरती की मैं चुल्ल नहीं मचने दूंगा...
पप्पू को कांग्रेस मुक्त भारत चाहिए आर मुझे चुल्ल मुक्त भारत । हम दोनों ने प्रयास शुरू कर दिया है । वो तो कामयाब भी होने लगे हैं पर मेरा प्रयास जारी है ।

लीक से हटकर

साहित्यकार लक्ष्मण राव

राहुल देव

राष्ट्रभाषा के धरातल पर विशेष स्थान प्राप्त करने वाले साहित्यकार श्री लक्ष्मण राव का जन्म २२ जुलाई, 1952 को महाराष्ट्र प्रान्त के अमरावती जिले में एक छोटे से गाँव 'तदेगाँव' दशासर में हुआ | उन्होंने मराठी भाषा में माध्यमिक कक्षाएं, दिल्ली तिमारपुर पत्राचार विद्यालय से उच्चतर माध्यमिक कक्षा व् दिल्ली विश्वविद्यालय से बी|ए| उत्तीर्ण किया और अब ६३ वर्ष की उम्र में इंदिरा गाँधी राष्ट्रिय मुक्त विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम|ए|(अंतिम वर्ष) कर रहे हैं |

श्री लक्ष्मण राव हिंदी साहित्य के के प्रति आरम्भ से ही आकर्षित थे | मराठी भाषी होते हुए भी उन्हें हिंदी भाषा के प्रति हिंदी एक प्रति विशेष आकर्षण था | एक दिन इनके गाँव का रामदास नाम का लड़का छुट्टी के समय अपने मामाम के गाँव गया | जब वह लौटने लगा तो रास्ते में एक नदी पड़ी | शीशे की तरह चमकते हुए पानी में उसने नहाने के लिए छलांग लगा दी | वह फिर कभी लौट कर नहीं आया | बाद में गाँव वालों ने रामदास के शरीर को नदी से बाहर निकला | गाँव में रामदास की मृत्यु की घटना राव के लिए प्रेरणा बन गई और उन्होंने उसपर एक उपन्यास लिख डाला | लेखन का माध्यम राष्ट्रभाषा हिंदी को चुना | जब उन्हें गाँव के पुस्तकालय में हिंदी की अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने को मिलीं तो उनके मन में लेखक बनने की इच्छा जागृत हुई |

लक्ष्मण राव रात-दिन हिंदी की पुस्तकों का अध्ययन करने लगे | उन्होंने इलाहबाद से प्रकाशित चतुर्वेदी एवं प्रसाद शर्मा तथा व्याकरण वेदान्ताचार्य पंडित तारिनिश झा का संस्कृत शब्दार्थ 'कौस्तुभ ग्रन्थ' खरीदा | यह एक हिंदी-संस्कृत शब्दकोष था | उस शब्दकोष का वे गहन अध्ययन करने लगे |

श्री लक्ष्मण राव उस समय मात्र बीस वर्ष के थे | हिंदी भाषा पर जब अधिकार(कमांड) दिखाई दिया तब उन्होंने पत्राचार माध्यम से मुंबई हिंदी विद्यापीठ से हिंदी में परीक्षाएं दीं | यह बात 1973 की है | उन दिनों लक्ष्मण राव दसवीं पास करके महाराष्ट्र के अमरावती शहर में सूत मिल में टेक्सटाइल मजदूर के रूप में काम कर रहे थे | 1975 में अप्रैल के महीने में

बिजली के कारण मिल बंद हो गई और लक्ष्मण राव अमरावती से अपना सामान उठाकर गाँव चले गए | वहां वे खेती का काम करने लगे | वे हमेशा मानसिक तनाव से ग्रस्त रहने लगे | एक महीने के बाद मई महीने में उन्होंने पिताजी से 40 रुपये लिए और गाँव से भोपाल आ गए | यहाँ तक 40 रुपये समाप्त हो गए |



लक्ष्मण राव भोपाल में ही एक भवन पर पांच रुपये प्रतिदिन के हिसाब से बेलदार का | तीन महीने भोपाल में रहकर 30 जुलाई, 1975 को जी टी एक्सप्रेस से दिल्ली आये | दिल्ली में दो-तीन दिन तक बिरला मंदिर धर्मशाला में ठहरे | काम ढूंढ रहे थे पर मिल नहीं रहा था | जीवन में कठिनतम समय पर श्री लक्ष्मण राव ने ढाबों पर बर्तन साफ़ करने का काम स्वीकार किया | दो वर्ष लगातार यही चलता रहा, कभी ढाबे पर बर्तन साफ़ करना, कभी भवनों पर मजदूरी करना, आदि |

1977 में दिल्ली जैसे भीड़ भरे शहर में आईटीओ क्षेत्र के विष्णु दिगंबर मार्ग पर श्री लक्ष्मण राव पेड़ के नीचे बैठकर पान-बीड़ी, सिग्रेट बेचने लगे | वस्तुतः उनकी छोटी सी दूकान दिल्ली नगर निगम व् दिल्ली पुलिस अनेक बार उजाड़ी रही पर उन्होंने एक सफल साहित्यकार बनाने का सपना अधूरा नहीं छोड़ा |

श्री लक्ष्मण राव दरियागंज के रविवारीय पुस्तक बाजार में जाकर अध्ययन करने हेतु पूरे सप्ताह भर के लिए साहित्य खरीदकर लाते थे | उन्ही दिनों उन्हें साहित्य सम्राट

शेक्सपीयर व् सर्वश्रेठ यूनानी नाटककार सोफोक्लीज का पता चला | इसी तरह मुंशी प्रेमचंद, शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय आदि साहित्यकारों की पुस्तकों का अध्ययन करने लगे | 1973से पहले रोमांटिक उपन्यासकार गुलशन नंदा का बहुत नाम था |गुलशन नंदा के उपन्यास को पढ़कर ही लक्ष्मण राव ने लेखक बनने का सपना संजोया | परन्तु यह धरातल साधारण नहीं है, इसकी कल्पना लक्ष्मण राव को नहीं थी | ऐसा लक्ष्मण राव बताते हैं |

उनका पहला उपन्यास 'नई दुनिया की नई कहानी' 1971 में प्रकाशित हुआ | उस समय वे चर्चा का विषय बन गए | एक पानवाला उपन्यासकार, लोगों को विश्वास नहीं हो रहा था | परन्तु टाइम्स ऑफ़ इण्डिया के सन्डे रिव्यू में उनका परिचय प्रकाशित हुआ | यह बात 01 फ़रवरी, 1971 की है | तब उनके कार्य पर लोगों को विश्वास होने लगा |



इसके बाद देश-विदेश के समाचार पत्रों, रडियो तथा दूरदर्शन पर श्री लक्ष्मण राव मानवीय समाचार सूचक बन गए | धीरे-धीरे उनका परिचय सम्माननीय लोगों के साथ बढ़ने लगा |

27 मई,1984 को तीन मूर्ति भवन में पूर्व प्रधान्मंतिर इंदिरा गाँधी से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ | जब उन्होंने श्रीमती इंदिरा गाँधी के सामने उनके जीवन पर पुस्तक लिखने की मंशा व्यक्त की तब उन्होंने अपने जीवन के बदले प्रधानमंत्री कार्यालय के सम्बन्ध में लिखने का सुझाव दिया | लक्ष्मण राव ने उनके सुझाव को स्वीकार करते हुए उन्ही के कार्यकाल पर आधारित एक नाटक लिखा - 'प्रधानमंत्री' और 1984 में प्रकाशित

किया पश्चात 2015 में एक और वैचारिक रचना प्रधानमन्त्री के नाम से ही प्रकाशित की जो इंदिरा गाँधी के 1969 से 1972 के कार्यकाल पर आधारित है |



एक सामान्य व्यक्ति की रचनायें हिंदी भाषा में प्रकाशित होना अपने आप में विशेषता है | कठिन परिश्रम करके साहित्यिक धरातल तैयार करना व शुन्य से शिखर तक पहुँचना इसके पीछे बहुत बड़ा संघर्ष है |

लक्ष्मण राव के अनुसार -"मेरे चालीस वर्षों के परिश्रम से मैं साहित्यकार बन गया और अब मेरे लिए इस क्षेत्र का प्रत्येक मार्ग सरल हो गया है | पुस्तकें लिखने से लेकर बिक्री तक |" आज श्री लक्ष्मण राव हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उच्चकोटि के साहित्यकार माने जाते हैं |

देश विदेश के समाचार पत्रों नें लक्ष्मण राव को विशेष स्थान देकर उनका जीवन परिचय प्रकाशित किया है | यह सत्य हिंदी भाषी लेखकों के लिए गर्व की बात है | अंततः लक्ष्मण राव के साथ एक नाम जोड़ना बहुत आवश्यक है, वह है श्री सूर्यकांत | सूर्यकांत लक्ष्मण राव के घनिष्ठ मित्र हैं,परन्तु लक्ष्मण राव उन्हें अपने सगे भाई का दर्जा देते हैं | लक्ष्मण राव व सुर्यकंत्जी की मित्रता पिछले 48 वर्षों से बनी हुई है | जब भी अमरावती को याद किया जाता है तो सुर्यकान्तजी का नाम अनायास ही सामने आ जाता है, यह कहना है लक्षमण राव का |

कविता

रेत के बने पुल तो बह ही जाने थे

-डा. राजेंद्र गौतम

रेत के बने पुल तो बह ही जाने थे
रोज-रोज हम दुर्घटनाएँ जीते
उस पर ही बढ़ आया यह
नारों का रथ दलदली घाटियों तक
जाता था जो पथ
हार चुके अब तो हम कीचड़ उलीचते
इस यात्रा में आगे जाने क्या बीते
यह जो दालानों तक
बीहड़ उग आया
किससे पूछें
इसको किसने सरसाया
गलियों तक आहट कब ज़िंदा जा पाती
खिड़की के खुलते ही गुर्राते चीते
जिस समय-सारथी को
अपना सब सौंपा
उसने ही अब हम पर
निर्वासन थोंपा
मानसरोवर में ही हो जब जहर घुला
कैसे तब अंजुली भर गंगाजल पीते



गीता पंडित की कविताएँ

गीता पंडित

नपुंसक

जानना चाहते तो
जान सकते थे मुझे
नहीं जानना चाहा
तो नहीं जान पाये
सदियाँ बीतने के बाद भी
देह की सुरंगों में कैदकर
माँगते हो प्रमाणपत्र
पुरुषत्व का
अवश्य दूँगी
अगर तुम मुझे जीत सको प्रेम में
अंदर से बाहर तक
केवल देह नहीं मैं
तुमने समझा केवल देह
हर चौराहे पर
घर बाहर
अँधेरे उजाले
टांग दिया मुझे नंगा
समझकर असहाय, बेबस, अबला
लो उतारकर फ़ेंकती हूँ लज्जा का झीना
आवरण
निर्वस्त्र है मेरी देह
भोगो इसे बर्बरता से
भोगते रहो तब तक
जब तक कि ऊब ना जाये तुम्हारा मन
ऊब ना जाये तुम्हारा तन
उबकाई न लेने लगे तुम्हारा वहशीपन
तब पूछना अपने आप से
मर्दानगी के मायने
अगर शेष रहे खुद को रख पाना
स्त्री और पुरुष के बीच की श्रेणी में भी
खुश होना
उत्सव मनाना
क्यूंकि वो खुशी होगी एक मृतक की
जो ढूँढ रहा होगा
उस नपुंसकता में अपना होना
मैं धिक्कारती हूँ इस होने को
इस पुरुषत्व को
इस मर्दानगी को
मैं तब भी थी
अब भी हूँ
और रहूंगी
आज खुद तय करूंगी
मैं अपना होना |

सुनो प्रेम हूँ मैं (स्त्री)

मेरे पास आओ
बैठो
और सुनो धीमे से
मैं
तुम्हारी थी
तुम्हारी रहूंगी
मैं प्रेम हूँ
जीतना है तो जीतो
मुझे अपने प्रेम से
सदियों से
मैं तो
केवल तुम्हारी हूँ
पहचानो

मेरा होना शेष रहेगा (स्त्री)

जानती हूँ
मेरा होना
शेष रखेगा
इस नष्ट होती हुई पृथ्वी को
इसलिये हर सुबह
उतरती हूँ सूरज के घर में
पीती हूँ धूप
ताकि सोखकर अपना सीलापन
बह सकूं हवा सी
थपथथपाती हुई हर बंद दरवाज़ा
हर बंद खिडकी
हर तहखाना
हर सुरंग
जिसमें उड़ने को व्याकुल है
पंख कटी चिड़िया |



शुशील की कविताएँ

शुशील कुमार शैली

कौओं के रूप में

मिल जाती है सांत्वना तुम्हें
कह देने भर से कि
ज़मीन में आधा गड़ा आदमी
आस्था का प्रतीक है, सड़क पर
लुड़का हुआ आदमी किसी पूर्व जन्म का प्रेत,
देखो ! तुम्हारे घर के सामने से गुजरता
हुआ - तालाब
अब सूख चुका है, सतह पर
वो सारे तांबे के सिक्के, नारियल
मूँह चिड़ा रहे हैं, जिसके
आधार पर अब तक तुम, जीवित रहते आए हो,
सोचना ही होगा अब तुम्हें कि ....
चर्रमरा कर टूटते हुई दीवारें
तुम्हारी अपनी न थीं ,
और तुम्हें पता है कि ....तुम
आज भी माथे पर लगे तिलक से ही
सोचना शुरू करता हो
पैर की खड़ाऊं पर आकर
ठहर जाता हो,
क्योंकि तुम सोचते हो कि ....
पित्रपक्ष में ....कौओं के रूप में
तुम्हारे पिता आते हैं,
तुम्हें पता है आज जब में उस पेड़ के नीचे
बैठने जाता हूँ , जिसे मेरे बापू ने लगाया था
वह मुझे छाया नहीं, धकेल देता है
बताता है कि तेरी झुकी हुई पीट्ठ
पड़ोसी की नफ़रत नहीं
सत्ता की दलाली का साज़िश है |

हत्याओं के शौर में

हत्याओं के शौर में गहरा सन्नाटा है कि ....
सड़क से गुजरता हुआ आदमी सिर्फ़
पहिरावे की वज़ह से मारा जाता है ,
यह कोई ख़ास दौर नहीं , जो मेरे
मुहल्ले,शहर या,मुल्क में चल रहा है
यह तो आम बात है कि ....
एक भेड़िया दिमाग से निकली हुई साज़िश
की पुष्टि के लिए सारा शहर जलने लगता है ,
कहीं और की बात ही क्यों लूं मैं
ये तो 'मेरे पंजाब' के भी हालात हैं, कि
लोग भीरूता को अपनी छूपाने के लिए
एक गाल पड़े चपेड़ को भूलकर
खुशी-खशी दूसरे के लिए तैयार हो जाते हैं ,
बहसते हैं मुद्दों को लेकर
कि ....मारे गए व्यक्ति का कौन सा धर्म था
कुचलने वाली भीड़ का क्या मर्म था
(क्योंकि भीड़ अंधी नहीं होती;अंधी कर दी जाती है)
बाज़ार खुला है या बंद है
ये हत्याओं की शुरूयात है या अंत है
और पीछे सड़क पर पड़ी पौशाक को लेकर
मठाधीशों का क्या मत है ?
मैं पूछता हूं रोक .... टोक ....
इस सब बातों में क्या फर्क है
ये तो राजनीति की किताब का पहला तर्क है ,
क्योंकि तुम भूल जाते हो कि
कल जिसके गले में तुम्हारी बाहें थी
ये उसी का देखा स्वप्न है |

संस्कृति के उजाले में

अनभिज्ञ नहीं हो तुम
इस बात से कि ....
सामने की दीवार पर
प्राकृतिक चित्र बना डालने की
सांत्वना में ....तुमने
युगों - युगों से उसे जो
देवदासी के रूप में
अपने प्रभु के सहवास में रखा
अजंता की गुफ़ाएं , गवाह हैं उसकी ,

पुरातत्व के जीवाणु
इस खोज में लगे हैं कि -
कहीं- न- कहीं से वो
हस्त-लिखित प्रति मिल जाए
जिससे हम अपने पौराणिक कृत्यों को
उचित ठहरा सकें ,

अधिकारियों ने सांस्कृतिक आंख के कोर से जब
मिट्टी में दबी स्त्री-पुरुष के अर्द्ध-युगल की
मूर्ति को खोज निकाला तो
घोषणाओं का एक दौर शुरू हुआ
कि आधा भाग होने के कारण
उसे शेष प्रभुत्व भाग पर निर्भर रहना होगा ,

सामने की दीवार पर उकरे चित्र को
पूरी सौम्यता के साथ
नाभि के ऊपर-नीचे
दो भागों में बांट दिया गया
यहीं से अहिल्या कभी
पाषाण युग से बाहर न झांक सकी |

बुत जिंदा हैं

अपने भीतर जिंदा रखें एक बुत
देखते रहें, सुनते रहें, चुपचाप
इसी कोशिश में निकलता रहे समय
रसोई के दाएं कोने से
दहलीज़ के बाएं कोने तक,

एक आदर्श गृहस्थ के बस यही स्वप्न होते हैं
कि बिस्तर के दोनों ओर वो और उसकी पत्नी
इस तसल्ली पर इत्मीनान से सौ सकें की
बीच में जिंदा है उनका भविष्य
और देखे गये सपनों के आकार ।

शब्दों के बीहड़ वनों से

अकसर सहम जाता हूँ मैं
शब्दों के सपाटपन से कि
कहीं उसे मालूम न हो जाए कि
मैं सोच से नक्सलवादी हूँ
बस इसी लिये शब्दों के बीहड़ वनों में
किसी वृक्ष के पीछे से
मुठभेड़ जारी रखने की कोशिश में रहता हूँ
क्योंकि सोच को जिंदा रखने के लिये मरना
ज़रूरी नहीं ।

पूरी घृणा के बावज़ूद

भाषा के सम्पूर्ण खुरर्दपन के साथ
सारे पारिभाषिक शब्दों को दरकिनार कर
मैं उपस्थित हूं आप के समक्ष
वर्जित शब्दों की सम्पूर्ण मर्यादा के साथ,
पेशे से पूरी घृणा के बावजूद
बिस्तर पर मुस्कराती औरत की तरह
मुझे कविताओं में आना पड़ता है,
न चाहते हुए भी
जहां उसे बाजार का लाइसंस दे दिया जाता है
वहां सम्मेलनों में मुझे भी दात देते हुए
कवि ठहरा दिया जाता है,
पक्तियों को एक दूसरे के पास रखते समय
परस्पर घृणा के बावज़ूद
दो कवि गले मिलते हुए
मन ही मन गाली देते
भाषा के स्वच्छता अभियान में शामिल हो जाते हैं
उस औरत के गर्भ धारण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को
पहले तो वह शब्दकोश में स्थान नहीं देते
बाद में उसकी देह के सम्पूर्ण भूगोल को
संग्रह के केन्द्र में रखकर स्पर्श करते हैं,
देवालयों की अंधेरी आस्थाओं को समर्पित
प्रथाओं की दीवारों में देवों का भोग बनती
देवदासियों की परछाई से अछूते
सारे विधान
कूर्सीवपर बैठी महलाओं के
रेश्मी कपड़ों के पास से गुजर जाते हैं
न चाहते हुए भी पादरी
की वासना का शिकार बनी
वह नन
जब कवि या किसी संस्था के हाथ लगती है
या तो वह कविता या
कानून बनती है |

ऊब का आकार

सारा जीवन
अंधेरे कोने में बीत जाने पर
एक निश्चित दुर्घटना के बाद
अब मीडिया पर
सूर्खियां है, वह-भाषा को लगी जुबान ने
आगे बढ़ते समय के
किसी कांटे पर टांग दिया है, उसे
दिन में बात सुनाने से
अपना कोई रास्ता भूल जाता है
इसी लोक विश्वास पर
पकड़ लिया है अंधेरा सभी ने
बात अभी पुरानी नहीं हुई कि
सड़क पर पड़े आदमी के ऊपर
छाप दिया गया था नक्शा देश का
निर्धारित कर दिया गया था
भविष्य जनता का,
राशन की लम्बी कतारों में
प्रत्येक आदमी, अपनी स्थिति के अनुसार
अंधा हो गया था
ठहर गया था किसी - न - किसी
राशनकार्ड की तस्दीकशुदा
मौहर के दायरों में,
अंतिम सांस के लिये, अस्पतालों में
द्वार खुले हैं और आराम से देखा जा सकता है
छत पर घूमते पंखों में
ऊब का आकार,एक कोने में पड़े कूड़ेदान में
तुम्हें किसी- न-किसी
नवजात शिशु का शव मिल ही जायेगा,
इन सब में कुछ नया नहीं है
आज की व्यवस्था के दायरों में
तुम्हें उसके मुहं से
वही बास मिलेगी जो तुमने
कल्पना में न सोच कर भी
अपनी नाक में कभी अनुभव की थी ।

मैं, सहज ही रहता हूँ आज कल

घटनाओं के इस दौर में भी
सहज ही रहता हूँ आज कल
चाहे फुटपाथ पर कोई कुचला जाए, या
रात के वहशी अँधेरे में सारी बस्ती जलकर राख़
हो जाए, या
बम्ब विस्फ़ोट में मरे हुओं की गणना के लिए
जांच कमेटी
गठित कर दी जाए, या
शोका ग्रस्त इलाकों में मुहँ चिड़ाता
हरियाली का बड़ा सा पोस्टर लगा दिया जाए
सहज ही रहता हूँ 'मैं',
क्यों कि सहज रहना मेरे समय की
सबसे सुविधा पूर्ण मुद्रा है,
कभी-कभी पास से गुजरते युवाओं के
खुले मुहँ, लाल आँखों, फड़फड़ाती भुजाओं
के बारे में सोचता हूँ तो
दिमाग के किसी गुप्त कोने में दुबके उस वाक्य
उसकी व्याकरण के बारे सोचता हूँ कि
"क्यों न ज़रा सा मरा जाए ?"
फिर इस सत्य तक पहुँच जाता हूँ कि
किसी भी आदमी को कहीं और जाने से पहले
मसलन बीबी या प्रेमिका की बगल में
या
बच्चों को कन्धे पर बिठा किसी मेले का हिस्सा
या
परिवार के इक्का-दक्का लोगों के साथ
एक-दूसरे के चेहरों के ठीक सामने
ख़ाना खाने से पहले
"कि क्यों न ज़रा सा मरा जाए ?"
यहीं सोचते-सोचते 'मैं' ठीक
एक न्यूज चैनल के माननीय संवाददाता की
बगल में
आ खड़ा होता हूँ, कि
"भारत एक सतरंगी चिड़िया का नाम है"
कि
इतनी समृद्धि है कि -
हर इक व्यक्ति के पास जीवन का 'आधार' है
मसलन ख़ूबसूरत बीबी है
चुलबुले मासूम बच्चे हैं
और वर्ष भर का इक कैलंडर है
और जो भी इसके अंदर है, वो गाँधी जी का
'बंदर' है,
और मैं 'शहर और जंगल के बढ़ते संतुलन'
के ठीक नीचे
मेरे गाँव का नक्शा सिकुड़ते हुए पाता हूँ
और साथ खड़े, साठ से ऊपर
बढ़े की कही आपको बतलाता हूँ, कि -
हर नैश्नल-पार्क के पास इक कसाई की दुकान है
और
न्यायालय की बगल में नाई की
और मैं सोचता कि ये कितना अद्भुत मिलन है
लेकिन मेरे चेहरे पर सीलन है ।

शेखर की कविताएँ



शेखर सावंत

प्रेम

मैं प्रेम करना चाहता था
कई बार प्रेम में पड़ा भी था
पर हर बार निकल आया था

प्रेम में जिस ऐकांतिक मुखरता की जरुरत थी
वो शायद मुझमें थी ही नहीं

वाणी को निःशब्दता में
और एकांत को मुखरता में बदलना
मैं सीख नहीं पाया था
जो प्रेम के लिए जरुरी था

संकेतों की भाषा मेरे लिए अजूबी थी
जबकि प्रेमिकाएँ इसी भाषा में प्रेम करती थीं

लगता है प्रेम के बिना मेरा जीवन
अधूरा ही रह जाएगा ।

वृत्त

मेरे वृत्त में
एक जगह एक अदृश्य छोर है
जो गोल-गोल घूमते हुए वृत्त के बीच से निकलकर
बाएँ-दाएँ होते हुए
एक अनंत अदृश्य की तरफ चला जाता है

मेरे वृत्त का घूर्णन पूर्ण वृत्तीय नहीं है

सिर्फ गोल-गोल घूमते रहना ही
जीवन नहीं है
जीवन आनंद है आड़ी-तिरछी रेखाओं का ।

मोनिका की कविता



-डॉ० मोनिका शर्मा

शुभकामनाएँ

चले तो आये हैं दूर
अपनी धरती से
पर आत्मा में बसी
और आस्था में रमी है
उसी मिट्टी की महक
जो बांधे रहती है हमें
अपनी ही जड़ों से
इसी बुनियाद को अचल
रखने के प्रयास में हम
पराई धरा पर
मन से सींचते हैं संस्कारों को
पोषित करते हैं परम्पराओं को
फिर भी भीतर कुछ रिक्त सा है
दीखती है थोड़ी कृत्रिमता
जो विस्मृत नहीं होने देती
उस सौंधी सी गंध को, जो कहीं
भीतर ही बसी है
पतंगें यहाँ भी उड़ती हैं
उमंगें यहाँ भी खिलती हैं
जगमगाते हैं दिवाली के दीये भी
और होली के मिलन की
रीत भी निभाई जाती है
स्मरण है हमें
मातृभूमि का स्वाधीनता दिवस
हर वर्ष फहराते हैं तिरंगा
ताकि स्मरण रहे स्वदेश
जन्मभूमि से दूर
निभाते हैं हर रीत
पर ह्रदय में पीड़ा है
द्वंद्व है कुछ छूट जाने का
अपने ही भीतर कुछ टूट जाने का
तभी तो, मन भारी
और आँखों में नमी है
अर्जित उपार्जित किया बहुत
पर जाने क्या कमी है........... ?

पंकज की कविताएँ



पंकज कुमार साह

आप कुछ नहीं जानते

आप कुछ नहीं जानते
मैं सब जानता हूँ
मुझे पता है
कितना दूध उतरेगा
मजदूरी करती किसी महिला की छाती से
या खून पिलाती रहेगी यूं ही
अपने दूधमुंहे को दिन भर
मुझे पता है
कोई किसान जब बैलों के संग लौटेगा
भरी दुपहरी अपनी बथान पर
तो उसके आगे
बड़ी बड़ी फांक वाली आलू की तरकारी
और जनहा रोटी ही परोसी जाएगी
जिसकी डकार आपकी नींव हिला सकती है
आप कुछ नहीं जानते
मैं सब जानता हूँ
सवा अरब की आबादी की आँखों में आप धूल नहीं
झोक रहे
बवंडर निर्माण में लगे हैं आप
मुझे पता है
देश में मरने वालों की कमी नहीं
कभी भी
कोई भी मारा जा सकता है
आपकी आत्मा मर गई
तो कौन सी बड़ी बात
आप कुछ नहीं जानते
मैं सब जानता हूँ,,,,,,,

पृथ्वी दिवस पर

लाओ तुम्हारी हथेली पर
तुम्हारी सुलगती हुई पृथ्वी डाल दूं
ताकि तुम इसे थोडा फूंक मार
धधका सको
ताकि राख में तब्दील हो जाए यह पृथ्वी
फिर मांज सको अपने घर के बर्तन

ये लो झुलसी हुई पृथ्वी
तैयार है सज धज कर
पृथ्वी बचाओ
पृथ्वी बचाओ
कहकर महिमा मंडन प्रारंभ करो
फिर चलते चलते
थूक जाओ इसकी छाती पर

लाओ तुम्हारी बालकनी में
पृथ्वी को निचोड़ कर टांग दूं
ताकि सूखी हुई पृथ्वी को पहन
दौरा कर सको ब्रम्हाण्ड का,,,,,

नरेश कुमार की कविताएँ



नरेश कुमार खजुरिया

पहला मोर्चा

दुनिया के इस खतरनाक
दौर में
जब नदी बोतल में बंद
कर दी हो
और लोग तरस रहें हों पानी को
जब तुम्हारी भाषा पर हमला कर
उसने
ठूंस दिये हों
अपने अर्थ
जैसे कि ठंडा का मतलब कोका कोला
बता रहा है वह
यह समय खतरनाक समय है
मेरे लिए
मेरे अपनों के लिए
ऐसे में
साथी इस खतरनाक दौर से
बिना खतरनाक हुए कभी नहीं
लड़ा जा सकता
इसके लिये सबसे ज़रूरी है
सबसे पहले उसकी हर साजिश का पर्दाफाश
किया जाए
और यह पहला मोर्चा है आखरी नहीं

माँ के लिए

मेरी झोपड़ी में लट्टू नहीं
जलती थी ढिबरी
हवाओं से डरती ।।।
खाना परोसते परोसते
माँ कितनी ही बार ढिबरी को हाथों से ढक
बुझने से बचाती थी
डगमगाती रोशनी में
मुझे खड़ा होना सिखाती थी
माँ मुझे 'क' से कबूतर
'ख' से खरगोश पढ़ाती थी
झोपडी आज मकान हो गई है
रंग बिरंगे बल्ब टयूब लाइट्स हैं
ढिबरी न जाने मकान की नीव या दीवार के
किस ईंट पत्थर से दब चुकी है
जिसकी रोशनी में मैंने सीखा
क से कबूतर
और लिख रहा हूँ क से कविता
मुझे कविता लिखता देख
माँ खुश है
झुर्रियों भरे चेहरे पर कुलांचे भरती हँसी को देख
मेरा कवि हृदय मन मुग्ध है
मैं सौभाग्यशाली हूँ
अभी सलामत हैं
मुझे रोशनी देने की खातिर
हवाओं से संघर्ष करते हाथ

सुप्रिय की कविताएँ

सुशांत सुप्रिय

खो गई चीज़ें

वे कुछ आम-सी चीज़ें थीं
जो मेरी स्मृति में से
खो गई थीं

वे विस्मृति की झाड़ियों में
बचपन के गिल्ली-डंडे की
खोई गिल्ली-सी पड़ी हुई थीं

वे पुरानी एल्बम में दबे
दाग-धब्बों से भरे कुछ
श्वेत-श्याम चित्रों-सी दबी हुई थीं

वे पेड़ों की ऊँची शाखाओं में
फड़फड़ाती फट गई
पतंगों-सी अटकी हुई थीं

वे कहानी सुनते-सुनते सो गए
बच्चों की नींद में
अधूरे सपनों-सी खड़ी हुई थीं

कभी-कभी जीवन की अंधी दौड़ में
हम उनसे यहाँ-वहाँ टकरा जाते थे
तब हम अपनी स्मृति के
किसी ख़ाली कोने को
फिर से भरा हुआ पाते थे ।।।

खो गई चीज़ें
वास्तव में कभी नहीं खोती हैं
दरअसल वे उसी समय
कहीं और मौजूद होती हैं

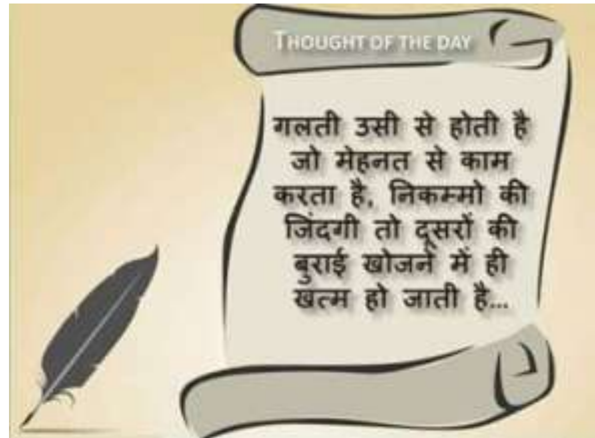
स्वप्न

वह एक स्वप्न था

मेरी नींद में
आना ही चाहता था कि
टूट गई मेरी नींद

कहाँ गया होगा वह स्वप्न --
भटक रहा होगा कहीं
या पा ली होगी उसने
किसी और की नींद में ठौर

डर इस बात का है कि
यदि किसी की भी नींद में
ठिकाना न मिला उसे तो
कहीं निराश हो कर
आत्म-हत्या न कर ले
आज की रात एक स्वप्न



वे जो वग़ैरह थे

वे जो वग़ैरह थे
वे बाढ़ में बह जाते थे
वे भुखमरी का शिकार हो जाते थे
वे शीत-लहरी की भेंट चढ़ जाते थे
वे दंगों में मार दिए जाते थे
वे जो वग़ैरह थे
वे ही खेतों में फ़सल उगाते थे
वे ही शहरों में भवन बनाते थे
वे ही सारे उपकरण बनाते थे
वे ही क्रांति का बिगुल बजाते थे
दूसरी ओर
पद और नाम वाले
सरकार और कारोबार चलाते थे
उन्हें भ्रम था कि वे ही संसार चलाते थे
किंतु वे जो वग़ैरह थे
उन्हीं में से
क्रांतिकारी उभर कर आते थे
वे जो वग़ैरह थे
वे ही जन-कवियों की
कविताओं में अमर हो जाते थे ।।।

जब तक

जब तक स्थिति पर
क़ाबू पाने
पुलिस आती है
जल चुके होते हैं
दर्जनों घर आगज़नी में

जब तक
फ़्लैग-मार्च के लिए
सेना आती है
मारे जा चुके होते हैं
दर्जनों लोग दंगों में

जब तक शांति-वार्ता की
पहल की जाती है
आ चुकी होती है
एक बड़ी दरार मनों में

जब तक
सूरज दोबारा उगता है
अँधेरा लील चुका होता है
इंसानियत को ।।।

यहीं रहूँगा मैं

जा कर भी
यहीं रहूँगा मैं
किसी-न-किसी रूप में
किसी प्रिय की स्मृति में
बसा रहूँगा जीवन भर
अपना बन कर
किसी पुस्तक के पन्नों में
पड़ा रहूँगा बरसों तक
हाशिए की टिप्पणी बन कर
किसी पेड़ के तने में
अमिट रहूँगा
दिल का निशान बन कर

किसी कपड़े की तहों में
बचा रहूँगा सुरक्षित
एक परिचित गंध बन कर

या हो सकता है
बन जाऊँ मैं --
किसी थके मज़दूर
की आँखों में
गहरी नींद

किसी मासूम बच्ची
के होठों पर
एक निश्छल मुस्कान ।।।

कहा न
जा कर भी
यहीं रहूँगा मैं

डॉ० सुधेश की कविताएँ



डॉ० सुधेश

नया कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र अज भी फैला पड़ा है
दुश्शासनों दुर्योधनों का वही आतंक
शकुनि हँसते फिर रहे हैं
मन्त्र देते मोटी फ़ीस ले कर
मेरे पास तो संकल्प कोरें
स्वप्न के अवशेष चाह के कंकाल
उन से क्या बनेगा ?
रद्दी फूंक कर नहीं चूल्हा जलेगा
घर में लगा कर आग
न होती रोशनी ।
उधर बौने बजाते दुन्दुभी
राजपथ पर जा रहे हैं
सिंहासन निकट जा कर रुकेंगे
रेवड़ी जहाँ बँटती पुरस्कारों की
जीभें लपलपाती हैं
लारें टपकती हैं
दाँतों की हँसी के बीच ।
अन्धे मोड़ पर खड़ा मैं
देखता हूँ दूर से
झाड़ियों की ओट से
अन्धे बाँटते हैं रेवड़ी अन्धों को ।
अकेला खड़ा हूँ
अजानी राह पर
मगर चलना पड़ेगा
अन्धे मोड़ से अन्धे मोड़ तक ।

वसन्त

सुना वसन्त आया
मैं रहा शिशिर से लड़ता
आँसू की गर्मी के बावजूद
हड्डियों में जा बैठी ठण्डक
कमर पर टँगा रहा निष्ठुर मौसम
वसन्त में सूखे पत्तों का ढेर
आवारा घूम रहा
आँखों में धूल झोंकती रही निष्ठुर पुरवा ।
मेरी आँखों में फिर भी
वसन्त का सपना ।



<u>नया एपिडैमिक</u>

मुझे हर वस्तु चाहिये
पर वस्तु बनना पसन्द नहीं
हर वस्तु का उपभोक्ता हूँ
पर उपभोक्तावाद पसन्द नहीं
बाज़ार जाना ही पड़ता है
पर बाज़ारवाद पसन्द नहीं ।
मैं गाँव मोहल्ले शहर
देश के बाहर
विश्व में मिलना चाहता हूँ
पर वैश्वीकरण पसन्द नहीं ।
मैं जाति धर्म नस्ल से ऊपर उठ कर
उदाऱता की प़तिमूर्ति हूँ
पर उदारीकरण पसन्द नहीं
लेकिन मेरी पसन्द नापसन्द
का क्या मूल्य
जब तक वह सब की न हो ।
पर आज वैश्वीकरण उदारीकरण बाज़ारीकरण
फल फूल रहे हैं
नए एपिडैमिक की तरह
बुद्धिजीवी चिल्ला के चुप हैं
क़ान्तिकारी क़ान्ति से पहले ग़ायब
किसी को कोई शिकायत नहीं
पर मुझे है
क्योंकि मैं हूँ आम आदमी ।

क्या करें

क्या करें अब
सारा अमृत हथिया लिया
आधुनिक देवताओं ने
उन के चाकरों के चाकरों
या उन के चमचों ने
बचा विष कुम्भ पीने को अभिशप्त
आज की निरीह जनता
जो पी कर बनी शिव
उस की प्यास बुझाने को स्वच्छ जल नहीं
जिसे कहते हैं आजकल अमृत
तो विष न पिये तो क्या करे ।
जनता के नाम की रोटी सेंकने वाले
बिरियानी खा वोदका में मस्त हो
देश को देते हैं गाली
कहते यह अभिव्यक्ति की आज़ादी है
जो है मौलिक अधिकारों में ।
तो हम क्या करें
किस की गाली सुनें
किस का सिद्धान्त
जो फटा उधड़ा लिहाफ़ है
उसे ओढ़ें कि बिछाएँ
न पेट भरता है उस से
न प्यास बुझती है
पर बौद्धिक दाढियां उगलती हैं
वही पुरानी कहावतें थोड़ी अगंरेजी मिला ।
भई चश्मूदीन थोड़ा देसी में बोल
तो कुछ पल्ले पड़ै
और सुनो यह ससुरा इन्कलाब
कब आवेंगा
कब से चिल्ला रहे हो
तो ठीक पर बताओ कि
कहाँ पहुँचा है कितना नजीक है
बंगाल में तो आ कर चला गया
ममता ने भगा दिया
भगत जी कहते हैं कि
केरल में जाने वाला है
कैसा होवै ये इन्कलाब
सूरत तो दिखा दो
क्या उस की भी छोटी या बची दाढी होवै
कि मुँह सफ़ाचट ।



मीता दास की कविताएँ

मीता दास

{ १ } ००० स्मृतियाँ ०००

मुझे मेरी स्मृतियाँ
एक हारे हुए उस
रेस के घोड़े की तरह मिली
जिसे रेस का हिस्सा बनाने की हिचक तो थी ही पर
गोली भी नहीं मार सकते थे
वह मेरे संग पलता रहा
साथ उठता - बैठता
कहकहे लगाता , रोता - रुलाता
ठीक अपने खुरों में ठुंकी
लोहे के नाल की तरह
मजबूत
जीवन का हिस्सा
जिसे मैं वर्तमान और भविष्य के
खूंटे में नजर बट्टू सा टांग
निश्चिंत हो रहती हूँ |

{ २ } ००० चूल्हा ०००

कोयला या लकड़ी के बिना
बेकार है चूल्हा
और गैस ?
गैस के हम लायक नही ।
पर क्या देगची के बिना
संपन्न है चूल्हा ?
देगची में सिर्फ पानी का खदबदाना काफी है !
कोयला मिल भी जाये
रेलवे ट्रैक के करीब
अधजली , गली लकड़ी चुन भी लाएं
मुक्ति धाम से या विसर्जित प्रतिमाओं से खींच
और देगची भर पानी ले भी आएं ---
बसाते , जल कुम्भियों से पटे
तालाब , पोखर से
पर
चूल्हे के जलते ही
खदबदाता है पानी देग में
जल उठता है घर का पेट
खदबदाते हैं चूहे
पानी में अदृश्य हो
साँसें रुक जाती हैं
चूल्हे को जलता देख ।

{ ३ } ०००भ्रान्ति०००

धुंधलाया सा प्रकाश नाचने लगता है
मजदूरों की बस्ती के
पलस्तर झड़े दीवारों और छतों पर
धूसर आँखों में उतरती हैं आहिस्ते - धीरे
रतौंधी
सिर्फ चिमनी का धुँआ और कोयला खान के
गैस चेम्बरों की तीव्रता से
दम बंद होते फेफड़ों से आती
आवाजें और पूरे घर में गूंजता है
कफ का घड़ - घड़ शब्द ।

घर के जलती ढिबरी का गोलाकार
जगह - जगह चटके पलस्तर वाले छत पर
स्थिर
धुंधलायी रतौंधी वाली आँखें
होती हैं भ्रमित
उसे लगता आज है पूर्णिमा ।

क्या कोई उसे बता आएगा
आज अमावस है ।



{ ४ } ००० घर ०००

अब घरों में घर नहीं रहते ,
रहते हैं काठ के पलंग , आरामदेह सोफा , कुशन दार
नर्म फ़र वाले सॉफ्ट टॉय पलंगपोश, कसीदेदार
झालरदार पर्दों के पीछे लटकते ऊपर या किनारे खींचने
वाली
डोरियाँ घिर्रीदार ....पर खींचते कभी नहीं , न ऊपर
न किनारे
जाने क्या हो जायेगा उजागर ऐसा करने से
घर है तो !
पर अब घरों में घर नहीं रहते ....

कुर्सी अंटा रहता है बेतरतीब कुछ साफ़ ,- मैले उतरनो
से
घर के पुराने आसबाब टकरा जाते हैं
बेतरतीब तरीकों से ठेंगा दिखाते
दीवारें भी सजी मिलती हैं कभी - कभी
पुराने से चेहरों से
चेहरे टंगे मिलते हैं दीमक खाये फ्रेमों में ....

नए चेहरे अब घरों में नहीं
कॉरपोरेटों के जाल में या सोशल साइटों में अंटे मिलते
हैं
सूट - बूट , टाई में कभी - कभी झांक लेते हैं
ऐतिहासिक मीनारों या किलों की ओर
पर वे घरों में झांक ही नहीं पाते
समय चूक जाता है हमेशा ही
उनकी सूची से ।

००००

चन्द्रशेखर कुमार की कविताएँ

चंद्रशेखर कुमार

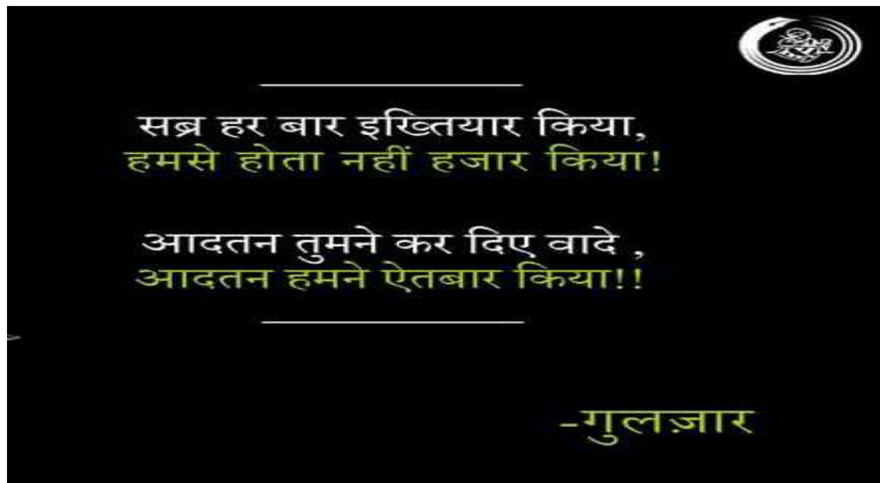
(1) कविता / कोयलांचल
....

पूँजीपतियों ने खरीद लिये
हमारे हिस्से की
पानी , हवा , मिट्टी और धूप
पत्तो -पत्तों की लगाई गई
बोलियाँ
जल , जंगल और ज़मीन
से बेदखल किए गए
उलगुलान के सिपाही
आदिवासी अस्मिता
जूझ रही है अपनी ही
सहजीविता के लिए
तभी तो सुनाई नहीं देती
कहीं
कोयल की कूक
अनसुने कर दिये जाते है
जीवन के पदचाप
न ही खिलते है
कहीं
पलाश के फूल
दर्द ही दर्द बसा है
इस शहर में
जिसे कहते है कोयलाँचल
फिक्र नहीं किसी को
कि
कोयले की आँच पर
जलकर राख होने को
है शहर
उठते हुए धुओं
के मध्य
मलबों पर
बिखरा पड़ा है कोयलांचल
जिसकी सिसकियाँ
टकराकर वापस लौटती है
उन पत्थरों से
जिसके सौदाबाज
उत्पादन के आँकडे बताकर
बखारते है विकास की शेखी
तथा भूल जाते है
उन मलीन बस्तियों का दर्द
जिसकी आँखों की
छीन ली गई हरियाली ......
और उजाड़ दिया गया
जीवन का बसंत!

(2) कविता / आदि मानव से आदि राक्षस

सदानीरा सी बहती नदियों
के तट पर ही
मेसोपेटामियाँ और सिंधु घाटी
जैसी सभ्यताओं ने लिया जन्म
नदियों के कछार में ही
प्रकृति ने छुपाए
सारे अनमोल रत्न
जीवन का उद्‌गम स्थल
बनी नदियों ने ही
बसाया धरती पर
लहलहाता हुआ जीवन
वो नदियाँ ही थी
जिसकी पूँछ पकड़कर
हमने तय किया यात्रा
आदि मानव से सभ्य मानव
बनने का
नदियों ने ही हरे

हमारे दु:ख , पाप , संताप
नदियों के मुहाने पर ही
बसे है प्राचीन धार्मिक नगर
नदियों ने ही सींची हमारी
मृदु खुशियाँ
तो फिर क्यों सूखती जा रही है नदियाँ ?
क्यों उसने बहना बंद कर दिया है ?
आखिर क्यों गुम हो गई
सरस्वती ?
ऐसा इसलिए
क्योंकि हम प्रगतिशिलों को
सभ्य बनाने वाली
नदियों ने
सोचा भी नहीं था
कि
सभ्य होकर हम
आदि मानव से
आदि राक्षस हो जाएगें !



रितु दूबे तिवारी की कविताएँ



रितु दूबे तिवारी

अंश हूँ समग्र नहीं

कोई ख्वाहिश न रहे तुम्हे
जब जिंदगी से,
ख्वाब न हों जब कोई बाकी,
जब उम्मीदें टूट जाएं सारी
और तन-मन हार जाएँ
सारी दुनियां के आगे ।
तब तुम मुझे पुकार लेना ....
मैं पास ही होंगी तुम्हारे !
आहिस्ता, पीछे से आकर मैं छू लूँगी
तुम्हारी ठंडी उंगलियां ....
और ले चलूँगी झील के पार ....
जहाँ सांस लेते पहाड़ और सरकती सी हवा है!
वहाँ तुम पा लोगे जरूर वो सुकून,
जिसे तलाशते रहे थे हम,उम्र भर ....
भावनाओं से कांपते तुम्हारे साँवले होंठों को
चूम लेगी झील की ठंडक ....
और तुम भर लेना बाँहों में वादियों की ख़ूबसूरती
और खो जाना मुझ में
..........मगर हाँ!
बस पल भर ठहरना है तुम्हें
और जीना है एक उम्र ....
मेरे साथ उस एक पल में।
फिर लौट जाना तुम,
दुनियाँ के नए अर्थ खोजने ....
क्योंकि जानती हूँ तुम जिद्दी हो।
तुम्हे तब तक सुकून न मिलेगा, जब तक
तुम अपने सपनो को जी न लो जी भर के।
क्योंकि ये सच मैं जानती हूँ
कि मैं तुम्हारा अंश हूँ समग्र नहीं ....

नया पैबंद

तुम्हारा कहा हर शब्द
मेरे अंतस को रख देता है चीर कर।
मैं सुनती हूँ ,सहती हूँ ....
और फिर सुई-धागे के पुराने डिब्बे से
निकाल लेती हूँ, एक पेन्सिल और कागज़
जिसमे पिरो देती हूँ कुछ शब्द।।।
और शब्दों में बाँध देती हूँ भाव
इन भावों के एक-एक टांकों से,
हौले-हौले सिल देती हूँ
अपना ताज़ा तरीन ज़ख़्म!
टांकों दर टांकों,शब्दों की सिलाई से
बन जाता है एक और पैबंद
मेरे मन पर!
ढेरों पैबंदों के बीच एक नया पैबंद।
जैसे ही दाँतों से कुतर कर तोड़ती हूँ शब्दों का धागा,
मेरा पैबंद बदल जाता है एक कविता में।
उंगलियों से टटोलती हूँ, देखती हूँ उसकी सीवन
और टाँके
फिर मुतमईन होकर,
बाँध देती हूँ धागे में एक और गाँठ ....
तुम्हारे दिए किसी नए ज़ख्म को सिलने के लिये।

अफसर की कुर्सी पर बिटिया

बड़ा सादा सा समीकरण बना लिया उसने,
जो देखा एक अति सुंदर आधुनिका को बैठे
अफसर की रोबीली कुर्सी पर।
आई होगी जुगाड़ लगा के,
किया होगा 'खुश' बड़े साहब को
अपने लटके-झटकों और अदाओं से।
तब उसने भी 'लिफ्ट'की उम्मीद से,
अपने रंगे बाल संवार कर,
उभरी तोंद को सांस से अंदर खींचने के
असफल प्रयास के साथ
बिखेर दी अपनी गुटके से रंगी मुस्कान!
मगर उम्मीद के मुताबिक़ मुस्कुरा कर न देखा
जब नई अफसर ने,
ऊपर से पूछ लिया पेंडिंग कामों का हिसाब!
तो ख़ून खोलना लाज़मी था ....
केबिन से बाहर आते ही
उसने झटपट गढ़ ली एक कहानी,
जिसमे पूरे किये उसने अपने अतृप्त अरमान,
दोस्तों को सुनाई देसी पोर्न कथा की तरह
नई अफसर के अतीत का झूठा ज्ञान ।
लोलुप दोस्त भी उसकी ताज़ा पकाई कहानियों
को
खूब लार टपका के सुन रहे थे,
बीच बीच में खुद भी जल-भुन रहे थे।
नई आयी अफसर के उभारों से ले कर
ब्लाउज के गले तक का रसास्वादन
उसने बड़े शौक से दोस्तों को सुनाया।
देखा कैसे लिया बदला ये मन में सोच
मुस्कुराया,
शाम को जब वापिस घर आया तो
पड़ोस की महिलाओं से घिरी,
पत्नी के अनान्दित चेहरे को देख सकपकाया।
सबके जाते ही लपक के आई वो और बोली
देखो जी,
जब से बिटिया का बारहवीं का अच्छा रिजल्ट
है आया
सब कहते हैं भाग्य शाली हो जो इतनी सुंदर,
और होशियार बिटिया को है पाया।
जरूर एक दिन रौबीली अफसर बनेगी,
देखना अपनी राजकुमारी पापा के ऑफिस में ही
बॉस बन कर तनेगी।
तब आप गर्व से सिर उठा के
अपने दोस्तों को
इतनी कम उम्र में इतनी बड़ी अफसर बनने
की,
उसकी सफलता की कहानी सुनायेंगे।
अचानक उसे अपनी अफ़सर की जगह
बिटिया ही बैठी दिख गई ।
शरीर के साथ उसकी रूह तक कंप गई।
झट से उठा और पास खड़ी बिटिया को
सीने से लगा लिया ....
आंसुओं से भीगी आवाज में बुदबुदा उठा
मुझे माफ़ करना मैडम जी, ...
मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया ।



.जहीर कुरेशी की गजलें

.जहीर कुरेशी

(एक)

पराई आग में जो हाथ अपना डाल देते हैं,
वो बिन माँगे ही अपने फैसले, तत्काल देते हैं!
हमारी झोंपड़ी भी रोशनी के साथ रहती है,
हम अक्सर शाम से ही दीप अपने बाल देते हैं।
कहीं ऐसा न हो, उस जाल में कल तुम भी फँस जाओ,
तुम्हें खुद मित्र मछली फाँसने को जाल देते हैं!
न सर्दी और बारिश और लू उनको सता पाई,
जो हर मौसम की भट्टी में बदन को ढाल देते हैं।
तुम्हें कुछ और द्गयादा जानकारी हो तो बतलाओ,
हमें तो सिर्फ 'विक्रम' की खबर 'बेताल' देते हैं!
'रिदिम' पर ही थिरकना, नाचना, गाना हुआ संभव,
मयूरी मोर नाचे, मेघ जब सुर ताल देते हैं।
उन्हीं की मेहनतों से फूलताफलता है काला धन,
अमीरों को कमाई करके खुद कंगाल देते हैं!

(दो)

घर की सीमा से निकलने का समय आ ही गया,
धूप में .... सड़कों पे चलने का समय आ ही गया।
ठोकरव् खा कर गिरव् तो ये सबक लेकर उठे,
ठोकरव् खा कर सम्हलने का समय आ ही गया।
रात .... अपने कक्ष के एकान्त में .... द्वंद्वों के साथ,
बर्फ की भट्टी में जलने का समय आ ही गया।
सर्वहारा से भी पूछी जा रही है उनकी राय,
शोषकों के सुर बदलने का समय आ ही गया!
अपने किरदारों से खुद को बेदखल करने के बाद,
उनके किरदारों में ढलने का समय आ ही गया।
'थर्ड डिग्री' ने असंभव कर दिए झूठे बयान,
जुर्म के सच को उगलने का समय आ ही गया!
उस विदाबेला में आँखें खुद ही नम होने लगीं,
हिम की शैली में पिघलने का समय आ ही गया।

(तीन)

मिली जुली हुई आबादियों में रहते हैं,
मुहल्ले वाली घनी बस्तियों में रहते हैं।
गरीबी आप को अपराध लग रही हो अगर,
तो यूँ समझिए, हम अपराधियों में रहते हैं।
दिखाते रहते हैं धागों में उँगलियों का हुनर,
जो पेट भरने को, कठपुतलियों में रहते हैं।
बिना छिपाए, हजारों से प्यार है उनको,
हम इसलिए भी खुली तितलियों में रहते हैं।
वो जल गई है, मगर, उसका बल नहीं जाता,
द्गवलन के बाद भी, बल रस्सियों में रहते हैं!
बहू को सौंपी नहीं चाबियाँ अभी माँ ने,
ममा के प्राण इन्हीं चाबियों में रहते हैं।
हों पत्रिका में या अखबार में या चैनल पर,
कुछेक लोग बहुत सुर्खियों में रहते हैं!

(चार)

तरह तरह के चरित्रों में ढल के देख लिया,
कई प्रकार से खुद को बदल के देख लिया!
ये जिन्दगी भी महास्वप्न ही लगी मुझको,
कई प्रकार से आँखों को मल के देख लिया।
वो द्गवारभाटे से आगे निकल नहीं पाया,
महासमुद्र के जल ने मचल के देख लिया।
बहू या बेटे का व्यवहार आज भी है वही,
अशक्त बाप ने उस दिन उबल के देख लिया!
बो उस रहस्य से पर्दा उठा नहीं सकता,
उस ऐशगाह में जिसने फिसल के देख लिया।
परोक्ष रूप से, वो खुद को छल रहा है कहीं,
वो जिसने सारव् .जमाने को छल के देख लिया।
अकेलेपन के सिवा और कुछ नहीं मिलता,
पवित्र दीप ने मंदिर में जल के देख लिया!

परितोष कुमार की कविता

अजन्मी बच्ची

परितोष कुमार 'पीयूष'

उस अजन्मी बच्ची के
हत्या की सारी साजिशें
गढ़ी जा चुकी थी
पराध्वनिक चित्रण की
पुर्जी में
लिंग पता लगते ही।

उस बेचारी, बेजुवान,
अपूर्ण और निराकार
बच्ची की गलती
बस इतनी थी
कि वह लड़की जन्मती।

घर के सारे सदस्य
इतने खुश थे, मानो
कोई महोत्सव हो रहा हो
आज उनके घर।

बूढ़ी, कुबड़ी अम्मा भी
नई साड़ी पहन
पहुँच चुकी थी अस्पताल
कत्ल के इस महोत्सव में
शरीक होने।

जहाँ बिकते थे रोज
चिकित्सक, नर्स
और प्रशासन
चंद नोटों पर।

अंदर छुरी, चाकू,
रुई और पट्टियाँ
सब के सब तैयार थे
हत्या को अंजाम देने के लिए।

सिर्फ खामोश थीं
अजन्मी बच्ची की
बेवश, बेसहारा, लाचार
और अवाक्, उसकी माँ
जो हो चुकी थी- विक्षिप्त
इस महोत्सव के
चकाचौंध में.......!



बलराम अग्रवाल की लघुकथा

बलराम अग्रवाल

॥1॥ कीड़ा

कम्पनी-प्रोजेक्ट के सिलसिले में बेटी अमेरिका गई हुई है। दो ही महीने हुए हैं अभी। बहुत मेहनती और होनहार है। भगवान सभी को दे ऐसी बेटी—ऐसा सिर्फ वे नहीं, उनके नाते-रिश्तेदार सभी कहते हैं। जब से गई है, वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिए रात नौ बजे के बाद रोजाना बातचीत होती है उससे। अभी, कुछ देर पहले भी हुई थी।

"मॉम, " अभिवादन आदि दो-चार शुरुआती बातों के बाद बेटी ने दबी जुबान में सूचित किया था, "कंपनी में काम कर रहे अपने... टीम लीडर से..."

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं बेटा," आशय समझकर पापा तपाक से बोले थे, "आज के जमाने में... तुम्हारे स्टेटस के बच्चों के लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं है।"

"तेरे साथ ही गया था अमेरिका?" माँ ने उत्सुकतावश पूछा।

"नहीं मॉम, वह कई साल से यहाँ है। बी॰टेक॰ और एम॰बी॰ए॰ यहीं से किया है उसने।"

"अपने यूपी का ही है?" पापा ने पूछा।

"नहीं डैड, वह इण्डिया का नहीं है।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।" पापा पुन: उसके फैसले की पैरवी करते-से बोले, "आज के समय में विदेशी परिवार से रिश्ता बनाना कोई बुरी बात नहीं मानी जाती...।"

"कहाँ का है?" माँ ने सवाल किया था।

"पाकिस्तान का।"

"क्या!!!" दोनों के मुँह से यह सवाल कुछ इस तरह निकला था कि उनके मुँह खुले के खुले रह गए। कई दर्जन काँटेदार पैरों वाला कोई बारीक कीड़ा दिमाग की समूची नसों में रेंग गया था तेजी से।

"तुम्हारा दिमाग तो ठीक है रीतू?" पापा हड़बड़ाई-सी आवाज में बोले थे। बोले क्या चीख-से पड़े थे। कहा, "कहीं मुँह दिखाने लायक हमें छोड़ोगी कि नहीं?"

"जान-बूझकर तो नहीं किया डैड, हो गया।" रीतू सहमे स्वर में बोली थी, "क्या करूँ?"

"डूब मरो, और क्या?" पापा चीखे थे। माँ की तो जैसे जुबान ही ऐंठ गई हो। ऊँची उड़ती गुड्डी को एकदम हत्थे से काट डालेगी यह लड़की, सोचा नहीं था।

"मॉम, उसने कहा है कि मेरी मर्जी के खिलाफ वह मुझ पर पाकिस्तान चलने का दबाव कभी नहीं बनाएगा।" उन दोनों के चेहरे पर घिर आए घने काले बादलों और दहला देने वाले शोर में बदल चुकी आवाज की पिच से डरकर रीतू धीमे स्वर में ही बोली थी, "जल्दी ही उसे यहाँ की नागरिकता भी मिल जाएगी।"

"जन्नत की भी नागरिकता क्यों न मिल जाए उसे... रहेगा तो वह पाकिस्तानी ही..." पापा चीखे, "ब्लडी रास्कल!"

"बायस होकर मत सोचिए डैड...प्लीज़।" गालियाँ निकालने पर उन्हें टोकते हुए रीतू ने कहा था, "कल इसी समय मैं रामचन्दानी से आपकी बात कराऊँगी। पूरा यकीन है कि..."

"रामचन्दानी से?...यह कौन है?" पापा ने चीखते स्वर में ही पूछा।

"वही है... सकल रामचन्दानी नाम है उसका..."

बस इतना ही बोल पाई थी रीतू कि नेटवर्क टूट गया। लेकिन इतना सुनने भर से उनके दिमाग में रेंग रहे कीड़े के पैरों से काँटे गायब हो चुके थे।

॥2॥ जाना वसन्त का

नीता की सहेलियों में एक है–परमीता। शादी के तुरन्त बाद पति के साथ अमेरिका चली गई थी। कई साल बाद करीब एक महीने के लिए भारत आई है। दो दिन पहले हमारे यहाँ भी आई थी। ड्राइंग रूम में पड़े सोफा की ओर उसे ले चले तो नीता से बोली, "यह तो मेहमानों को बैठाने की जगह है। नहीं भाई, मैं तो लेट-बैठ कर गप्पें मारूँगी।" और बेतकल्लुफ होकर सीधे कमरे में जा घुसी। हम दोनों इस तरह उसके पीछे-पीछे गए जैसे वह हमारे नहीं, हम उसके घर में आए हों। चुलबुली किशोरी की तरह ही कुदककर वह पलंग पर चढ़ बैठी। कुर्सियाँ खिसकाकर हम उसके सामने जम गए। हमारे पूछने पर अमेरिका की दो-चार बातें उसने बताईं; फिर नीता से कहा, "मार गोली। तू बता, कैसी गुजर रही है जीजाजी के साथ?"

"यह बात तो तू इनसे पूछ...।" नीता ने मुस्कराकर मेरी ओर देखते हुए कहा और उठकर चली गई। रसोई में जाकर उसने नाश्ते का सामान भरे बाउल्स उठाए और लाकर परमीता के सामने सजा दिए।

बातचीत नाश्ता करते हुए होने लगी। उसी दौरान नीता 'अभी आई...' कहकर फिर चली गई। इस बार वह कॉफी की केटली और प्लेट-प्याले रखी ट्रे उठा लाई थी। बातचीत अब कॉफी की चुसकियाँ लेते हुए होने लगी।

ऐसे मौकों पर नीता की चुस्ती देखते ही बनती है। बातों के दौरान वह बार-बार जाती और आकर बैठती रही। पहली बार उठी तो उसने खाली हो चुके प्लेट-प्यालों को वहाँ से हटाया। दूसरी बार नाश्ते के बाउल्स को। तीसरी बार वह फ्रिज से फल निकाल लाने के लिए गई। फलों को उसने रसोईघर में खड़ी होकर छीलने-काटने की बजाय बातचीत में शामिल रहते हुए कमरे में ही लाकर छीला-काटा। इसके बाद भी वह कितनी बार इधर-उधर गई, गिनाना मुश्किल है। यह सब करते हुए उसने न तो परमीता को उसकी जगह से हिलने दिया, न बातचीत का सिलसिला बीच में टूटने दिया और न ही खाने-पीने का। किसी के आने की

सूचना पहले से हो, तो खाने-पीने का सभी जरूरी सामान वह घर में ला रखती है। ऐन मौके पर मुझे बाजार के लिए दौड़ा देने का कॉलम खाली नहीं छोड़ती। इस बार भी नहीं छोड़ा।

शाम का खाना खाने तक परमीता हमारे यहाँ रुकी। उसके रुकने तक, सामान्यत: छाया रहने वाला वासंतिक उल्लास घर के हर कोने में छाया रहा। सम्बन्धों का सौंधापन और खुशियों के रंग रुके रहे। उसके जाते ही माहौल में अप्रत्याशित चुभन पैदा गई, रूखापन छा गया। नीता ने न सिर्फ पहले-जैसा चिहुँकना-गुनगुनाना; बल्कि मेरी ओर देखना-मुस्कराना तक बन्द कर दिया। उपेक्षा की आग से मैं झुलसने-सा लगा। परेशानहाल, उसकी बाँह पकड़कर मैंने पूछ ही लिया, "परमीता जब से गई है, मुँह फुलाए घूम रही हो!...बात क्या है?"

एक-दो बार पूछने तक तो वह चुप रही, लेकिन जब पीछे ही पड़ गया तो एकदम से फट पड़ी, "तुम्हारे यार-दोस्त...नाते-रिश्तेदार मिलने आते हैं तो दौड़-दौड़ कर उनकी अगुवानी करती हूँ ...करती हूँ कि नहीं?"

"हाँ।" मेरे गले से निकला।

"उनसे बातचीत का, हँसी-ठिठोली का, एन्जॉय करने का पूरा मौका तुम्हें देती हूँ ...देती हूँ कि नहीं?"

"हाँ भई, मैंने कब इंकार किया इन बातों से!" डाँट खाते बच्चे की तरह घिघियाए स्वर में मैंने उससे कहा।

"तब... वैसा ही मौका मुझे भी मिलना चाहिए...मिलना चाहिए कि नहीं?"

यों कहकर एक झटके में अपनी बाँह को उसने मेरी पकड़ से छुड़ाया और मुझे वहीं खड़ा छोड़कर दूसरे कमरे में जा घुसी।

॥3॥ गुलाब

जैसे ही गाड़ी को पार्क के किनारे रोका, एक कैशोरुन्मुख लड़की ने खिड़की के बंद शीशे को ठकठकाया। उसके एक हाथ में गुलाब के नन्हें-नन्हें अनेक गुलदस्ते थे। एक-एक खिली-अधखिली कली को उसकी लम्बी टहनी से काँटे तराशकर हरी पत्तियों समेत पारदर्शी पन्नी में शंक्वाकार गुलदस्ते का रूप दिया गया था। नीरजा ने दरवाजा खोला और बाहर आ खड़ी हुई।

"गुलदस्ता लो न मेमसाब, " दूसरी ओर ड्राइविंग सीट से उतरकर बाहर आ खड़े सृंजय की ओर इशारा करते हुए उसने तुरन्त ही उससे विनती की, "साब को देने...।"

"साब को देने के लिए, " नीरजा ने मुस्कुराते हुए पूछा, 'क्यों?'

"प्या...ऽ...र...।"

"अच्छा, हमें तो पता ही नहीं था आज तक कि प्यार फूल देकर भी जताया जाता है!" वह मजाक करती-सी बोली, "तुमने दिया है किसी को?"

जवाब में लड़की कुछ नहीं बोली।

"तुम्हें दिया है किसी ने?"

वह इस पर भी चुप रही। नजरें नीची करके शरमाते हुए नकारात्मक सिर हिला दिया, बस।

"नाम क्या है तुम्हारा।" नीरजा ने पूछा।

"सायना।"

"बहुत सुन्दर। एक गुलाब कितने का है सायना?"

"पचास का जोड़ा।"

"जोड़ा नहीं, एक कितने का है?"

"एक फूल तो अकेला छोरा या अकेली छोरी ही खरीदे है।" उसने दलील दी, "आप तो दोनों साथ हो, दो लो...।"

"क्यों?"

"एक फूल आप साब को दोगी, एक साब आप को देगा।" उसने समझाया।

"ठीक है; पर... पहले तुम एक ही फूल मुझे दो।" नीरजा ने उससे कहा।

लेकिन इस बात पर ध्यान दिए बिना उसने तुरन्त एक जोड़ा गुलाब नीरजा के हाथ में पकड़ा दिया। नीरजा ने भी इंकार नहीं किया। पर्स की जेब से निकालकर पचास रुपए का नोट उसके हाथ में थमा दिया। फिर हाथ में पकड़े गुलाबों में से एक को उसकी ओर बढ़ाकर वह बोली, "आज तक तुम्हें किसी ने गुलाब नहीं दिया न। यह लो, आज मैं तुम्हें देती हूँ...लव यू सायना!"

यह सुनकर लड़की ने एक नजर अपनी ओर बढ़े ताज़ातरीन गुलाब पर डालते हुए नीरजा के चेहरे को देखा। फिर पैर के अँगूठे से जमीन को खुरचते हुए धीमे-से बोली, "छोरी थोड़े ही ना छोरी को ऐसा बोले है...।"

"तो?"

"छोरा बोले है.........इनसे दिलवाके बुलवाइए!" भवों से सृंजय की ओर इशारा करके उसने शरमाते हुए कहा और मुट्ठी में पकड़े गुलाबों के गुच्छे से अपने मासूम चेहरे को ढाँपकर दूसरी ओर मुँह करके खड़ी हो गई। *****



लघु कथायें

सपना मांगलिक

प्रेम

मलखान साम्यवाद पार्टी के जिला अध्यक्ष का पुत्र था । आती जाती युवतियों को छेड़ना भद्दे इशारे करना और उनका पीछा करना उसके प्रमुख शगल थे ।इस बार उसकी नजर नाबालिंग सुमन पर थी वह उसके सुन्दर चेहरे और भोलेपन का दीवाना हो चुका था ।और जहाँ भी वह जाती, मलखान साये की तरह उसके पीछे - पीछे अपने प्रेम का इज़हार करते पहुँच जाता ।सुमन और उसके घरवालों ने पहले तो उसे समझाने का प्रयास किया मगर मलखान कहाँ मानने वाला था वह तो उसे पाने की जिद लिए जो बैठा था ।एक दिन जब स्कूल जाते समय मलखान सुमन के पीछे पीछे चलने लगा तो सुमन ने पलटकर उसे थप्पड़ जड दिया ।मलखान उसे धमकी देते हुए वहां से चला गया ।दूसरे दिन मलखान ने बीच सड़क पर उसे रोकते हुए कहा "सुमन मैंने तुझे सच्चा प्रेम किया था ।अब सुन ले तू मेरी होगी नहीं ,किसी और के लायक मैं तुझे छोड़ूगा नहीं "कहते हुए उसने हाथ में छिपाई एसिड की बोतल उसके चेहरे पर फैंक दी ।सुमन का चेहरा बुरी तरह से झुलस गया था ।महीनों बाद अस्पताल से सुमन लौटी तो अपने सुन्दर सुकोमल चेहरे के बजाय एक डरावना चेहरा लेकर। और आते ही सबसे पहले मलखान के पास गयी ,और बोली "मलखान आज मैं तुम्हारे प्रेम को समझ चुकी हूँ,आओ हम एक हो जाएँ " मलखान घबराते हुए "पागल हो क्या अपना चेहरा तो देखो ,जब मैं कह रहा था तो ...." सुमन "मलखान तुम मेरे नहीं हुए तो किसी और के भी नहीं होंगे आज मैं अपने सच्चे प्रेम की छाप तुम पर जरूर छोड़ कर जाउंगी "और सुमन ने भी ठीक मलखान की तरह एसिड की बोतल में बंद "प्रेम "मलखान पर उडेंल दिया ।

मनोरंजन

आशा को लेखन का बेहद शौक था ।या यूँ कहें कि लेखन द्वारा वह अपने दिल के हर दर्द को कागज़ पर उतार अपनी व्यस्त भागदौड़ और घुटन भरी जिन्दगी में कुछ पल सुकून के जी लेती थी । मगर उसके पति मनोज और सासू माँ को उसका लेखन कलम घिसाई और टाइम की बर्बादी लगता ।वह दोनों जब तब उसके लेखन पर व्यंग्य बाण छोड़ते और लेखन

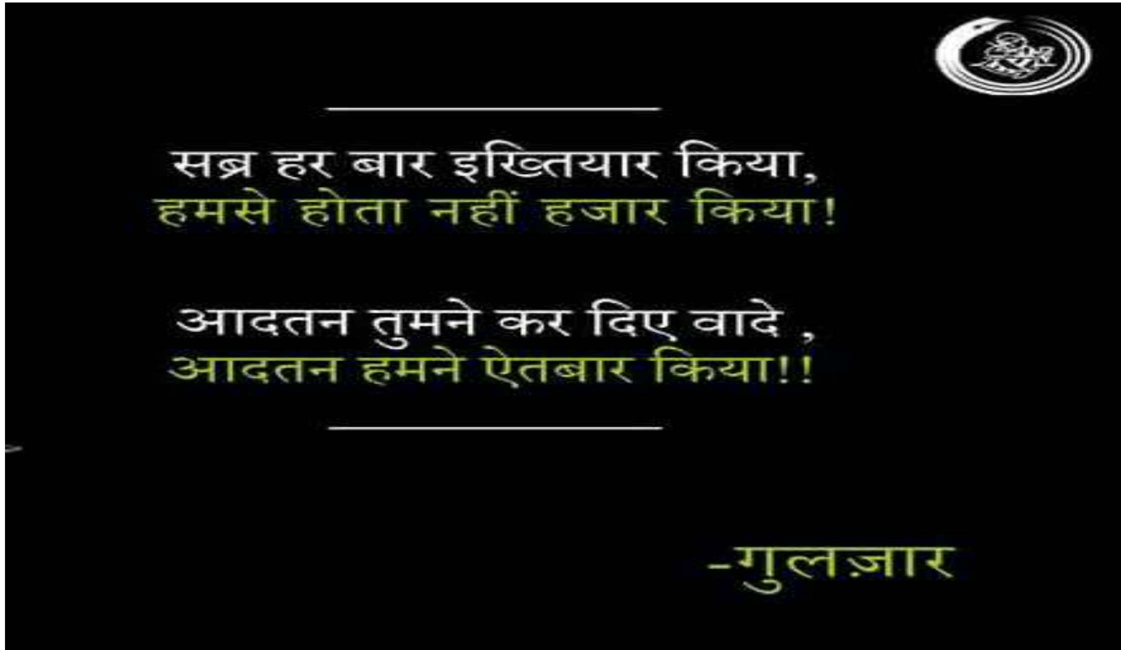
को ठलुओं का काम कहकर सबके सामने उसका मजाक उड़ाते ।उस वक्त आशा की आँखों से बेबसी और अपमान के आंसू निकल पढ़ते थे ।एक दिन एक साहित्यिक कार्यक्रम में आशा को विशिष्ट अतिथि के रूप में बुलाया गया तो वह मना न कर सकी और कुछ देर के लिए कार्यक्रम में चली गयी ।मगर जब घर लौटी तो सासू माँ ने दरवाजे से ही अपशब्दों की बौछार करना शुरू कर दिया ।इस अपमान से दुखी हो आशा अपने कमरे में आंसू पोंछती जब पहुंची तो उसका पति फोन पर उसके पिताजी को धमकी दे रहा था कि आशा ने यह लेखनबाजी नहीं छोड़ी तो वह उसे छोड़ देगा ।घर के बाहर पराये पुरुषों के साथ बैठकें करने वाली आवारा औरतों की उसे कोई जरूरत नहीं है । आशा तड़प कर बोली "मनोज मैं घर के सारे कार्य निपटा कर अगर कुछ देर अपना मनोरंजन कर आई तो इसमें क्या गलत है ?" मनोज लगभग चीखते हुए बोला "तुम्हारा मनोरंजन और मनोरंजन करने वालों को मैं खूब समझता हूँ उन्हह" । रोज रोज के अपमान से तंग आकर आशा ने घर से बाहर निकलना ही बंद कर दिया ।मनोज को गुनगुनाते हुए अटेची पैक करते देख आशा ने उसे सवालिया नजरों से देखा तो मनोज बोला "अरे मैं तुम्हे बताना भूल गया हमारे क्लब के सभी पुरुष थाईलेंड ट्रिप पर जा रहे हैं "आशा ने पूछा "औरतें नहीं जा रहीं ?" मनोज "पागल हो वहां औरतों का क्या काम" आशा ने हैरानी से पूछा "फिर मर्दों का वहां कौनसा जरूरी काम है "मनोज आँख मारते हुए "मनोरंजन नहीं करें अपना ,बस तुम बीवियों से ही चिपके रहे "।

हिंदी के पक्षधर

एक बार एक साहित्यिक गोष्ठी में हिंदी के एक साहित्यकार को हिंदी की दुर्दशा और अंग्रेजी के प्रभुत्व पर बहुत ही प्रभावशाली और भावनात्मक भाषण देते सुना ,उन्होंने गोष्ठी में उपस्थित सभी लोगों से अंग्रेजी को दूर भगाओ और मातृभाषा की जय जयकार के नारे भी लगवाये ,मैं उस हिंदी साधक से बड़ी प्रभावित हुई और अगले ही दिन अपनी संस्था के वार्षिकोत्सव पर उन्हें मुख्य अतिथि का आमंत्रण देने उनके घर पहुँच गयी।घर आधुनिक तरीके से सजा संवर था अतिथि कक्ष में उनका तीन वर्षीय पुत्र खेल रहा था जिसे गोद में लेकर मैंने कविता सुनाने को कहा ,बालक अपने दोनों छोटे छोटे हाथों से मछ्ली की आकृति बना हिंदी की कविता “मछली जल की रानी है “सुनाने लगा । इतने में हिंदी भक्त उसपर भड़कते हुए बोले “यह क्या सुना रहे हो बी विली विंकी वाली राइम सुनाओ आंटी को “उसके बाद अपनी धर्मपत्नी पर बरसते हुए “कितनी बार कहा है बच्चे से इंग्लिश में बात करो वर्ना मिशनरी स्कूल वाले रोज शिकायतें भेजेंगे “।

रंगे-हाथ

मिसेज भल्ला धोबिन को सर्फ़ देते हुए"आजकल बड़ी जल्दी जल्दी सर्फ़ ख़त्म हो रहा है एं ? कहीं चुरा -वुरा तो नहीं ले जाती वर्ना इतनी जल्दी सर्फ़ ख़त्म होने का सवाल ही नहीं उठता "?" धोबिन कैसी बात करती हो बीवीजी ? हम गरीब हैं मगर चोर नहीं । "मिसेज भल्ला-"किसी दिन रंगे हाथ पकड़ लूंगी ना तब सारी साहूकारी निकल आएगी । बड़ी आई डायलोग मारने वाली हम गरीब हैं मगर चोर नहीं (मुंह बनाकर धोबिन की नक़ल उतारते हुए)" इतने में पतिदेव ने ड्राइंग रूम से आवाज लगते हुए कहा "अजी सुनती हो मेरी कल वाली कमीज धुलने दे दो "मिसेज भल्ला कमरे से कमीज लेने गयी तभी मुख्य द्वार की घंटी बजी कोई मिलने वाला था । जिसकी सूचना मिसेज भल्ला को देने धोबिन कमरे की ओर गयी ।अन्दर का द्रश्य देख धोबिन की आंखें खुली की खुली रह गयीं मिसेज भल्ला कमीज की जेब से पांच-पांच सौ के कुछ नोट हड़बड़ी में अपने ब्लाउज में छिपाने की कोशिश में लगी थीं ।



रामदेव धुरंधर की लघु कथाएँ

रामदेव धुरंधर

1 - कंगाली के केन्द्र में

देश की ज़मीन ऊपजाऊ थी। किसान देश जोतने में कुशल थे। मज़दूर कड़ी मेहनत करते थे। देश में तैयार सामान दूसरे देशों में निर्यात किये जाते थे जिस से देश को अच्छी आय होती थी। पर इस के बावजूद देश पतन के गर्त में समाता चला जाता था।

लोगों ने पता लगाना आवश्यक माना कि समृद्ध देश की दशा क्यों इस तरह दयनीय होती चली जा रही है। पता चला राजा और रानी इस के घोर दोषी हैं। राजा ने देश की आय से करोड़ों का सोना खरीद कर अपने महल में छिपा रखा था। रानी साज - सिंगार का इतना शौक रखती थी कि देश की सालाना आय में से करोड़ों रूपए हड़प कर अपने खर्च में उड़ा देती थी। उस के गहनों से न जाने कितनी बिल्डिंगें भरी पड़ी थीं। विडंबना इस से भी आगे कि इन्होंने देश का करोड़ों पैसा विदेशों बैंको में जमा कर रखा था।

आत्म केन्द्रित राजा और विलासिनी रानी से लोग घृणा करने लगे। रानी को बंदी बना लिया गया। राजा को कहीं दूर की समुद्री घाटी में काला पानी भुगतने के लिए भेज दिया गया।

गुणों से युक्त जिस आदमी को राजा बना कर सिंहासन पर बिठाया गया उस ने तो अपनी ईमानदारी का सच्चा परिचय दिया। देश खुशहाल भी हुआ, लेकिन दुर्भाग्य कि यह खुशियाली ज्यादा दिनों टिक नहीं पायी। सत्ताच्युत राजा और रानी ने बेईमानी की जो बुनियाद छोड़ रखी थी उस के परिणाम में किसान, मज़दूर, अफ़सर सब के सब स्वार्थ की धारा में फिसलते गए। देश नए सिरे से कंगाल हो गया।

सच कहते हैं मानवता, सभ्यता, संस्कृति और आचरण से कोई देश दूषित हो जाए और उस के दूषण के केन्द्र में विशेष कर राजा और रानी हों तो उस देश को संभलने में युग लग जाएँ। या ऐसा भी कि वह देश हमेशा के लिए खत्म हो जाए।

2 - खाली पेट

जाति - परिवर्तन का दौर चल रहा था। ज्यों ही किसी के जाति - परिवर्तन की रस्म पूरी हो जाती थी उस के हाथ में एक जून की रोटी रख दी जाती थी। यह गरीबों का इलाका था। जाति - परिवर्तन से रोटी जुड़ी हुई थी तो गरीबी से टूटे हुए लोग खींचे चले आते थे। जा कर गरीबों से कहना नहीं पड़ता था कि अपनी जाति का परिवर्तन करो और इस के बदले रोटी ले जाओ।

सात साल का एक लड़का लाइन में जा खड़ा हुआ था। उस का जाति - परिवतन हुआ और रोटी उस के हाथ आई। उस ने घर आते ही रोटी अपनी दो बहनों में बाँट दी। उस ने अपने लिए एक टुकड़ा भी न रखा। उस की माँ ने बहनों के प्रति भाई का यह प्रेम देखा तो रो पड़ी। बेटा भूखा रह गया यह दर्द माँ के सीने में ठहर गया। पर माँ को कहाँ पता था बेटे को पता लग गया था रोटी का स्रोत कहाँ है। अब बेटे को अपनी और अपनी माँ की रोटी के लिए उपाय में पड़ना था। वह जाति - परिवर्तन

करने वालों की कतार में दोबारा जा खड़ा हुआ। उसे रोटी मिल तो गई, लेकिन वह पकड़ा गया। अर्थ बनाया गया पेट की रोटी के लिए वह जाति - परिवर्तन जैसे गंभीर और शाश्वत मामले को चुनौती दे रहा था। उस की उम्र छोटी भी तो थी। उसे बहुत बड़ा चोर समझा गया। आने वाले दिनों के लिए उसे खतरा मान कर लोप कर दिया गया।

माँ द्वार पर बैठे अपने बेटे का इन्तज़ार करती रह गई।

-0-

3 - कला - प्रेम

वह अखबार खरीदने बाज़ार गया कि देखा एक शिल्पी दो अनुपम मूर्तियाँ लिये ग्राहकों की अपेक्षा में आवाज़ लगा रहा था। उसे मूर्तियाँ अच्छी लगीं। वह खरीदने के लिए बहुत ही उत्सुक हुआ। पर उसे अपने काम की वजह से लौटने की बहुत जल्दी थी। उसे मन मार कर लौट जाना पड़ा। उसे और भी कुछेक चीजों की खरीदारी के लिए बाज़ार में रुकना था, लेकिन यह काम भी छूटा।

जो खरीदारी छूट गई इस के लिए उसे शाम को बाज़ार आना पड़ा। इस बार उसे समय ही समय था। वह इत्मीनान से खरीदारी में लगा कि देखा शिल्पी की मूर्तियाँ अब भी बिकी नहीं थीं। तब तो उसे लगा मूर्तियाँ मानो उसी का इन्तज़ार कर रही थीं। वह शिल्पी के पास गया और मूर्तियों का दाम पूछा। शिल्पी के बताने पर उसे दाम बहुत अच्छा लगा। वह खरीदारी के लिए तत्पर हो गया। उस ने दाम चुकाने के साथ शिल्पी के हाथों में कुछ अधिक पैसा रख देना चाहा। उस का मतलब था बेचारा शिल्पी सुबह से थका - मांदा इस बाज़ार में पड़ रहा। उसे अपनी थकान मिटाने के लिए कुछ तो दिया जाए। पर शिल्पी ने उस से उतना ही पैसा लिया जितना उस ने मूर्तियों का दाम बताया था। पैसा लेने और मूर्तियाँ देने के बीच शिल्पी ने कहा -- एक कला - प्रेमी मुझे मिला इस के लिए मैं आप के सामने अपना सिर झुकाता हूँ। मुझे अब बिल्कुल दुख नहीं कि एक कला - प्रेमी के लिए मुझे सुबह से शाम तक इन्तज़ार करना पड़ा।

शिल्पी जाते - जाते बोला कि हर शहर में उस की मूर्तियों का खरीदार देर से आता है और वह एक ही होता है। शिल्पी इसे ईश्वरीय चमत्कार मानता था।

4 - कुछ पल के साथी

समुद्री यात्री प्रकृति की छटा निहारने की प्रक्रिया में भूल गया कि उस की नाव किस कदर समुद्र में दूर निकल गई है। उस की समझ में आना असंभव हो गया कि किस ओर अपने देश का किनारा पड़ता है। उस के चारों ओर लहरें पर्वत के आकार में ऊपर उठ रही थीं। उस ने सूरज को डूबते देखा। रात घिर आई और अब उसे इतना विश्वास शेष न रह पाता कि अगली सुबह देखने के लिए वह जिंदा रह पाने वाला हो।

भयावह रात और समुद्री गर्जन के बीच वह निढाल पड़ा हुआ था कि उसे अपनी नाव किसी ठोस चीज़ से टकराती महसूस हुई। उस ने सोचा कोई काली चट्टान होगी जिस से टकरा जाने पर अब तो अपनी नाव चूर हो जाएगी। मगर बात उस के ख्याल के एकदम विपरीत थी। एक नाव उस की नाव से टकरायी थी। उस नाव में उसी की तरह एक समुद्री यात्री था। वह भी भटक गया था। दोनों कल्पना कर ही नहीं सकते थे कि उन्हें समुद्र के ऐसे भयानक गर्जन के बीच अपना जैसा ही एक

आदमी मिल जाने वाला है। दोनों की आँखें अंधेरे में चमक उठीं। वे एक नाव में बैठ गए। वे बातें तो कर रहे थे, लेकिन भिन्न देशों के होने से उन की भाषा एक नहीं थी। परिणाम स्वरूप दोनों एक दूसरे को समझने में मात खाते चले गए।

रात के बाद सुबह का सूरज ज्यों ही क्षितिज में प्रकट हुआ नाव डूबने लगी। दोनों ने हाथ मिलाया और गहरे पानी में विलीन हो गए।

आभासी दुनिया से .....



शोध एवं समीक्षा



"डॉ० रामविलास शर्मा की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ का जातीय चिन्तन"

बिजय कुमार रबिदास

डॉ०। रामविलास शर्मा हिन्दी आलोचना में मार्क्सवादी आलोचक के रूप में जाने जाते हैं | उनके चिंतन में 'जातीय चेतना' एक महत्वपूर्ण विषय रहा है | यही कारण है कि उन्होंने भारत के बड़े - बड़े साहित्यकारों के साहित्य का मूल्यांकन उनकी 'जातीयता' के सन्दर्भ में किया | उनकी दृष्टि में 'गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर' बांग्ला जाति के जातीय कवि हैं | उन्होंने अपनी रचनओं के द्वारा बंगला साहित्य को समृद्ध किया | वे "भारत के प्रतिनिधि कवि हैं | वह विश्वकवि भी हैं | विश्व मानवतावाद उनके साहित्य की महत्वपूर्ण धारा है | इस सबके साथ वह बंगाल के जातीय कवि भी हैं ....बंगाल की धरती, बंगाल का इतिहास, बंगाल का साहित्य, बंगाल की सांस्कृतिक विरासत, ये सब रवीन्द्रनाथ के अक्षय प्रेरणास्त्रोत हैं |"1 रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जातीय चेतना को विकसित करने के लिए अपने जातीय साहित्य को आधार बनाया | यह जातीय साहित्य उन्होंने परम्परा के माध्यम से अर्जित किया था | उनकी दृष्टि विशेष रूप से बांग्ला भाषा और साहित्य पर थी | जिसे उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर ऐश्वर्यशालिनी बनाया | बंगला साहित्य की श्रीवृद्धि करने में उन्हें अपार कीर्ति भी प्राप्त हुई | वह सारी कीर्ति अपने मार्गदर्शक गुरु विद्यासागर के चरणों में अर्पित कर देते हैं | विद्यासागर के प्रति उनके ह्रदय में अपार श्रद्धा एवं प्रेम है | वे चाहते थे कि बंगाली मानुष भी विद्यासागर के चरित्र का अनुसरण करके अपने जातीय चरित्र को बदलें | "बाँग्ला भाषा से वह (रवीन्द्रनाथ) विद्यासागर का ऐसा तादात्म्य स्थापित करते हैं कि समस्त उपलब्धियाँ विद्यासागर की उपलब्धियाँ बन जाती हैं | ऐसा उत्कट अनुराग सांस्कृतिक विरासत के प्रति रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ह्रदय में हैं |"2 गुरुदेव ने अपनी अधिकांश रचनाओं में अपने गुरु ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रति श्रद्धा व्यक्त की हैं |

गुरुदेव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से बंगाली मानुष में जातीय चेतना का भाव जगाया | सांस्कृतिक स्तर पर उन्होंने बंगाली मानुष को एक सूत्र में जोड़ने का काम किया | उनकी प्रतिबद्धता बंगाल और वहां के लोगों के प्रति हैं | बंगाल के प्रति उनका यह अनुराग अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है :-

बाँग्लार माटी, बाँग्लार जल,
बाँग्लार वायु , बाँग्लार फल
पुण्य हऊक ,पुण्य हऊक , पुण्य हऊक , हे भगवान
बाँग्लार घर , बाँग्लार हाट

बाँग्लार वन , बाँग्लार माठ
पूर्ण हऊक ,पुर्ण हऊक , हे भगवान |
बांगालीर पन, बांगालीर आशा ,
बांगालीर काज , बांगालीर भाषा
सत्य हऊक , सत्य हऊक ,
सत्य हऊक , हे भगवान |
बांगालीर प्राण , बांगालीर मन
बांगालीर घरे जतो भाई बोन
एक हऊक ,एक हऊक , एक हऊक , हे भगवान
(भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश : 2,पृष्ठ संख्या - 445)

रवीन्द्रनाथ “बंगाल की धरती, जल,वायु,प्राकृतिक सम्पदा,सबकी समृद्धि की कामना करते हैं | बंगाल के घर, हाट-बाजार, वन-मैदान,इन सबके पूर्ण होने की कामना करते हैं, बंगालियों कि आशाएँ, आकांक्षाएँ चरितार्थ हों, उनकी भाषा और उनका कर्म सफल हो, बंगालियों के मनप्राण एक हों, घर में जितने भाई-बहन हैं, वेसब एक हों |इस तरह जातीय एकता के लिए रवीन्द्रनाथ भगवान से प्रार्थना करते हैं |”3 वे चाहते हैं कि बंगाली मानुष अपनी जातीय विरासत पर गर्व करें, उसे आत्मसात करें एवं उसे आगे बढ़ाये | डॉ०। शर्मा की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ ने अपने जातीय प्रदेश से जनता के स्नेह सम्बन्ध को जोड़ा हैं | वे जातीय प्रदेश को वस्तुगत सत्य के रूप में देखते हैं | बंगाल की धरती और वहां की जनता से अपना तादात्म्य स्थापित करते हुए रवीन्द्रनाथ लिखते हैं -“ इस बाँग्ला देश की मिट्टी, यहां का जल, यहां की वायु, यहाँ का आकाश, यहां के वन, यहां के खेत, हमें सब तरफ से घेकर विद्यमान हैं | इसने हमारे पितामहगण को अनेक युगों तक पाला - पोसा है | हमारी जो अनागत संतान है, उन्हें भी यह अपनी गोद में धारण करेगी | यह कल्याणी हमारे लिए पितृगण की अमर वाणी वहन करती हुई चलती रही है |”4

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन का मूल उद्देश्य बांग्ला भाषा और साहित्य को आगे बढ़ाना था | उन्होंने अपनी रचनाओं में बराबर बांग्ला भाषा की रक्षा की हैं | उनके काव्य में जो मानवतावादी स्वर सुनाई पड़ता है, वह उनकी जातीय भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुआ है | डॉ०। शर्मा लिखते हैं -“जातीय भाषा के बिना किसी प्रकार के मानवतावाद की अभिव्यक्ति संभव नहीं है | जातीय भाषा छोड़कर, अंग्रेजी जैसी किसी भाषा को विश्वभाषा मानकर,जो लोग उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्याम बनाते हैं, वे अपनी समाज की मानवता से कट जाते हैं | उनके मानवतावाद का सम्बन्ध उनकी अपनी धरती से नहीं होता,वह काल्पनिक और निर्जीव हो जाता है | श्रेष्ठ मानवतावादी रवीन्द्रनाथ ठाकुर जाति और भाषा का महत्व खूब अच्छी तरह पहचानते थे |”5 इसलिए उन्होंने अंग्रेजी के जगह पर मातृभाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम माना | “विदेशी साहित्य, विशेष रूप से अंग्रेजी साहित्य, से

उन्होंने जो कुछ ग्रहण किया, वह हाशिये पर है | उसका संबंध अधिकतर काव्य रूपों से है | इन रूपों की अंतर्वस्तु बंगाली या भारतीय है |"6

गुरुदेव बांग्ला भाषा का चौमुखी विकास करना चाहते थे | उन्होंने अंग्रेजी के बदले हमेशा बांग्ला भाषा को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया |बांगला भाषा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं -"आज बाँगला भाषा लाखों मनुष्यों की आपसी बातचीत का माध्यम है, उसका प्रकाश हजारों गली-कूचों में फैला हुआ है | उसके प्रकाश की पथ-रेखा अनुसरण करते हुए चले तों कहीं दूर दुर्गम जगत् में जा पहुँचेंगे |"7 अपने व्यवहारिक जीवन में गुरुदेव बड़े - बड़े अनुष्ठानों मे भाग लेते थे, वहां भी वे बांग्ला में ही बोलते नजर आते थे | "1908 में उन्होंने बंगाल की प्रांतीय सभा के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्षता की | यहां अध्यक्ष के भाषण अंग्रेजी में हुआ करते थे | रवींद्रनाथ का भाषण बाँग्ला में था |"8 इस तरह रवीन्द्रनाथ ने अंग्रेजी की जकड़बंदी तोड़ी और बांगला भाषा के महत्त्व को समझाया | अंग्रेजी सरकार की शिक्षा नीति में भी उन्होंने अंग्रेजी के बदले मातृभाषा पर जोर दिया | गुरुदेव ने जहाँ तक संभव हुआ अंग्रेजी के बदले मातृभाषा अपनाने के लिए जोर दिया | इतना ही नहीं अपने साहित्य में गुरुदेव ने बांगला भाषा के साथ अन्य भारतीय भाषाओँ का भी समर्थन किया हैं | डॉ०। शर्मा लिखते हैं - " बांग्ला भाषा और साहित्य के प्रति अटूट निष्ठा रखते हुए भी वह बंगाल से बाहर की भाषाओं और साहित्य के प्रति अत्यंत उदार और सहानुभूतिपूर्ण रूख अपनाते थे | उनका जीवन उन सभी लोगों के लिए आदर्श है, प्रेरणा का अक्षय स्त्रोत है जो अपने जातीय उत्थान के साथ पूरे देश की प्रगति के लिए काम करना चाहते हैं |"9

डॉ० शर्मा ने रवीन्द्रनाथ की जातीय भाषा के साथ - साथ उनके जातीय साहित्य पर भी बराबर ध्यान दिया हैं | रवीन्द्रनाथ किशोरावस्था से ही बंगला साहित्य के प्रति सचेत थे | अपने जीवन के शुरुआती दौर में उन्होंने अनेक काव्य, नाटक आदि की रचना की थी | कविता, गीत लिखकर वे लोगों को सुनाते थे | 12 वर्ष की उम्र में उन्होंने 'पृथ्वीराज पराजय' नाम का नाटक लिखा था |1881 में 'वाल्मीकि प्रतिभा' नाम का संगीत नाटक रचा | रवीन्द्रनाथ को युवावस्था से ही नाटक लिखने,मंचित करने एवं अभिनय करने में रूची थी | नाटक का मंचन कराते समय वे मंच का विशेष ध्यान रखते थे जैसे - पत्रों के संवाद, उनकी वेश -भूषा, पार्श्व - ध्वनि, संगीत आदि | उनके नाट्य मंच की सबसे बड़ी विशेषता यह होती थी कि वे मंच को साज - सज्जा से भर नहीं देते थे | " जैसे शेक्सपियर के युग में स्टेज पर विशेष सज्जा का ध्यान न रखा जाता था, वैसे ही रवीन्द्रनाथ मंच की सज्जा को अधिक - से - अधिक सादा रखना पसंद करते थे जिससे लोगो का ध्यान पात्रों और विचारों के ऊपर केन्द्रित हो सके |"10 बंगाल में बहुत से नाटक लिखे और खेले जा रहे थे लेकिन रवीन्द्रनाथ की नाट्य धारा बिलकुल भिन्न थी | उनकी बहुत सी कविताओं में बंगाल के जन - जीवन का यथार्थ रूप में चित्रण हुआ है | "कल्पना हो या यथार्थ, नाव और नदी के बिना उनकी कविता पूरी नहीं होती | भारत में शायद ही किसी कवि के मूर्ति विधान में नाव और नदी की इतनी खपत हो जीतनी रवीन्द्रनाथ की कविता में है |.......वर्तमान काल में भी बहुत -

से लोगों ने उनकी कविताएँ पढ़कर मन में आनंद और उल्लास का अनुभव किया | पराधीन देश की जनता को काव्य से ऐसा आनंद देना, यह कम उपलब्धि नहीं थी | उनके साहित्य ने लोगों के मन में साहस का संचार किया, संघर्ष की प्रेरणा दी | लोगों ने उनका साहित्य पढ़कर परमुखापेक्षी होने के बदले अपनी भाषा और साहित्य पर गर्व करना सीखा |"11

गुरुदेव की बहुत सी कविताओं में लोकगीतों का प्रभाव दिखाई देता है | उनके गीतों की यह विशेषता होती थी की वह बंगाल के लोकगीतों के तत्व के साथ मिश्रित होती थी | 'बाउल' बंगाल का बहुत ही लोकप्रिय लोकगीत है | इन लोकगीतों का प्रभाव उनके गीतों पर भी पड़ा है | 'बाउल' के प्रति रवीन्द्रनाथ का जो लगाव है उसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया हैं | 'बाउल पदावली' के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त करते हुए रवीन्द्रनाथ कहते हैं --" जिन लोगों ने मेरा लेखन पढ़ा है, वे जानते है कि बाउल पदावली के प्रति अपने अनुराग को मैंने अनेक लेखों में प्रकाशित किया है | जब मैं सियालदा में था तब बाउल दल के साथ मेरी बराबर मुलाकात और बातचीत होती थी | अपने अनेक गीतों में मैंने बाउल स्वर ग्रहण किया है और अनेक गीतों में राग -रागिनी के साथ, मेरे जानते हुए या ना जानते हुए बाउल सुरों का मिलन हुआ है |"12

डॉ० शर्मा की दृष्टि में रवीन्द्रनाथ अंग्रेजी साम्राज्यवाद की कटू आलोचना की हैं | वे अंग्रेजो की साम्राज्यवादी नीतियों से भली - भांति परिचित थे | " अंग्रेजी राज में भारतीय जनता जिस तरह गरीबी और अशिक्षा में जीवन बिता रही थी, उसे वह अच्छी तरह जानते थे |"13 यही कारण है कि उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की प्रखर आलोचना की | अंग्रेजी सरकार अपना साम्राज्य बढ़ने और उसे कायाम रखने के लिए यहां जातिवाद, रूढ़िवाद, सम्प्रदायवाद आदि को प्रश्रय दे रही थी | रवीन्द्रनाथ ने यह लक्ष्य किया कि अंग्रेज सरकार इन कुरीतियों को बढ़ावा देकर अपने साम्राज्य की नींव मजबूत करना चाहते हैं इसलिय गुरुदेव भारतीय समाज में फैले हुए इन कुरीतियों के लिए अंग्रेजी सरकार को दोषी ठहराते है एवं उनसे लड़ने के लिए पूरे भारतवासियों से विद्रोह की मांग करते हैं | रूस की तुलना भारत से करते हुए वे बहुत क्षुब्ध होते हैं | ऐसे में उन्हें भारत पर साम्राज्यवादी शासन ही दिखाई देता है | "इस साम्राज्य-विरोधी चेतना के साथ उनमे बड़ी गहराई से लोकतान्त्रिक भावना विद्यमान है | वह लोक में परिवर्तन चाहते है | शताब्दियों से वह जिस अवस्था में रहा है, उससे मुक्त देखना चाहते है | क्योंकि यहाँ उच्च वर्ग नहीं, मध्यवर्ग नहीं, बल्कि साधारण मेहनत करने वाले लोग हैं |

डॉ० शर्मा लिखते हैं -" बंगाल में साहित्य और शिक्षा संस्थाओं का आभाव नहीं था, फिर भी रवीन्द्रनाथ एक नयी काव्यधारा चलाई और शान्तिनिकेतन के रूप में उन्होंने नए विद्यालय की स्थापना की |"15 " वैसे तो विश्वभारती विश्व संस्कृति का प्रतिष्ठान थी लेकिन जोर भारतीय संस्कृति पर था |"16 विश्वभारती की स्थापना रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन का सपना था | इस सपने को साकार करने के लिए उन्हें आर्थिक रूप से काफी कष्ट भी उठाना पड़ा | विश्वभारती के माध्यम से वे भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला का

विकास करना चाहते थे | विश्वभारती में उन्होंने कई नए विषयों के अध्ययन की व्यवस्था की | "जनवरी,1938 में सी। एफ। एण्ड्रूज ने हिंदी - भवन का शिलान्यास किया |"17 "21 जनवरी को रवीन्द्रनाथ और सी। एफ। एण्ड्रूज की उपस्थिति में जवाहरलाल नेहरू ने हिंदी भवन का उद्घाटन किया |"18 ललित कला के विकास के लिए उन्होंने कला भवन की स्थापना की | 1919 के जलियावालाबाघ हत्याकांड के बाद उन्होंने अपनी सर की उपाधि लौटा दी थी | " इस समय विश्वभारती में एक नए विभाग की स्थापना हुई | उसका नाम था विद्या भवन | उद्देश्य यह था की भारत सम्बन्धी उच्चतर अध्ययन के लिए यहाँ व्यवस्था हो |"19 फ्रांस के संस्कृत विद्वान सिल्वे लेबी की सहायता से विश्वभारती में चीनी,तिब्बती अध्ययन की व्यवस्था की गयी | शान्तिनिकेतन में गुरुदेव शिक्षा कार्यों में सक्रीय रूप से भाग लेते थे | अपना ज्यादा समय वे शान्तिनिकेतन में बिताते थे | वहां वे स्वयं शिक्षक बने और विद्यार्थियों के साथ उन्ही की तरह जीवन बिताते रहें |

अंततः, रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंगला जाति के जातीय कवि हैं | उन्हें अपनी साहित्य, संस्कृति, कला,भाषा,प्रदेश और सांस्कृतिक विरासत पर बड़ा गर्व था | उनके साहित्य में बंगाल का जन - जीवन यथार्थ रूप में उभरकर सामने आया है | बंगाल के लोगों में जातीय चेतना का विकास हो, इसके लिए उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया | बंगला भाषा के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम था | इसलिए उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ बाँग्ला भाषा में की | वे बंगाल के प्राय: हर किसी न किसी सामजिक - सांस्कृतिक आन्दोलन से जुड़े हुए थे | सामजिक स्तर पर, वे ऊँच -नीच, भेद-भाव वाली पुरानी व्यवस्था को बदलकर समाज को नया रूप देना चाहते थे | जिसके लिए उन्होंने प्राचीन संस्कृति को अपनी रचना का प्रेरणा स्त्रोत बनाया |

<u>**सन्दर्भ - सूची**</u>

1. शर्मा रामविलास, भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश भाग : 2, संस्करण 2012, किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 439

2. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या - 439/3. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -445/4. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या - 444

5. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -451,452/6. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -471/7. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -452/8. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -458/9. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -472/10. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -472/11. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -470/12. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -443/13. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -448/14. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -448/15. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -471/16. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -461/17। उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -469/.8। उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या - 469/19. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या -462

बाल-साहित्य सृजन: नई चुनौतियां

दिविक रमेश

सृजन किसी भी समय का क्यों न रहा हो अपने उपजने में वह चुनौतीपूर्ण ही रहा होगा। हर उचित और अच्छी रचना सजग और जिम्मेदार रचनाकार के समक्ष चुनौती ही लेकर आती है। लेकिन जब हम सृजन के साथ 'नई चुनौतियां' जोड़ते हैं तो उसका आशय निरन्तर बदलते सामाजिक-प्राकृतिक परिवेश में नई समझ और नए भावबोध की गहरी समझ से लैस रचनाकार की परम्परा की अगली कड़ी के रूप में अपेक्षित सृजन को संभव करने वाली तैयारियों से होता है। यूं मेरी समझ में तो हर जिम्मेदार बाल साहित्यकार के सामने उसकी हर अगली रचना नई चुनौती ही लेकर आती है क्योंकि यहां न कोई ढर्रा काम आता है और न ही कोई सीख। सही मायनों में तो अन्तत: अपना बोना और अपना काटना ही प्राय: काम आता है।चाल या चलन को चुनौती देते हुए। अपने प्रगति-प्रयोगों के प्रति उपेक्षा के आघात सहते हुए भी। अन्यथा बालक को दो क्षण भी नहीं लगते किसी भी रचना से मुंह फेरते। **क्षमा कीजिए** मैं शुरु में ही **नोबेल पुरस्कार विजेता अमेरिकी लेखक विलियम फॉकनर** और गुलजार के कथनों का जिक्र करना चाहूंगा। विलयम फॉकनर के अनुसार, 'आज सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि अब लोगों की समस्याओं का आत्मा या भावना से कोई लेना-देना नहीं रह गया है।अब सबके मन में सिर्फ एक ही सवाल है -मैं कब मशहूर बनूंगा/बनूंगी।जो भी युवा लेखक और लेखिकाएं हैं वे अपनी इस चाहत के कारण खुद से द्वद्व कर रहे हैं। इसी द्वंद्व के कारण वे जमीनी हकीकत और इंसानी भावनाओं को भूल गए हैं। उन्हें एक बार फिर से जीवन के शाश्वत सत्य और भावनाओं के बारे में सीखना होगा, क्योंकि इसके बिना कोई भी रचना बेहतर नहीं हो सकती। कविया लेखक की जिम्मेदारी बनती है कि वह ऐसा लिखे जिसे पढ़ने वाले व्यक्ति के मन में साहस, सम्मान, उम्मीद और जज्बा पैदा हो, जो उसे प्रेरित कर सके अपने जीवन की मुश्किलों के आगे डटे रहने और जीतने के लिए।' भले ही यह विलियम फॉकनर द्वारा 10 दिसम्बर 1950 को स्टॉकहोम में नोबल पुरस्कार ग्रहण करते समय दिए गए भाषण का अंश है लेकिन मैं इसे आज भी प्रसंगिक मानता हूं। मैं इसे बाल साहित्य लेखन पर घटा कर भी देखना चाहूंगा भले ही बालक के रूप में व्यक्ति की बात करते हुए इसमें कुछ और बातें भी जोड़ने की आवश्यक्ता पड़ेगी। मसलन उत्कृष्ट बाल साहित्य लेखन के संदर्भ में हमेशा बाल सुलभ जिज्ञासाओं और उनकी अभिरुचि के अनुसार रचना को मज़ेदार बनाने और बाल सुलभ प्रश्नों को रचनात्मक ढंग से उभारने की भी बहुत बड़ी चुनौती और जिम्मेदारी निभाए बिना काम नहीं चलता। यदि कोई कविता प्रश्न जगाने में सफल हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि वह सार्थक है, भले ही वह प्रश्न का उत्तर न भी दे पायी हो। अमेरिकी लेखिका और बच्चों के लेखन के लिए अत्यंत प्रसिद्ध **मेडेलीन एल एंगल** (Madelien L' Engle, 1918-2007) के शब्दों में, "I believe that good questions are

more important than answers, and the best children's books ask questions, and make the readers ask questions। And every new question is going to distrurb someone's universe।" सहित्य में प्रश्न उठाना बहुत आसान नहीं होता क्योंकि प्रश्न उठाया ही जब जाता है जब उसके उत्तर की ओर जाने की दिशा का ज्ञान हो। गनीमत है कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बाल साहित्यकारों में आज अनेक ऐसे भी हैं जो ऊपर बतायी गयी लेखकीय जिम्मेदारी की चुनौती को भलीभांति निभा रहे हैं। और उन्हीं के लेखन से भारतीय बाल साहित्य लेखन की वैश्विक और उत्कृष्ट छवि निरंतर बन भी रही है। **दूसरा कथन** बाल साहित्यकार के रूप में **गुलजार** का है जिसके द्वारा लेखन की एक अन्य चुनौती की ओर इशारा किया गया है। । उनके अनुसार,"बच्चों की भाषा सीखना एक चुनौतीपूर्ण काम है। जैसे पीढ़ियां बदलती हैं, वैसे ही भाषा भी परिवर्तित होती हैं।' इस कथन से सहमत होना ही पड़ेगा और हमारे बहुत से लेखक इस चुनौती को भी बखूबी स्वीकार किए हुए लिख रहे हैं।वस्तुत: आज एस।एम।एस , टेलीविजन, नई टेक्नोलोजी, फिल्मों, इंटरनेट युक्त कम्प्यूटर आदि की भाषा, और अब तो समाचार पत्रों की भाषा अपना एक अलग स्वरूप लेकर बालकों की दुनिया में भी प्रवेश करता चला गया है। आज के बाल साहित्यकार को इस ओर ध्यान देना पड़ता है। हिन्दी के स्वरूप में जहां एक ओर महानगरीय भाषा-स्वरूप में अंगेजी का घोल मिलता है वहां लोक की भाषाओं का अच्छा सुखद छौंक भी मिलता है। स्पष्ट है कि इस स्वरूप को सहज रूप में अपनाना भी एक नई चुनौती है।यहीं यह भी कहना चाहूंगा कि यह ठीक है कि बाल साहित्य मे्र ऐसी भाषा का सहज उपयोग होना चाहिए जो आयु वर्ग के अनुसार बच्चे की शब्द -सम्पदा के अनुकूल हो । लेकिन एक समर्थ रचनाकार उसकी शब्द-सम्पदा में सहज ही वृद्धि करने की चुनौती भी स्वीकार करता है।

बाल-साहित्य सृजन की चुनौतियों पर थोड़ा विराम लगाते हुए पहले मैं अपने मन की एक और दुखद चिन्ता सांझा करना चाहूंगा जो भारतीय समाज में बालक के महत्त्व को लेकर है। क्या हमारे समाज के तमाम बालक उन न्यूनतम सुविधाओं और अधिकारों से भी सम्पन्न हैं जिनका हमें किताबी या भाषणबाजियों वाला ज्ञान अवश्य है? कहना चाहता हूं कि बालक (नर-मादा, दोनों) हमारी सांस की तरह है। जिस तरह ऊपरी तौर पर सांस हम मनुष्यों की एक बहुत ही सहज और सामान्य प्रक्रिया है लेकिन है वह अनिवार्य। उसी तरह बालक भी भले ही ऊपरी तौर पर सहज और सामान्य उपलब्धि हो लेकिन है वह भौ अनिवार्य। और जब मैं बालक की बात कर रहा हूं तो मेरे ध्यान में शहरी, कस्बाई, ग्रामीण, आदिवासी, गरीब, अमीर, लड़की, लड़का आदि सब बालक हैं। न सांस के बिना मनुष्य का जीवित रहना संभव है और न बालक के बिना मनुष्यता का जीवित रहना। यह विडम्बना ही है कि समाज में बालक के अधिकारों की बात तक कही जाती है लेकिन वह अभी तक कागजी सच अधिक लगती है, जमीनी सच कम। आज साहित्य में दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श की तरह 'बालक(जिसमें बालिका भी है) विमर्श' की भी जरूरत हो चली है। हमारा अधिकांश बाल

लेखन महानगर/नगर केन्द्रित हे और प्राय:वहीं के बच्चे को केन्द्र में रखकर अधिकतर चिन्तन-मनन किया जाता हे तथा निष्कर्ष निकाले जाते हें। लेकिन में **जोर देकर** कहना चाहूंगा कि आज ज़रूरत बड़े-छोटे शहरो और कस्बों के साथ-साथ गावों और जगलों मे रह रहे बच्चों तक भी पहुंचने की हे । और उन तक कैसे किस रूप में पहुंचा जाए, यह भी कम बड़ी चुनौती नहीं हे। मेरी बाल रचनाओं में जो गांव आ जाता हे उसका एक सहज कारण मेरा गांव से होना और अभी तक थोड़ा-बहुत गांव से जुड़ा रहना हे। यह अलग बात हे कि वैसी रचनाओं के प्रति मसलन नंदन में प्रकाशित मेरी बाल कविता 'चने का साग' आदि के प्रति खास ध्यान नहीं जा सका हे। वस्तुत: आज हमारे बाल-लेखकों की पहुंच ग्रामीण और आदिवासी बच्चों तक भी सहज-सुलभ होनी चाहिए । इसमें साहित्य अकादमी, अन्य अकदमियों और नेशनल बुक ट्रेस्ट आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती हे। शिविर लगाए जा सकते हें, कार्यशालाएं आयोजित की जा सकती हें ।भारतीय बच्चों का परिवेश केवल कम्प्यूटर, सड़कें, मॉल्ज, आधुनिक तकनीकि से सम्पन्न शहरी स्कूल, अंतर्राष्ट्रीय परिवेश ही नहीं हे (वह तो आज के साहित्यकार की निगाह में होना ही चाहिए), गांव-देहात तक फेली पाठशालाएं भी हे, कच्चे-पक्के मकान-झोंपड़ियां भी हें, उन के माता-पिता भी हें, उनकी गाय-भेंस-बकरियां भी हें ।प्रकृति का संसर्ग भी हे। वे भी आज के ही बच्चे हें । उनकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए जो कि दिख रही हे। **अत: बाल साहित्यकारों को इस या उस एक ही कोठरी में रहकर नहीं बल्कि समग्र रूप में सोचना होगा । और यह भी एक बड़ी चुनॉती है** ऐसा सोचा भी जा रहा हे। गांव देहात से जुड़ने की इच्छा रखने वाले एक शहरी बच्चे की कल्पना करते हुए मेंने कभीअपनी एक कविता में लिखा था-"चिड़िया कभी पंख में भरकर /थोड़ी हवा गांव की लाना/ पंजों में अटकाकर अपने/थोड़ी सी मिट्टी भी लाना ....पुस्तक में ही जिसे पढ़ा हे/उसकी थोड़ी झलक दिखाना........." यहां मुझे एक कवि अश्वघोष जी की बाल कविताओं की याद हो आयी हे ।दृष्टि संपन्न कवि हें । उनकी कविताएं विशेष ध्यान चाहती हें । क्षमा चाहते हुए यह भी लिखना चाहता हूं कि रूसी बाल कविताओं में कुत्ता-बिल्ली-उल्लू आदि के प्रति आधुनिक अथवा नई दृष्टि संपन्न रचनाएं पढ़ते पढ़ते खुद मेरे ग्रामीण् मन ने कभी गधे पर एक कविता लिखवा ली थी जिसमें गधा अपने प्रति पारम्परिक व्यवहार का प्रतिकार करते हुए खुद को 'वेटलिफ्टर' के रूप देखने की समझ देता हे-"बहुत नाम हें मेरा जग में/इसीलिए सब चिढ़ते बच्चो/अच्छे-भले'वेटलिफ्टर' को/जलकर कहते 'लद्दु'' बच्चो" । मॆ समझाता हूं इस प्रकार की सम्यक समझ और लेखन भी एक प्रकार से नई चुनौती का निर्वाह ही कहा जाएगा।

ऐसा नहीं हे कि बच्चे को लेकर आज चिन्ता और चिन्तन उपलब्ध न हो। बच्चे के स्वतंत्र व्यक्तित्व, उसके बहुमुखी विकास को लेकर गहरा विचार, विशेष रूप से, पिछली सदी से होता आ रहा हे। जेसे-जेसे सदियों से परतंत्र रह रहे देश आजाद होते गए और नवजागरण के प्रकाश से जगमगाते गए वेसे-वेसे बच्चे की ओर भी अपेक्षित ध्यान देने का माहोल बनाए जाने की कोशिशों का जन्म हुआ। मनुष्य ही नहीं बल्कि राष्ट्र के निर्माण के

लिए बच्चे के चतुर्दिक विकास को आवश्यक मानने की समझ उपजी। इस समझ को उपजाने में बाल साहित्यकारों की भूंमिका भी अहं रही है और इसके विकास में भी बाल-साहित्यकार पूरी तरह समर्पित नज़र आ रहे हैं। लेकिन आज का लेखक इस परम्परा को तभी आगे ले जाने में सक्षम होगा जब वह विलियम फॉकनर द्वारा ऊपर बताए गए मोह से अपने को बचाए रखेगा। वस्तुत:, संक्षेप में कहना चाहूंगा कि बड़ों के लेखन की अपेक्षा बच्चों के लिए लिखना अधिक प्रतिबद्धता, जिम्मेदारी, निश्छलता, मासूमियत जैसी खुबियों की मांग करता है। इसे लेखक, प्रकाशक अथवा किसी संस्था को बाजारवाद की तरह प्रथमिक रूप से मुनाफे का काम समझ कर नहीं करना चाहिए। बाल साप्रेम मलखान साम्यवाद पार्टी के जिला अध्यक्ष का पुत्र था । आती जाती युवतियों को छेड़ना भद्दे इशारे करना और उनका पीछा करना उसके प्रमुख शगल थे ।इस बार उसकी नजर नाबालिंग सुमन पर थी वह उसके सुन्दर चेहरे और भोलेपन का दीवाना हो चुका था । और जहाँ भी वह जाती, मलखान साये की तरह उसके पीछे-पीछे अपने प्रेम का इज़हार करते पहुँच जाता ।सुमन और उसके घरवालों ने पहले तो उसे समझाने का प्रयास किया मगर मलखान कहाँ मानने वाला था वह तो उसे पाने की जिद लिए जो बैठा था । एक दिन जब स्कूल जाते समय मलखान सुमन के पीछे पीछे चलने लगा तो सुमन ने पलटकर उसे थप्पड़ जड दिया । मलखान उसे धमकी देते हुए वहां से चला गया । दूसरे दिन मलखान ने बीच सड़क पर उसे रोकते हुए कहा "सुमन मैंने तुझे सच्चा प्रेम किया था ।अब सुन ले तू मेरी होगी नहीं, किसी और के लायक मैं तुझे छोड़ूगा नहीं "कहते हुए उसने हाथ में छिपाई एसिड की बोतल उसके चेहरे पर फैंक दी ।सुमन का चेहरा बुरी तरह से झुलस गया था ।महीनों बाद अस्पताल से सुमन लौटी तो अपने सुन्दर सुकोमल चेहरे के बजाय एक डरावना चेहरा लेकर ।और आते ही सबसे पहले मलखान के पास गयी ,और बोली "मलखान आज मैं तुम्हारे प्रेम को समझ चुकी हूँ, आओ हम एक हो जाएँ ।" मलखान घबराते हुए "पागल हो क्या अपना चेहरा तो देखो, जब मैं कह रहा था तो ...." सुमन "मलखान तुम मेरे नहीं हुए तो किसी और के भी नहीं होंगे आज मैं अपने सच्चे प्रेम की छाप तुम पर जरूर छोड़ कर जाउंगी "और सुमन ने भी ठीक मलखान की तरह एसिड की बोतल में बंद "प्रेम "मलखान पर उडेंल दिया ।

-साहित्यकार के सामने बाजारवाद के दबाव वाले आज के विपरीत माहौल में न केवल बच्चे के बचपन को बचाए रखने की चुनौती है बल्कि अपने भीतर के शिशु को भी बचाए रखने की बड़ी चुनौती है। कोई भी अपने भीतर के शिशु को तभी बचा सकता है जब वह निरंतर बच्चों के बीच रहकर नए से नए अनुभव को खुले मन से आत्मसात करे। लेकिन यह बच्चों के बीच रहना 'बड़ा' बनकर नहीं बल्कि जैसा कोरिया के बच्चों के सबसे बड़े हितैषी, उनके पितामह माने जाने वाले **सोपा बांग जुंग हवान** (1899-1931) ने बच्चे के कर्तव्यों के साथ उसके अधिकारों की बात करते हुए 'कन्फ्यूसियन' सोच से प्रभावित अपने समाज में निडरता के साथ एक आन्दोलन -"बच्चों का आदर करो" शुरु करते हुए कहा था, 'टोमगू' या साथी बनकर। अपने को अपने से छोटों पर लादने, बात-बात पर उपदेश झाड़ने, अपने को श्रेष्ठ

समझने और मनवाने तथा अपने अंहकार के आदि बड़ों के लिए यह काम इतना आसान नहीं होता। लेकिन जो आसान कर लेते हैं वे इसका आनन्द भी जानते हैं और उपयोगिता भी।यदि हम चाहते हैं कि बाल-साहित्य बेहतर बच्चा बनाने में मदद करे और साथ ही वह बच्चों के द्वारा अपनाया भी जाए तो उसके लिए हमें अर्थात बाल-साहित्यकारों को बाल-मन से भी परिचित होना पड़ेगा। उनके बीच रहना होगा। उनकी हिस्सेदारी को मान देना होगा। अमेरीकी कवि और बाल-साहित्यकार चार्ल्स घिग्न(Charles Ghigna, 1946) के अनुसार, "जब आप बच्चों के लिए लिखो तो बच्चों के लिए मत लिखो। अपने भीतर के बच्चे के द्वारा लिखो।" आज के बाल-साहित्य लेखन के सामने यह भी एक चुनौती है।हमें, हिन्दी के अत्यंत महत्त्वपूर्ण बाल साहित्यकार और चिन्तक निरंकार देव सेवक से शब्द लेकर कहूं तो 'बच्चों की जिज्ञासाओं, भावनाओं और कल्पनाओं को अपना बनाकर उनकी दृष्टि से ही दुनिया को देखकर जो साहित्य बच्चों को भी सरल भाषा में लिखा जाए, वही बच्चों का अपना साहित्य होता है।'

पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या व्यापक संदर्भ में बच्चे को एक ऐसा पात्र मान लिया जाए जिसमें बड़ों को अपनी समझ बस ठूंसनी होती है। मैं समझता हूं कि आज जरूरत बच्चे को ही शिक्षित करने की नहीं है, बड़ों को भी शिक्षित करने की है। इसलिए बाल साहित्यकार के समक्ष यह भी एक बड़ी और दोहरी चुनौती है। वस्तुत: सजग लोगों के सामने मूल चिन्ता यह भी रही है कि कैसे सदियों की रूढ़ियों में जकड़े मां-बाप और बुजुर्गों की मानसिकता से आज के बच्चे को मुक्त करके समयानुकूल बनाया जाए। साथ ही यह भी कि आज के बच्चे की जो मानसिकता बन रही है उसके सार्थक अंश को कैसे प्रेरित किया जाए और कैसे दकियानूसी सोच के दमन से उसे बचाया जाए।गोर्की ने अपने एक लेख 'ऑन थीसस' (1933) में लिखा था कि हमारे देश में शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के मस्तिष्क को उसके पिता और बुजुर्गों की अतीत की सोच से मुक्त कराना है। ध्यान रहे कि अतीत की सोच से मुक्त कराना और अतीत की जानकारी देना दो अलग-अलग बातें हैं। आवश्यकतानुसार, अपने इतिहास और परंपरा को बच्चे की जानकारी में लाना जरूरी है। आस्ट्रिया की लूसियाबिन्डर ने उचित ही कहा है कि कोई भी राष्ट्र मजबूत नहीं हो सकता, यदि उसके बच्चे अपने देश के इतिहास और रिवाजों की जानकारी नहीं रखते। अपने अनुभवों को नहीं लिख सकते और विज्ञान तथा गणित के बुनियादी सिद्धांतों की समझ नहीं रखते। अर्थात बच्चे में एक वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित करते हुए अपने इतिहास, रिवाजों आदि की आवश्यक जानकारी देनी होती है। आज बड़ों में 'हिप्पोक्रेसी' भी देखने को मिलती है।और यदि उसके प्रति सजग नहीं किया जाए तो वह सहज ही बच्चों तक भी पहुंचती है। और इस काम की चुनौती का सामना बाल साहित्यकार अपने लेखन में बखूबी कर सकता है। हमारे यहां और किसी भी समाज में कहने को तो कहा जाता है कि काम कोई भी हो, अच्छा होता है, महत्त्वपूर्ण होता है लेकिन इस सोच या मूल्य को कार्यान्वित करते समय अच्छे- अच्छों की

नानी मर जाती है। हर कोई अपने बच्चे को कुछ खास कार्यों और पदों पर देखना चाहता है और अपने बच्चे को वैसी ही सलाह भी देता है, अन्य कामों को जाने-अनजाने कमतर या महत्त्वहीन मान लेता है। और जब बच्चे को बड़ा होकर किसी भी कारण से तथाकथित कमतर या महत्त्वपूर्ण कार्य ही करना पड़ जाता है तो वह हीन भावना से ग्रसित रहता है। कुंठित हो जाता है। रूसी कवि मयाकोवस्की की एक कविता है 'क्या बनूं'। अपने समय में इस कविता के माध्यम से कवि ने हर काम की प्रतिष्ठा को समानता के आधार पर रेखांकित करते हुए बच्चों पर प्राय: लादे जाने वाले कुछ लक्ष्यों की प्रवृत्तिपरक एक नई चुनौती का बखूबी सामना किया था। एक अंश देखिए:

बेशक अच्छा बनना डाक्टर,
पर मजदूर और भी बेहतर,
श्रमिक खुशी से मैं बन जाऊं,
सीख अगर यह धन्धा पाऊं।
....
काम कारखाने का अच्छा
पर ट्राम तो उस से बेहतर,
काम अगर सिखला दे कोई
बनूं खुशी से मैं कंडक्टर।
कंडक्टर तो मौज उड़ाएं
....
बिना टिकट के वे तो दिन भर
जहां-तहां पर आएं, जाएं।
....
काम सभी अच्छे, वह चुन लो,
जो है तुम्हें पसन्द। (अनु०:डॉ०। मदन लाल 'मधु')

ऐसी रचनाओं से निश्चय ही बालकों को जहां राहत मिलती है वहीं अभिभावकों को एक नई लेकिन सही-सच्ची समझ भी।

आजकल (हालांकि थोड़े पहले से) बाल साहित्य लेखन के संदर्भ में एक चर्चा बराबर पढ़ने-सुनने में मिल जाती है जिसे चाहें तो हम परम्परा बनाम आधुनिकता की बहस कह सकते हैं जिसने एक और तरह की चुनौती को जन्म दिया है।। एक सोच के अनुसार राजा-रानी, परियां, राक्षस, चूहे, बिल्ली, हाथी, शेर, और यहां तकि की फूल-फल, पेड़-पौधे आदि आज के लेखन के लिए सर्वथा त्याज्य हैं क्योंकि इनकी कल्पना बालक के लिए विष बन जाती है। उन्हें अंधविश्वासी और दकियानूसी बनाती है। विरोध पारंपरिक, पौराणिक तथा काल्पनिक कथाओं का भी हुआ। और यह तब हुआ जब कि सामने प्रसिद्ध डेनिश लेखक हैंस क्रिश्चियन एंडरसन के ऐसा लेखन मौजूद था जिसमें प्राचीन, पारंपरिक लोककथाओं को

अपने समय के समाज की प्रासंगिकता दी गई थी जैसा कि बड़ों के साहित्य में इतिहास या मिथ आधारित कृतियों में मिलता है। मैं भी मानता हूं कि राजा-रानी, परियों भूत-प्रेतों को लेकर लिखे जाने वाले ऐसे साहित्य को बाहर निकाल फेंकना चाहिए जो अंधविश्वास, दकियानूसी, कायरता, निराशा आदि अवगुणों का जनक हो। यह सत्य है और इसे मैं गलत भी नहीं मानता कि आज भारत में बच्चों का एक सौभाग्यशाली हिस्सा उस अर्थ में मासूम नहीं रहा है जिस अर्थ में उसे समझा जाता रहा है। हालांकि यह कहना कि वह किसी भी अर्थ में मासूम नहीं रहा यह भी ज्यादती होगी। बेशक आज उसके सामने संसार भर की सूचनाओं का अच्छा खासा भण्डार है और उसका मानसिक विकास पहले के बालक से कहीं ज्यादा है। वह बड़ों के बीच उन बातों तक में हिस्सा लेने का अत्मविश्वास रखता है जो कभी प्रतिबंधित मानी जाती रही हैं।आज का बच्चा प्रश्न भी करता है और उसका विश्वसनीय समाधान भी चाहता है। आज के सजग बच्चे की मानसिकता पुरानी मानसिकता नहीं है जो प्रश्न के उत्तर में 'डांट' या 'टाल मटोल' स्वीकार कर ले। वह जानता है कि बच्चा मां के पेट से आता है चिड़िया के घोंसले से नहीं। दूसरे, हमें बच्चे को पलायनवादी नहीं बल्कि स्थितियों से दो-दो हाथ करने की क्षमता से भरपूर होने की समझ देनी होगी। अहंकारी उपदेश या अंध आज्ञापालन का जमाना अब लद चुका है। बात का ग्राह्य होना आवश्यक है। और बात को ग्राह्य बनाना यह साहित्यकार की तैयारी और क्षमता पर निर्भर करता है। तो भी विज्ञान, नई टेक्नोलोजी, वैश्विक बोध और आधुनिकता आदि के नाम पर शेष का अंधाधुंध, असंतुलित और नासमझ विरोध भी कोई उचित सोच नहीं है।लंदन में जन्में लेखक **जी।के। चेटरसन** (G.K.Chesterton -1874-1936) ने जो कहा वह आज भी सोचने को मजबूर कर सकता है -"परी कथाएं (Fairy Tales) सच से ज्यादा होती हैं: इसलिए नहीं कि वे बताती हैं ड्रेगन होते हैं बल्कि इसलिए कि वे हमें बताती हैं कि उन्हें हराया जा सकता है।"ओड़िया भाषा के सुविख्यात साहित्यकार मनोज दास का मानना है कि बाल और बड़ों का यथार्थ एक नहीं होता।उनके शब्दों में, "His realism is different rom the adult's. He does not look at the giant and the fairy from the angle of genetic possibility. They are a spontaneous exercise for his imaginativeness--a quality that alone can enable him to look at life as bigger and greater than what it is at the grass plane." डॉ०। हरिकृष्ण देवसरे की एक पुस्तक है 'ऋषि-क्रोध की कथाएं' जिसमें सुर भी हैं, असुर भी हैं और राजा भी है और पुराण भी है। ऐसे ही उन्हीं की एक और पुस्तक है-'इनकी दुश्मनी क्यों" जिसमें कुत्ता भी है, बिल्ली भी है, चूहा भी है, सांप भी है, हाथी भी है और चींटी भी है। और ये मनुष्य की भाषा भी बोलते हैं। इसी प्रकार अत्यंत प्रतिष्ठित बाल-साहित्यकार और चिन्तक जयप्रकाश भारती की ये पंक्तियां भी देखिए जो आज के बच्चे के लिए हैं: एक था राजा, एक थी रानी

दोनों करते थे मनमानी
राजा का तो पेट बड़ा था

रानी का भी पेट घड़ा था।
खूब वे खाते छक-छक-छक कर
फिर सो जाते थक-थक-थककर।
काम यही था बक-बक, बक-बक
नौकर से बस झक-झक, झक-झक

तो क्या बिना यह सोचे कि राजा-रानी आदि का किस रूप में इनका अगमन हुआ है, वह कितना सृजनात्मक है, इनका बहिष्कार कर दिया जाए क्योंकि इनमें न कोई वैज्ञानिक आविष्कार है और न ही कोई आधुनिक बालक-बालिकाएं या व्यक्ति। दूसरी ओर देवसरे जी की एक और पुस्तक है 'दूरबीन' जो दूरबीन के जन्म का इतिहास समने लाती है और वह भी कहानी के शिल्प में। लेकिन मुझे इसे रचनात्मक बाल-साहित्य की श्रेणी में लेने में स्पष्ट संकोच है। वस्तुत: यह बालोपयोगी साहित्य की श्रेणी में आती है जिसके अंतर्गत सूचनात्मक या जानाकारीपूर्ण विषय आधारित सामग्री होती है भले ही शिल्प या रूप कविता ,कहानी आदि का ही क्यों न हो। कविता की शैली में तो विज्ञापन भी होते हैं पर वे कविता नहीं होते। यह पाठ्य पुस्तक जरूर बन सकती है। यह 'लिखी गई पुस्तक है जो विवरणों और तथ्यों से लदी होने के कारण सृजनात्मक बाल साहित्य जैसी रोचकता, मजेदारी और पठनीयता से वंचित है। गनीमत है कि अंत में स्वयं लेखक ने पात्रों के माध्यम से स्वीकार किया है-"बबलू और क्षिप्रा, दूरबीन के बारे में इतनी मज़ेदार और विस्तृत जानकारी प्राप्त कर बहुत प्रसन्न थे।" लेकिन ऐसे साहित्य के लिखे जाने की भी अपनी बड़ी आवश्यकता है।बालक को ज्ञानवर्धक पुस्तकें भी चाहिए। मेरा मानना है कि बड़ों के रचनात्मक लेखन की रचना-प्रक्रिया और बच्चों के रचनात्मक लेखन की प्रक्रिया समान होती है। रचनाकार किसी भी विषय को ट्रीटमेंट के स्तर पर मौलिकता और नई मानसिकता प्रदान किया करता है। महाभारत के वाचन और उसकी कथाओं पर आधारित बाद के साहित्य में मौलिक अंतर होता है। राजा-रानी, हाथी, चिड़िया, चांद, तारे आदि पर नई दृष्टि से लिखा जा सकता है और लिखा जा भी चुका है। मांग यह होनी चाहिए कि राजा-रानी की व्यवस्था की पोषक अथवा परियों की ढ़र्रेदार कल्पना को कायम रखने वाली प्रवृत्ति का बाल-साहित्य से त्याग किया जाए। आज के बाल साहित्य में तथाकथित रंग-रंगीली परियों के स्थान पर ज्ञान और संगीत परी जैसी परियों की भी कल्पना मिलती है जो बच्चों को एक नयी सोच प्रदान करती हैं। हाल ही में एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि हेरी पोटर की एक विचित्र कल्पना को वैज्ञानिकों ने यथार्थ कर दिखाया। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि हेरी पोटर ने बिक्री के कितने ही रिकार्ड तोड़े हैं बावजूद तमाम आधुनिताओं के। सच तो यह भी है कि आज परियों, राजा रानी आदि को लेकर और विशेष रूप से उनके पारंपरिक रूप को लेकर लिखना बहुत कम हो गया है और जो है उसे मान्यता भी नहीं मिलती। आज तो नई ललक के साथ वस्तु और अभिव्यक्ति की दृष्टि से बाल साहित्य में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। वस्तुत: समस्या उन लोगों की सोच की है जो जाने-अनजाने बाल साहित्य को 'विषयवादी' विषय

केंद्रित मानते हें। अर्थात जिनका मानना हॆ कि बाल-साहित्य में रचनाकार विषयों पर लिखते हें- मसलन पेड़ पर, चिड़िया पर, राजा-रानी पर, दूरबीन,टी।वी पर, इत्यादि। यदि रचना विषय निर्धारित करके लिखी जाती हॆ तब तो उनके मत से सहमत हुआ जा सकता हॆ। लेकिन सृजनात्मक साहित्य, चाहे वह बड़ों के लिए हो या बालकों के लिए, विषय पर नहीं लिखा जाता। वस्तुत: वह विषय के अनुभव पर लिखा जाता हॆ । अर्थात रचना रचनाकार का कलात्मक अनुभव होती हॆ। बात को ऒर स्पष्ट करने के लिए कहूं कि पेड़ या साइकिल को विषय मानकर निबन्ध, लेख आदि लिखा जा सकता हॆ, कविता, कहानी आदि रचनात्मक साहित्य नहीं। पेड़ पर लिखी कविता पेड़ पर विषयगत जानकारी से एकदम अलग हो सकती हॆ, बल्कि होती हॆ। वह पेड़ का कलात्मक अनुभव होता हॆ।आज बाल-साहित्य सृजन में वॆज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता हॆ ऒर यह लेखक के लिए एक चुनॊती भी हॆ। वॆज्ञानिक दृष्टि का अर्थ यह नहीं हॆ कि बच्चे को कल्पना की दुनिया से एकदम काट दिया जाए। कल्पना का अभाव बच्चे को भविष्य के बारे में सोचने की शक्ति से रहित कर सकता हॆ। वॆज्ञानिक दृष्टि 'काल्पनिक' को भी विश्वसनीयता का आधार प्रदान करने का गुर सिखाती हॆ जो आज के बच्चे की मानसिकता के अनूकूल होने या उसकी तर्क-संतुष्टि की पहली शर्त हॆ। विज्ञान ऒर वॆज्ञानिक दृष्टि में अंतर होता हॆ। विज्ञान मनुष्य के मूल भावों, संवेदनाओं आदि का विकल्प नहीं हॆ जो बालक ऒर मनुष्यता के विकास के लिए जरूरी हें।।ओड़िया के प्रसिद्ध लेखक मनोज दास ने अपने एक लेख 'Talking to Children: The Home And The World' में लिखा हॆ-'no scientific or technological discovery can alter the basic human emotions, sensations and feelings. Social, economic and policial values amy change, but the evolutionary values ingrained in the consciousness cannot change--values that account for our growth." आज वॆज्ञानिक दृष्टि को सजग रह कर अपनाने की चुनॊती अवश्य हॆ। मुझे तो युगोस्लाव कथाकार, उपन्यासकार श्रीमती ग्रोजदाना ओलूविच की अपने साक्षात्कार में कही यह बात भी विचारणीय लगती हॆ-"मेरा ख्याल हॆ कि लोगों को सपनों ऒर फन्तासियों की उतनी ही जरूरत हॆ, जितनी कि दाल-रोटी की, यही वजह हॆ कि लोग आज भी परीकथाएं पढ़ते हें।"(सान्ध्य टाइम्स, नयी दिल्ली, 16 फरवरी, 1982)| अब मॆं अपने संदर्भ में एक निजी चुनॊती को जरूर सांझा करना चाहता हूं। हम देख रहे हें कि इधर यॊन शोषण के हिंसा के स्तर तक पर होने वाली घटनाओं की भरमार हमें कितना विचलित कर रही हॆ ऒर इसमें हमारे बालक भी सम्मिलित हें-शिकार के रूप में भी ऒर कभी-कभी शिकारी के रूप में भी। मॆं लाख कोशिश करके भी इस दिशा में अब तक बाल-साहित्य सृजन नहीं कर पाया हूं, बावजूद आमिर खान के टी।वी। पर आए कार्यक्रम के। लेकिन इस नई चुनॊती से जूझ जरूर रहा हूं।

थोड़ी बात इलॅक्ट्रोनिक माध्यम ऑर टेक्नोलोजी के हॉवे की भी कर ली जाए जिन्होंने विश्व के एक गांव बना दिया हॆ। यह बात अलग हॆ कि भारत में आज भी अनेक बच्चे इनसे वंचित हॆं। इनसे क्या वे तो प्राथमिक शिक्षा तक से वंचित हॆं। कितने ही तो अपने बचपन की कीमत पर श्रमिक तक हॆं। अपने परिवेश ऑर परिस्थितियों के कारण अनेक बुरी आदतों से ग्रसित हॆं। वे भी आज के बाल साहित्यकार के लिए चुनॊती होने चाहिए ? खॆर जिन बच्चों की दुनिया में नई टेक्नोलोजी की पहुंच हॆ उनकी सोच अवश्य बदली हॆ। अच्छे रूप में भी ऑर गलत रूप में भी। विषयांतर कर कहना चाहूं कि में टेक्नोलोजी या किसी भी माध्यम का विरोधी नहीं हूं, बल्कि वे मानव के लिए जरूरी हॆं। उनका जितना भी गलत प्रभाव हॆ उसके लिए वे दोषी नहीं हॆं बल्कि अन्ततः मनुष्य ही हॆ जो अपनी बाजारवादी मानसिकता की तुष्टि के लिए उन्हें गलत के परोसने की भी वस्तु बनाता हॆ।फिर चाहे वह यहां का हो, पश्चिम का हो या फिर कहीं का भी हो। होने को तो पुस्तक के माध्यम से भी बहुत कुछ गलत परोसा जा सकता हॆ। तो क्या माध्यम के रूप में पुस्तक को गाली दी जाए। एक जमाने में चित्रकथाओं की विवादास्पद दुनिया में अमर चित्रकथा ने सुखद हस्तक्षेप किया था। कहना यह भी चाहूंगा कि पुस्तक ऑर इलॅक्ट्रोनिक माध्यमों में बुनियादी तॊर पर कोई बॆर का रिश्ता नहीं हॆ। न ही वे एक दूसरे के विकल्प बन सकते हॆं। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे के कारण खतरे में भी नहीं हॆ। आज बहुत सा बाल साहित्य इन्टेरनेट के माधय्म से भी उपलब्ध हॆ।अतः जरूरत इस बात कि हॆ कि दोनों के बीच बहुत ही सार्थक रिश्ता बनाया जाए।किताबों की किताबें भी कम्प्यूटर पर पढ़ी जा सकती हॆं। इसके लिए कितने ही वेबसाइट हॆं। हां बाल साहित्य सृजन के क्षेत्र में बंगाली लेखक ऑर चिन्तक शेखर बसु की इस बात से में भी सहमत हूं कि आज का बालक बदलते हुए संसार की चीज़ों में रुचि लेता हॆ लेकिन इसका अर्थ यह नहीं हॆ वह अपनी कल्पना की सुन्दर दुनिया को छोड़ना चाहता हॆ। लेखक के शब्दों में," Children today take active intrest in things of the changed world, but this does not mean leaving their own world of fantasy ....They love to read new stories where technology plays a big part। But that is just a fleeting (क्षणिक) phase. They feel comfortable in their eternal all-found land." में कहना चाहूंगा कि चुनॊती यह हॆ कि बाल साहित्यकार उसे मजा देने वाले काल्पनिक लोक को कॆसे पिरोए कि वह बे सिर-पॆर का न लगते हुए विशवसनीय लगे। सजग बच्चे को मूर्ख तो नहीं बनाया जा सकता। ऑर अपनी अज्ञानता से उसे लादना भी नहीं चाहिए। सूझ-बूझ ऑर कल्पना को सार्थक बनाने की योग्यता आज के बाल साहित्यकार के लिए अनिवार्य हॆ। निश्चित रूप से यह विज्ञान का युग हॆ। लेकिन बच्चे की मानसिकता को समझते हुए उसे समाज ऑर विज्ञान से रचना के धरातल पर जोड़ने के लिए कल्पना की दुनिया को नहीं छोड़ा जा सकता। बालक को एक संवेदनशील नागरिक बनाना हॆ तो उस राह को खोजना होगा जो उसके लिए मज़ेदार ऑर ग्राह्य हो, उबाऊ नहीं।जिसे विज्ञान बाल साहित्य कहते हॆं उसे भी बालक तभी स्वीकार करेगा जब उसके पढ़ने में उसे आनन्द आएगा।

में उन कुछ चुनौतियों की ओर भी, बहुत ही संक्षेप और संकेत में ध्यान दिलाना चाहूंगा जो आज के कितने ही बाल साहित्यकार के लिए सृजनरत रहने में बाधा पहुचा सकती हैं। मैंने प्रारम्भ में बालक के प्रति समाज की उपेक्षा के प्रति ध्यान दिलाया था। सच तो यह है कि अभी बालक से जुड़ी अनेक बातों और चीज़ों जिनमें इसका साहित्य भी मौजूद है के प्रति समुचित ध्यान और महत्त्व देने की आवश्यकता बनी हुई है। न बाल साहित्यकार को और न ही उसके साहित्य को वह महत्त्व मिल पा रहा है जिसका वह अधिकारी है। उसको मिलने वाले पुरस्कारों की धनराशि तक में भेदभाव किया जाता है। उसके साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए न पर्याप्त पत्रिकाएं हैं और न ही समाचार-पत्र आदि। साहित्य के इतिहास में उसके उल्लेख के लिए पर्याप्त जगह नहीं है।बाल साहित्यकार को जो पुरस्कार-सम्मान दिए जाते हैं वे उसे प्रोत्साहित करने की मुद्रा में दिए जाते हैं। साहित्य अकादमी ने बाल साहित्य और बाल साहित्यकारों को सम्मानित करने की दिशा में बहुत ही सार्थक कदम बड़ाएं हैं लेकिन मेरी समझ के बाहर है कि क्यों नहीं ज्ञानपीठ और नोबल पुरस्कार देने वाली संस्थाएं 'बाल साहित्य' को पुरस्कृत करने से गुरेज किए हुए है।इसी प्रकार बाल साहित्य की अधिकाधिक पहुंच उसके वास्तविक पाठक तक संभव करने के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। हिन्दी के संदर्भ में बाल साहित के अंतर्गत कविता और कहानी के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी सृजन की बहुत संभावनाएं बनी हुई है। भारत के संदर्भ में आज बहुत जरूरी है कि तमाम भारतीय भाषाओं में उपलब्ध बाल साहित्य अनुवाद के माध्यम से एक-दूसरे को उपलब्ध हो। उत्कृष्ट बाल साहित्य के चयन प्रकाशित होते रहने चाहिए। भारतीय बाल साहित्यकारों को समय-समय पर एक मंच पर लाने की आवश्यकता है ताकि बाल-साहित्य सृजन को सही दिशा मिल सके। इस दिशा में साहित्य अकादमी का यह कदम जिसके कारण हम यहां एकत्रित हैं अत्यंत स्वागत के योग्य है।

जोर देकर कहना चाहूंगा कि आज साहित्य में बालक(जिसमें बालिका भी सम्मिलित है) विमर्श की बहुत जरूरत है। आज हिन्दी में उत्कृष्ट बाल साहित्य उपलब्ध है, विशेषकर कविता। लेकिन अभी बहुत कुछ ऐसा छूटा है जिसकी ओर काफी ध्यान जाना चाहिए। उचित मात्रा में किशोरों के लिए बाल-साहित्य सृजन की आवश्यकता बनी हुई है। तमाम तरह के अनुभवों को बांटते हुए हमें अपने बच्चों को ऐसे अनुभवों से भी सांझा करना होगा, अधिक से अधिक, जो मनुष्य को बांटने वाली तमाम ताकतों और हालातों के विरुद्ध उनकी संवेदना को जागृत करे। उसके बड़े होने तक इंतजार न करें। मैं तो कहता हूं कि सच्चा स्त्री विमर्श भी बालक की दुनिया से ही शुरु किया जाना चाहिए। भारत के बड़े भाग में आज भी लड़के-लड़की का दुखदायी और अनुचित भेद किया जाता है। मसलन लड़की को बचपन से ही इस योग्य नहीं समझा जाता कि वह लड़के की रक्षा कर सकती है। एक कविता है, 'जब बांधूंगा उनको राखी' जिसमें लड़के की ओर से बाराबरी की बात उभर कर आती है:

मां मुझको अच्छा लगता जब
मुझे बांधती दीदी राखी
तुम कहती जो रक्षा करता
उसे बांधते हें सब राखी।

तो मां दीदी भी तो मेरी
हर दम देखो रक्षा करती
जहां में चाहूं हाथ पकड़ कर
वहीं मुझे ले जाया करती।

में भी मां दीदी को अब तो
बांधूंगा प्यारी सी राखी
कितना प्यार करेगी दीदी
जब बांधूंगा उनको राखी!

कितने ही घरों में चूल्हा-चोका जेसे घरेलू काम लड़की के ही जिम्मे डाल दिए जाते हें। लेकिन शायद होना कुछ ऐसा नहीं चाहिए क्या जेसा इस कविता 'में पढ़ता दीदी भी पढ़ती' में हे। एक अंश इस प्रकार हे:

कभी कभी मन में आता हे
क्या में सीख नहीं सकता हूं
साग बनाना, रोटी पोना?
में पढ़ता दीदी भी पढ़ती
क्यों मां चाहती दीदी ही पर
काम करे बस घर के सारे?

सबकुछ लिखते हुए बाल साहित्यकारों की ऐसी रचनाएं देने की भी जिम्मेदारी हे जिनके द्वारा संपन्न बच्चों की निगाह उन बच्चों की ओर भी जाए जो वंचित हें, पूरी संवेदना के साथ। कविता 'यह बच्चा' का अंश पढ़िए:

कोन हे पापा यह बच्चा जो
थाली की झूठन हे खाता ।
कोन हे पापा यह बच्चा जो
कूड़े में कुछ ढूंढा करता ।
पापा ज़रा बताना मुझको
क्या यह स्कूल नहीं हे जाता ।
थोड़ा ज़रा डांटना इसको

नहीं न कुछ भी यह पढ़ पाता ।

अंत में, संक्षेप में कहना चाहूंगा कि बड़ों के लेखन की अपेक्षा बच्चों के लिए लिखना अधिक प्रतिबद्धता, जिम्मेदारी, निश्छलता, मासूमियत जैसी खुबियों की मांग करता है। इसे लेखक, प्रकाशक अथवा किसी संस्था को बाजारवाद की तरह प्राथमिक रूप से मुनाफे का काम समझ कर नहीं करना चाहिए। बाल साहित्यकार के सामने बाजारवाद के दबाव वाले आज के विपरीत माहौल में न केवल बच्चे के बचपन को बचाए रखने की चुनौती है बल्कि अपने भीतर के शिशु को भी बचाए रखने की बड़ी चुनौती है। कोई भी अपने भीतर के शिशु को तभी बचा सकता है जब वह निरंतर बच्चों के बीच रहकर नए से नए अनुभव को खुले मन से आत्मसात करे। अकेले होते बच्चे को उसके अकेलेपन से बचाना होगा। लेकिन यह बच्चों के बीच रहना 'बड़ा' बनकर नहीं, बल्कि जैसा कोरिया के बच्चों के सबसे बड़े हितैषी, उनके पितामह माने जाने वाले सोपा बांग जुंग ह्वान (1899-1931) ने बच्चे के कर्तव्यों के साथ उसके अधिकारों की बात करते हुए 'कन्फ्यूसियन' सोच से प्रभावित अपने समाज में निडरता के साथ एक आन्दोलन -"बच्चों का आदर करो" शुरु करते हुए कहा था, 'टोमगू' या साथी बनकर। अपने को अपने से छोटों पर लादने, बात-बात पर उपदेश झाड़ने, अपने को श्रेष्ठ समझने और मनवाने तथा अपने अंहकार के आदि बड़ों के लिए यह काम इतना आसान नहीं होता। लेकिन जो आसान कर लेते हैं वे इसका आनन्द भी जानते हैं और उपयोगिता भी।यदि हम चाहते हैं कि बाल-साहित्य बेहतर बच्चा बनाने में मदद करे और साथ ही वह बच्चों के द्वारा अपनाया भी जाए तो उसके लिए हमें अर्थात बाल-साहित्यकारों को बाल-मन से भी परिचित होना पड़ेगा। उनके बीच रहना होगा। उनकी हिस्सेदारी को मान देना होगा। अमेरीकी कवि और बाल-साहित्यकार चार्ल्स घिग्न(Charles Ghigna, 1946) के अनुसार, "जब आप बच्चों के लिए लिखो तो बच्चों के लिए मत लिखो। अपने भीतर के बच्चे के द्वारा लिखो।" आज के बाल-साहित्य लेखन के सामने यह भी एक चुनौती है।हमें, हिन्दी के अत्यंत महत्त्वपूर्ण बाल साहित्यकार और चिन्तक निरंकार देव सेवक से शब्द लेकर कहूं तो 'बच्चों की जिज्ञासाओं, भावनाओं और कल्पनाओं को अपना बनाकर उनकी दृष्टि से ही दुनिया को देखकर जो साहित्य बच्चों को भी सरल भाषा में लिखा जाए, वही बच्चों का अपना साहित्य होता है।' यहां मुझे महाकवि जिब्रान की कुछ कविता पंक्तियां याद हो आयी हें जिनसे में इस प्रपत्र का अंत करना चाहूंगा। पंक्तियां हैं:

तुम्हारे बच्चे तुम्हारे नहीं हैं।
जिन्दगी जीने के वे प्रयास हैं।
तुम केवल निमित्त मात्र हो,
वे तुम्हारे पास हैं, फिर भी-वे तुम्हारे नहीं हैं।
उन्हें अपना विचार मत दो,

उन्हें प्रेम चाहिए।
दीजिए उन्हें घर उनके शरीर के लिए
लेकिन, उनकी आत्मा मुक्त रहने दीजिए।
तुम्हारे स्वप्न में भी नहीं,
तुम पहुंच भी नहीं पाओगे--
ऐसे कल से
उन्हें अपने घर बनने दीजिए
बच्चे बनिए उनके बीच,
लेकिन अपने समान उन्हें बनाइए मत।



चीन हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाती "रेडियो-सीआरआई"

- **अनिल आजाद पाण्डेय**

सीआरआई का संक्षिप्त परिचय -

चीन के रेडियो से हिन्दी में प्रसारण की बात सुनकर ऐसा लगता है, जैसे कोई अनहोनी बात किसी ने सुना दी हो । हर सुनने वाले को ऐसा लगेगा। किन्तु यह बात अक्षरशः सत्य है । चीन में दिनांक 03 दिसंबर 1941 को पहली बार रेडियो पेकिंग के नाम से प्रसारण प्रारम्भ हुआ । इसके ठीक 18 वर्ष बाद यानि मार्च, 1959 में इसपर पहला हिन्दी प्रसारण प्रारम्भ हुआ । रेडियो पेकिंग का नाम आगे चलकर 'चाइना रेडियो इन्टरनेशनल' कर दिया गया । आजकल यहाँ से विश्व की 65 भाषाओं (चीन की स्थानीय भाषाएं भी शामिल हैं) में प्रसारण किया जाता है । यह विश्व के सर्वाधिक भाषाओं में प्रसारण करने वाला एक मात्र रेडियों है । जैसे-जैसे इसके प्रसारण का क्षेत्र बढ़ता गया वैसे ही इसके चाहने वालों की संख्या भी बढ़ती गई । सीआरआई के मुताबिक वर्ष 2010 में दुनिया के 161 देशों से इसे 30 लाख पत्र और ई-मेल मिले। इतना ही नहीं चायना रेडियो को चाहने वालों ने 3100 से अधिक श्रोता क्लब भी बनाए हैं। इंटरनेट और टेलीविज़न के इस दौर में जहां रेडियो प्रसारण सुनने वालों की संख्या में अपेक्षाकृत कमी देखि गई है वहीं इसने 1998 से इंटरनेट द्वारा भी अपना प्रसारण बढ़ाकर अपनी पहचान को और भी बुलंद किया है । रेडियो के साथ-साथ अपनी पत्रिकाएं और टीवी प्रोग्राम भी रेडियो की ओर से संचालित किया जाने लगा । 1992 से चायना रेडियो ने दिल्ली ब्यूरो की स्थापना की, सन 2003 से हिंदी वेबसाइट भी रेडियो का हिस्सा बनी। वर्तमान में इस सेवा के दक्षिण एशिया सेंटर के मुख्य कार्यालय में हिंदी सेवा में अन्य कार्मिकों के साथ21 भारतीय भी कार्यरत हैं, इनमें से दो कार्मिक दिल्ली में कार्यरत हैं। गौरतलब है कि पिछले कुछ वर्षों से चीन और भारत के बीच आवाजाही बढ़ी है। दोनों देशों के नेता, व्यापारी और युवा भी एक-दूसरे देशों की यात्रा करते हैं। ऐसे में सीआरआई हिंदी चीन-भारत से जुड़े कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर शिरकत करते हुए उनकी रिपोर्टिंग भी कर रहा है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में इसकी भूमिका -

चीन के बारे में जितना कहा और लिखा जाए सब कम ही है । हज़ारों वर्षों पुराने इतिहास वाला यह देश सदियों से ही विदेशियों के आकर्षण का केंद्र रहा है । मुझे चायना रेडियो के हिंदी विभाग में विशेषज्ञ के तौर पर काम करते हुए लगभग सात वर्ष हो चुके हैं। इस दौरान हिंदी से नाता रखने वाले कई लोगों से मुलाकात हुई, चीन में उत्तर चीन से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक के तमाम जगहों पर जाना हुआ । लंबे इंतजार के बाद जुलाई 2016 में तिब्बत भी जाने का अवसर मिला ।अपने चीन प्रवास एवं यहाँ की विशेषताएँ मैंने पुस्तक के रूप में "हैलो चीन" में समेटने का प्रयास किया है । इसका लोकरपन अप्रैल, 2016 में दिल्ली में हुआ । जाने क्यों मुझे हमेशा ऐसा

लगता है जैसे चीन से मेरे संबंध सिर्फ सात वर्षों का नहीं है, बल्कि जन्मों से है । बचपन से ही किताबों में मैं चीन के बारे में किताबों में पढ़ता आया हूँ । चीन की महान दीवार हमारे हमउम्र समस्त बच्चों को अजूबा सा लगता था । मेरे घर पर अक्सर मार्क्सवाद, लेनिनवाद और चेयरमेन माओ ज्त्से दोंग की चर्चा हुआ करतो थी । इन सबसे यहाँ के लोगों से मिलने और उनके बारे में जानने की मेरे उत्कंठा हमेशा प्रबल होती गई । स्कूल की शिक्षा के बाद भी मैं चीन के बारे जानकारी जुटाता रहा । यह सिलसिला कॉलेज की पढ़ाई के साथ और भी आगे बढ़ा । कॉलेज की पढ़ाई के बाद मैं पत्रकारिता की पढ़ाई में दाखिल हुआ ।

बात साल 2008 की है, जब मैं दिल्ली में एक राष्ट्रीय अखबार के नेशनल ब्यूरो में वरिष्ठ संवाददाता था। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विदेश मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय और चुनाव आयोग आदि की खबरें करना रोजाना की ज़िम्मेदारी थी। भारत सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त पत्रकार, जिन्हें पीआईबी कार्ड हासिल होता है, उनमें से भी एक था। इसी बीच सीआरआई के बारे में जाना और कुछ समय बाद मुझे चीन आने का निमंत्रण मिल गया।

चीन के बारे में किताबों में बहुत कुछ पढ़ने के बाद सितंबर 2009 में मैंने चीन की सरज़मी पर क़दम रखा। इसी के साथ चायना रेडियो से जुड़ाव हो गया और अब तक जारी है। चायना रेडियो के हिंदी विभाग में बतौर विशेषज्ञ काम करते हुए मैंने जाना कि चीनी लोग हिंदी और भारत के बारे में कितना लगाव रखते हैं।

चायना रेडियो में काम करने का अनुभव भी दिलचस्प है। सबसे पहले हिंदी विभाग में पहुंचने के बाद यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मेरे सभी चीनी सहयोगी हिंदी बोलते हैं। वैसे तो सभी की हिंदी भाषा बहुत अच्छी है। पर खासकर मैं अपने बुज़ुर्ग सहयोगी छन श्वे पिन जी का जिक्र करना चाहूंगा, उन्हें हिंदी की चलता-फिरता शब्दकोश कहा जाय तो कोई दो राय नहीं होगी। दशकों से हिंदी विभाग में काम करते हुए उनका हिंदी ज्ञान, वाकई में प्रेरणा देता है। 69 साल की उम्र में उनमें नए-नए शब्द सीखने की ललक है, शायद यही वजह रही कि मुझे भी चीनी भाषा सीखने का जोश चढ़ा। क्योंकि अक्सर मैं उनसे कोई चीनी शब्द पूछता और याद कर लेता, अगली बार मैं उन्हें वो शब्द बता देता, तो वे कहा करते कि भारतीय लोग होशियार होते हैं या कभी-कभी बोलते कि चीनी भाषा सीखना आसान है। लेकिन सभी लोग जानते हैं कि चीनी भाषा बिना नियमित स्कूली शिक्षा के कितनी मुश्किल होती है। उन्हें देखकर लगा कि हमें जीवन भर कुछ न कुछ सीखते रहना चाहिए। चीन में लोग कहते हैं,活到老， 学到老。(हुव ताव लाव, श्वे ताव लाव) यानी लिखने-पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती। अब वह रिटायर हो चुके हैं, फिर भी समय-समय पर हिंदी से जुड़ा हुआ काम करते रहते हैं।

अब सीआरआई हिंदी के बारे में उल्लेख करना चाहूंगा। हिंदी सेवा रोजाना एक घंटे का रेडियो कार्यक्रम तैयार करती है, यह कार्यक्रम दिन में पांच बार पुन: प्रसारित होता है। जिसमें चीन व दुनिया की ख़बरों और विश्लेषण के अलावा, मनोरंजन, गीत-संगीत व जानकारी आदि भी दी जाती है। साथ ही चीन और भारत से जुड़े मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। चीन दौरे पर आने वाले भारतीय नेताओं, उच्च अधिकारियों और शख्सियतों से साक्षात्कार किए जाते हैं। जबकि चीन में रहने वाले भारतीयों के जीवन और अनुभवों को भी रेडियो के माध्यम से पेश किया जाता है। रेडियो पर कार्यक्रम प्रसारित करने के

साथ ही सीआरआई वेबसाइट भी संचालित करता है। जिसमें खबरों के अलावा तिब्बत से जुड़े हुए प्रोग्राम व अन्य जानकारियां व रेडियो प्रोग्राम प्रमुख होते हैं।

हमारे रेडियो कार्यक्रमों के श्रोता भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के कई देशों में । इनमें फ़िजी, मॉरिशस, नेपाल, कुवैतआदि देश शामिल हैं। टीवी और इंटरनेट के इस दौर में भी रेडियो प्रेमी श्रोताओं की कमी नहीं है। रेडियो प्रोग्राम सुनने और उस पर टिप्पणी करने वाले कई श्रोता ऐसे हैं जो कई दशकों से जुड़े हुए हैं। उनका सीआरआई हिंदी और रेडियो से प्रेम पहले की तरह ही बरकरार है। काम की आपाधापी के बावजूद वे कुछ समय रेडियो सुनने और पत्र, ई-मेल भेजने के लिए निकाल ही लेते हैं। सीआरआई हिंदी के श्रोता प्रेमियों ने क्लब भी स्थापित किए हैं, जिनके जरिए हिंदी और रेडियो का प्रचार-प्रसार किया जाता है।

वर्तमान में दुनिया के कई रेडियो स्टेशन या तो बंद हो चुके हैं या फिर उनमें छंटनी हो चुकी है पर सीआरआई अपना काम अनवरत किए जा रहा है।

ध्यान रहे कि चीन के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है और वहां से ग्रेजुएट होने के बाद चीनी छात्र-छात्राएं हिंदी और चीन-भारत से जुड़े हुए काम करते हैं। साथ ही चायना रेडियो के हिंदी विभाग में भी उन्हें नौकरी मिल जाती है।हिंदी सीखने और हिंदी से संबंधित काम करने वाले चीनी लोगों का हिंदी नाम भी होता है। ऑफिस में और भारतीय लोगों के बीच वे हिंदी नामों से ही जाने जाते हैं।

हिंदी विभाग की निदेशक यांग ई फंग(हिंदी नाम- बिंदी) ने चीन के पेकिंग विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई की।उसके पश्चात दिल्ली विश्वविद्यालय से भी हिंदी का अध्ययन किया। वह पिछले 23 वर्षों से हिंदी विभाग में काम कर रही हैं। इस दौरान कई बार भारत-चीन आदान-प्रदान के लिए काम कर चुकी हैं।

बकौल यांग, सीआरआई हिंदी द्वारा पुस्तकों का प्रकाशन भी किया जाता है। जिसमें पश्चिम की तीर्थ यात्रा, चीनी-हिंदी शब्दकोश आदि का प्रकाशन और अनुवाद कार्य प्रमुख है।

इसके साथ ही फ़िल्मों व टीवी धारावाहिकों का अनुवाद, टीवी प्रोग्राम आदि बनाने में भी सीआरआई सक्रिय है। भारतीय लोगों को चीनी सिखाने में भी सीआरआई हिंदी की अहम भूमिका रही है। हैलो चायना डीवीडी के माध्यम से भी चीनी सिखाने का काम किया जा रहा है। जबकि सीआरआई हिंदी की वेबसाइट के जरिए भी भारतीय लोग चीनी भाषा सीखते हैं।

मैं अपनी दूसरी वरिष्ठ सहयोगी और हिंदी विभाग की उप निदेशक थांग युआन क्वेई(हिंदी नाम- सपना) का भी जिक्र करना चाहूंगा। जो पेकिंग विश्वविद्यालय से हिंदी में स्नातक हैं। उसके बाद उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से भी हिंदी की पढ़ाई की। गत दो दशक से हिंदी विभाग में काम कर रही हैं। उन्हें हिंदी से जुड़ा हुआ अनुवाद कार्य, लेखन करने के अलावा भारत से बेहद लगाव है। लंबे समय से वह चीन-भारत से जुड़े समाचारों के अलावा तिब्बत के प्रमुख मुद्दों पर लिखती रही हैं।

हिंदी विभाग के उक्त कर्मचारियों के अलावा दूसरे चीनी भी हैं, जो हिंदी सीखने के बाद इस क्षेत्र में अपना करियर बना रहे हैं।

रेगिस्तानी वादक

निशा

जसवन्द थड़ा के दरवाजे पर उसको बैठे बजा रहे हुए देखा | बाद में निर्णय किया कि अगले दिन यहाँ फिर से उसके बजाने को सुनने आऊँ| मैं थड़ा के घर में प्रवेश करने के बजाए सीधे उसकी ओर गयी और बैग धरती पे रखकर बैठी हुई, उसकी कहानी सुनने लगी|

जोधपुर से ४० किलोमीटर पर उसका घर है| दिन-दिन और साल-साल ऐसा कभी तबदीली न होगा कि प्रतिदिन सुबह बस से यहाँ आता है और ९ बजे से दोपहर के बाद ५ बजे तक राहियों को बजाता रहता है| इतना मेहनती होने पर भी पूरे दिन के लिए आम तौर से करीब १००० रुपये ही कमा पाता है, कभी कभी १५०० तक की कमाई हो जाती गई | उसकेआठ बच्चे हैं, जिनकी अपनी-अपनी नौकरी लग गयी है | हाथ में जो वाद्य बजाया जा रहा था, अपने दादा जी से प्राप्त हुआ| बगल में और दो रखे हुए हैं, जिनको उसने स्वयं बना लिया| बात करते समय मुझे जानकारी मिली कि एक रावण हत्था को बनाने में लगभग दो दिन लगते हैं|

जब यात्री यहाँ से गुज़रने लगे, उसने अपना काम शुरू किया, लेकिन अधिकांश लोगों ने केवल रुककर कुछ मिनट देखा या फोटो खींचा, इसके अतिरिक्त कोई भी नहीं किया| भीड़ छंट जाने के बाद मुझे सुनाने लगा|

समय व्यतीत हो रहा था| दोस्त भी बाहर आ गए, परन्तु मेरी उठने की इच्छा फिर भी न उत्पन्न हुई |

उसने हमसे कहा:"ये रावण हत्था एक की कीमत १००० रुपये का है |" हमें इनकार करते देखकर बोला:"लो, पांच सौ में ले लो |"

साथी को सौदा करते देखकर मुझे न जाने अचानक थोडा क्रोध आया और मैंने कहा, "यदि कामना नहीं तो बोलो, मजाक मत करो|" मेरे ख्याल से यह निर्दयी बात है कि दूसरों को उम्मीद देकर फिर छीन लें| याद आ गयी कि वो बार-बार मुझे रावण हत्था बजाना सिखाता था और परिवार की छोटी छोटी चीजों का वर्णन करता था......नेत्रगुहा में उसी क्षण आंसू से भर उठे |

देखने पर अनुमान हुआ कि उसने अच्छी तरह शिक्षा नहीं पायी होगी | पिछले दिन मैंने उससे वाद्य का नाम लिखने की प्रार्थना की, मगर उसने पेन नहीं लिया| सोचा था शायद वो अपने काम में व्यस्त था, इसलिए मैंने कागज़ पे शब्द लिखकर उससे पूछा| "हाँ,हाँ,ऐसा है|" वास्तव में जब तक उसने थड़ा का प्रवेश पत्र दिखाया तब तक मुझे पता चला कि पहले से जो मैंने लिखा वो गलत था|हो सकता है कि उसके दादा से उस तक, जो कौशल सिखाया गया, सिर्फ कैसे रावण हत्था बजाते हैं ताकि रोज़ी रोटी कमाएं , इसके आलावा और कुछ भी नहीं| सुना है कि जोधपुर में उसके समान बहुत रेगिस्तानी वादक होते हैं | वे अलग अलग वाद्यों से राजस्थान के सबसे मधुमक्खी असर बजाते हैं, और राजस्थान के संस्कृत उत्तराधिकार में वे अति महत्त्वपूर्ण भाग निभाते हैं, पर जिंदगी के लिए कठिनाइयों का सामना करना उनका दूसरा नाम है,यहाँ तक कि खान-पान मुश्किल से लेने की संभावना हो|

जाना पड़ा | वो अपने हाथ निकालकर मिलाना चाहता था, मुंह में "धन्यवाद "बोलने की आवृति|मैं जोर लगाकर हाथ देने की कोशिश करती थी| हाथ मिलाना जितना भारी तथा संस्कारपूर्ण था मुझे उतना कभी न लगा गया समय में | मैंने गंभीर भाव से कहा, "धन्यवाद, आप का बजाना इतना उत्तम है कि मुझे जैसे संस्कार दिया गया|"

उदयपुर में भी वाद्य बजाने का श्रवण किया| मन में जो बजाने वालों से बताना चाहती थी आखिल में मैंने सब कहा |

ये चापलूसी नहीं , सम्मान है |

सम्मान रेगिस्तानी वादकों को, सम्मान भी उन लोगों को जो अपने स्थान पे उत्साह एवं परिश्रम से संघर्ष कर रहे हैं|

धन्यवाद!भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर रहने वाले हमजैसे, जीवनकाल में बढ़ते बढ़ते भी सौभाग्य से इतनी आवाज़ सुनसकते हैं |

अमर संगीत,अमिट आत्मा|

रूसी कवि पूश्किन की एक कविता की स्मरण है। एक साथ शेयर:

जीवन में कोई धोखा खा या उदास हो,
चिंता कर मत, छोड़ दे मत,
एक उमर बीत चलेगी तुझेदुख हुए,
ठीक हो जाएगा सब|

हम इस विशाल सृष्टि के नगण्य धूल हैं, लेकिन जीवित होना किस प्रकार ख़ुशी बात! हमारा अच्छी तरह से ध्यान देने योग्य है आजीवन हर वक्त|



हिन्दी साहित्य और स्त्री सशक्तीकरण

-प्रोफेसर. पवन अग्रवाल
हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

महिला सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं जागरूक और क्षमतावान बनाकर समाज पुरूषों के समान सहभगिता को प्राप्त हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि उनकी पारंपरिक सामाजिक छवि में परिवर्तन हो। इसके लिए उनकी आंतरिक शक्ति या दूसरे शब्दों में उनके आत्म विश्वास में वृध्दि करनी होगी। यह आंतरिक शक्ति या आत्म विश्वास जाग्रत होगा, उनके स्वालंबी होने से शिक्षित होने से तथा परिवार के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर उन्हें सहभागी बनाकर, निर्णयात्मक क्षमता विकसित करने से। इससे न केवल महिलाओं की आत्म छवि में परिवर्तन होगा अपितु साधनों तक उनकी पहुँच बढेगी और उनमें उपभोग की सामर्थ्य आयेगी।

विदित है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् ही भारत में मध्यकाल, विशेषतः रीतिकाल में महिलाओं के सम्मान में जो ह्रास हुआ था। उसके प्रति चिन्ता प्रारंभ हो गई थी। समाज-सुधारकों के साथ-साथ राजनैतिक एवं संवैधानिक स्तर पर भी महिलाओं की स्थिति सुधारने के स्तुत्य प्रयास हुये किन्तु रूढ़िवादिता से जकड़ी पितृसत्तात्मक समाज में शोषित एवं अपनी दैहिक संरचना की दुर्बलता से कुष्ठित महिलाओं की मुख्यधारा में उपस्थिति दर्ज न हो सकी। इसको यों भी कहा जा सकता है कि एक वर्ग विशेष को छोड़कर, सामान्य महिलायें हाशिये पर ही पड़ी रही हैं। इसके लिए जहाँ एक ओर राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक कारक उत्तरदायी रहे वहीं उनकी प्राकृतिक संरचना, अशिक्षा, भावनात्मकता तथा शील भी कम महत्त्वपूर्ण कारण नहीं है।

सामाजिक, राजनीतिक एवं संवैधानिक स्थितियों के साथ-साथ साहित्य ने भी महिलाओं की समस्याओं, उनकी स्थिति तथा उनको अशक्त करने वाले तत्त्वों को अपने विमर्श में रखकर सार्थक भूमिका निभाने का प्रयत्न किया किन्तु वर्तमान में उत्तरोत्तर जागरूकता एवं चर्चा के पश्चात् भी साहित्य की भूमिका संदिग्ध प्रतीत होती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि सामान्य अवधारणा बन गई है कि परंपरागत भारतीय साहित्य में स्त्री केवल सौंदर्य (आन्तरिक एवं बाह्य) विलास एवं माया के रूप में वर्णित हैं जिससे स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व विकसित नहीं हो पाया। दूसरा कारण यह है कि साहित्य में प्रारंभ से लेकर वर्तमान तक सामान्य स्त्री लोप रही है। अशिक्षित, अविकसित तथा निम्न मध्यवर्ग की स्त्री सरोकार विमर्श में अनुपस्थित हैं।

इन कारणों के विपरित सच यह है कि भारतीय वाङ्मय में स्त्री कभी उपेक्षित नहीं रही। वेदों से लेकर, वर्तमान साहित्य के लेखकों ने स्त्री को अपने पटल से विस्मृत नहीं किया। प्राचीन से लेकर अर्वाचीन साहित्य तक स्त्री समुदाय अपनी समस्त क्षमताओं, कुण्ठाओं, समस्याओं के साथ उपस्थित रहा है तथा साहित्यकारों का प्रयत्न रहा है कि स्त्री के विभिन्न रूपों का पक्ष-प्रतिपक्ष खड़ा करके स्त्री की छवि को प्रखरता एवं संपूर्णता में प्रस्तुत किया जाये। उदाहरण के लिए एक ओर सीता को देखा जा सकता है वही दूसरी ओर सूपर्णनखा को। एक ओर गाँधारी है जो अंधे पति के समकक्ष पट्टी बाँध लेती है और अपनी जिम्मेदारी से विमुक्त हो जाती है, वहीं दूसरी ओर शकुतला है जो दुष्यंत से तिरस्कृत होने पर भी 'भरत' जैसा लाल 'गढ़ती' है जिसके नाम राष्ट्र का नाम रखा जाता है। वही एक ओर कुंती है जो लोकभय से कर्ण को जल में बहादेती है वहीं एक दलित स्त्री अपने पुत्र सत्यकाम के लिए, पिता का नाम बताने में समर्थ न होकर भी जाबाल जैसे पुत्र का पोषण करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय वाङ्मय में स्त्री के सद्-असद् दोनों रूपों को बड़ी संजीदगी से उभारा गया है तथा उनके निर्माण-पतन में उत्तरदायी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कारकों को भी दर्शाया गया है।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' -जैसी उक्ति से संचारित स्त्री के अस्तित्त्व को बचाने के लिए प्रयत्नशील वर्तमान साहित्यिक विमर्श असफल हो रहे हैं, इसका कारण हमें ढूंढना होगा।

वर्तमान में प्रचलित 'एक्टिविस्ट मूवमेंट' हों या साहित्यिक विमर्श, भारत के संदर्भ में इनके असफल होने का मूल कारण है कि इनकी संरचना एवं संवाद पाश्चात्य एवं यूरोपीय ढाँचे या ब्लूप्रिंट पर आधारित है, जहाँ रिश्ते-नातों का सीधा और गहरा सामाजिक आधार नहीं है। वहां का सामाजिक ढाँचा इतना लचर है कि वहाँ परिवार या समूह का स्थायी महत्त्व नहीं है। आज समाज में दुरभि एक संधि दिखाई दे रही है- स्वतंत्रता के नाम पर केवल देह की स्वतंत्रता एक पति से क्यों बंधे रहें? विदेशों की तरह अनेकों पति बदलते रहिए, पर अन्त में क्या मिलेगा? आखिर कुछ तो कारण होगा कि २०५० में भारत विश्व का सबसे युवा राष्ट्र होगा। संभवतः इसका कारण है कि पाश्चात्य राष्ट्रों पर पड़ा आर्थिक दबाव। वह आर्थिक दबाव जिसने मनुष्य का मनुष्यत्व छीन उसे मशीन बना दिया और स्व-विवेक से उत्तरदायित्त्व निभाने वाले भावों का विलयन करके, समाज के रथ को खींचने वाली स्त्री-पुरूष को एक मशीन या श्रमिक बना दिया जिसकी इच्छायें, अभिलाषाएं मनोभाव विलासिता के संसाधन जुटाने में लोप हो गये। परिणामतः मनुष्य की सर्जनात्मक क्षमता का ह्रास हुआ और स्त्री का मातृत्त्व शून्य। भाव शून्य स्त्री, प्रतिस्पर्धा की होड़ में पुरूष की अनुगामी बन गयी और प्रतिपक्षी बनकर उभरी। लाभ और लोभ से वशीभूत स्त्री ने न अपनी व जैविक संरचना पर ध्यान दिया और न ही उत्तरदायित्वों पर।

ऐसे एजेंडे से भारतीय महिलाओं की स्थितियों को सुधारने का ब्लूप्रिंट अधूरा रहेगा और हवा-हवाई होगा। इसकी नियति विफलता ही होगी। क्योंकि भारत उदात्त धार्मिक-सांस्कृतिक अस्मिता का राष्ट्र है। 'उदात्त' शब्द का उल्लेख यहाँ सप्रयोजन है। प्रयोजन यह स्पष्ट करना है कि भारतीय संस्कृति और धर्म, जो पाश्चात्य जगत में निरपेक्ष या बाधक माने जाते हैं, उनमें आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है। यही कारण है कि अनेक प्रांत, भाषा एवं धर्म के होते हुए भी भारत का 'राष्ट्रीय' स्वरूप अक्षुण्ण है।

वर्तमान साहित्य में महिला सशक्तीकरण और चिंतन के केन्द्र में सिमोन द बुआ का सामाजिक चिंतन प्रभावी है। जो कि महिला के विकास में या कहे महिलाओं के पिछड़ने में पूर्णतः पुरूषों को प्रतिपक्षी मानता हैं और स्त्रीमुक्ति या सशक्ति के लिए देह की स्वतंत्रता या यौनोन्मुकता को मूलाधार। जबकि इसके ठीक विपरीत भारतीय चिंतन में स्त्री और पुरूष को समभाव से सृष्टि, समाज एवं राष्ट्र के विकास में सहायक माना गया है।

भारतीय साहित्य के आधार ग्रंथों की बात करें तो वेदों में स्पष्टतः स्त्री को शैक्षिक, सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से समक्ष मानकर, अहम् भूमिका में रखा गया तथा वैयक्तिक विकास से लेकर पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय निर्णयों में उसकी भूमिका एवं सहभागिता पुरूषों के समकक्ष थी। उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद में योग्य कन्या को सुख का कारण माना जाता था सेवा तथा देखरेख के आदायित्व के साथ-साथ ससुराल में गृहस्वामिनी और साम्राज्ञी कहा जाता है-

"साम्राज्ञी श्वसुर भव, साम्राज्ञी श्वश्राभवा
नन्दादि साम्राज्ञीभव, साम्राज्ञी आदि"

तथा निर्मुक्त होकर पुरूषों के साथ अध्ययन और काम-धंधों में लिप्त रहती थीं। वे अध्यापनादि क्षेत्रों को अपनाती थीं और खुलेआम सभाओं में सहभागिता करती थीं। गार्गी, मैत्रीयी अपाला आदि इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। अथर्ववेद में कहाँ गया कि- "स्त्रियों को विधायिका में भाग लेना चाहिये, अपने विचार व्यक्त करने चाहिये।" (अर्थर्ववेद ७.३८४ एवं १२.३.५२)

इसी प्रकार स्त्री को ज्ञान एवं शक्ति से संपन्न बनाने के लिए अथर्थवेद उसे बुद्धि से मुक्त करने का उपदेश है- "माता-पिता को अपनी पुत्री को पति के घर जाने से पूर्व उसे ज्ञान एवं बुद्धि की शक्ति से युक्त करना चाहिए। उन्हें अपनी पुत्री को ज्ञान का उपहार देना चाहिए।

उत्तर वैदिक काल में परिवार तथा समाज के अन्तर्गत स्त्रियों का स्थान, सम्मानजनक था। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था।

बौधायन धर्म सूत्र के अनुसार यदि-व्यस्क कन्या का पिता तीन वर्ष तक कन्या के लिए पति न खोज सके तो कन्या को स्वयं पतिवरण का अधिकार है।" स्त्री के लिए वैधव्य आज की भाँति अभिशाप नहीं था। अपितु विधवा सम्मानजनक जीवन व्यतीत करती थी। और शव के साथ शमशान तक जाती थी। स्त्रियों की संकीर्ण दशा के लिए तीसरी से ११वीं शती के मध्य लिखी गयी 'मनु स्मृति' को आज भी उत्तरदायी ठहराया जाता है। यहाँ विनम्रता के साथ कहना चाहूँगा कि 'मनु स्मृति' केवल भारतीय संस्कृति का एक मात्र पर्याय नहीं है। सच तो यह है कि 'मनु स्मृति' तत्कालीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मूल दस्तावेज है। उल्लेखनीय है कि कोई भी व्यवस्था काल प्रवाह के साथ अप्रासंगिक हो सकती है किन्तु मानव मनोविज्ञान पर आधारित व्यवस्था अप्रासंगिक नहीं होती। परिणामतः अन्य भारतीय आधारग्रंथों की भाँति जहाँ मनु ने मानव मनोविज्ञान को केन्द्र में रखा वह सूत्र आज भी मान्य है और जो केवल सामाजिक व्यवस्था हेतु रखे गए वह काल प्रवाह में क्षीज गए हैं। यही कारण है कि वर्ण-चातुष्ट्य या स्त्री संबंधी मनु की अवधारणायें खंडित सिद्ध हुई।

हालांकि मनु ने स्त्री के पक्ष में एकपक्षीय निर्णय नहीं किये हैं। वहां भी नारी को जीवन -संदर्भ में पुरूष के साथ समानता का अधिकार प्राप्त है- "यो भर्ता सा स्मृताङ्गना (जो भर्ता वही भार्या) या स्वेच्छामय-स्वेच्छया च दूविधा रूपों ब भूव ह

स्त्री रूपों बामभागांशो दशिणांश पुमानः स्मृतः।।

तत्कालीन याज्ञवलक्य संहिता में भी नारी को परिवार में श्रेष्ठ मानकर महत्व दिया गया है-

भर्तभ्रातृ पितृजाति श्वश्रुश्वर सुर दैवरो।

x x x

बन्धुमिश्च स्त्रियां पूज्यां

यहां तक कि शक्ति संगम तंत्र में भी नारी की श्रेष्ठता का उल्लेख है।

- नारी त्रैलोक्यजननी नारी त्रैलोक्य रूपिणी।
  नारी त्रिभुवन धारा, नारी देह स्वरूपिणी।।
- न च नारी सदृशो योगो, न च नारी सदृशं यशः।
  न नारी सदृशं मित्र न भूतो भार्याविष्यतिः।।
- न च नारी समं सौख्यं न च नारी समागतिः।
  न नारी सदृशं भाग्य न नारी सदृशो तपः।। (नवदुर्गा सप्दशती)

'नवदुर्गा सप्तशती' का पाठ करने वाले स्पष्ट जानते हैं कि जब-जब सामान्य ही नहीं देवपुरूष भी भयाक्रांत हुये हैं तब-तब उसने दुर्गा, काली आदि देवियों का आह्वान किया और जिस पुरूष में जो पौरूषेय गुण एवं कला थी, उसे नारी को हस्तगत किया और नारी शक्ति को सृष्टि संरक्षण के लिए सर्वोपरि माना।

हिन्दी साहित्य के प्रथम कवि सरहपा ने संस्कृत की आभिजात्य परम्परा जिसमें स्त्री राजकुमारियाँ थीं, के समकक्ष ऐसी स्त्रियों को प्रतीक के रूप में रखा जो चाण्डालिनी हैं, जो रजकी हैं अर्थात् उपेक्षित हैं।

भक्ति काल को सामान्यतः कुछ उक्तियों के आधार पर नारी विरोधी मान लिया जाता है। लेकिन चाहें निर्गुण कवि हों या सगुण कवि दोनों ने ही नारी की सामाजिक स्थिति के विरूद्ध मोर्चा लिया है। आवश्यकता है उन कथाकथित प्रचलित उक्तियों के पुनर्पाठ की जिससे पूर्व कुण्ठित व्याख्याओं से इतर, उन कवियों की प्रकृति एवं प्रवृत्तियों के आलोक में उनकी पुनर्व्याख्या हो सके।

कबीर की उक्तियां - "माया महाठगिनी हम जानी' या 'अंधा होत भुजंग', के आधार पर उन्हें स्त्री विरोधी मानना कहीं भी श्रेयस्कर नहीं है। यहाँ माया-प्रलोभन है और अजगर को अंधा करने वाली

स्त्री, कुदृष्टि डालने वाले बाहुबलि के तेज को भी निस्तेज करके, अपनी स्मिता को सुरक्षित रखने वाली स्त्री के रूप में वर्णित है।

इसी प्रकार तुलसीदास जी की 'ढोल गंवार, शूद्र, पशु, नारी' वाली उक्ति पर तुलसी को नारी विरोधी समझ लेना कहाँ का न्याय होगा? हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठतम् रचना 'श्रीरामचरित मानस' निःसंदेह स्त्री प्रधान काव्य है। गोस्वामी जी वंदना में भी परंपरा से हटकर गणेश से पहले वाणी, शंकर से पहले भवानी तथा राम से पहले सीता की स्तुति करते हैं। तुलसी नारी अस्मिता को लेकर ही श्रीरामचरित मानस का ताना-बाना बुनते हैं। अहिल्या प्रसंग, सीता स्वयंवर, सीता वनगमन सूपर्णनखा प्रसंग, सीता हरण, तारा-मंदोदरी आदि कथायें नारी विमर्श और सशक्तीकरण के विविध आयाम है। तुलसी ने स्त्रियों के लिए उपासना के नए द्वार खोले। सीता को राम के साथ वन भेजकर स्त्री स्वातंत्र, स्वावलंबन और स्त्री-पुरूष समभाव का स्तुत्य उदाहरण दिया। पुरूषों को एक पत्नी व्रत संकल्प कराया।

कृष्णकाव्य धारा तो नारी अस्मिता का अद्भुत संसार है। यहाँ नारी की मुस्कुराहट कम कराह अधिक है। यहाँ नारी की उन्मुक्ता है तो सशक्त विद्रोह भी। विद्यापति की लखिमा देवी के यौनोन्मुक्त प्रसंग, मीरा का अद्भुत प्रेम स्व-अस्तित्त्व और सूर की गोपियों और राधा की प्रतिक्रियायें नारी सशक्तीकरण या विमर्शों से फलीभूत नहीं हुई हैं। मथुरा अधिपति कृष्ण जब उधो के द्वारा गोपियों के पास 'योग'का संदेश प्रेषित करते हैं तो गोपिकायें बिना मथुरापति का ध्यान करे, तीखी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करती हैं-

हमको जोग-भोग, कृष्णा को काकै हिये समात हो'' (सूरदार)

इसी प्रकार बाल-नव यौवनाओं पर मुग्ध कृष्ण को विवेक का प्रयोग करने के लिए सूर की गोपिकाये ही ललकार सकती हैं-

"हरि उर पलक धारो धीर। हित तिहारे करत मनसिज सकल शोभा तीर।" (सूरदार)

इतना ही नहीं परिवार समाज के सारे बंधनों को तोड़कर पर-पुरूष के प्रति अनुराग अभिव्यक्त करना सहज है। यह कर दिखाया है सूर की गोपिकाओं ने, जो कृष्ण की टेर पर, मिलने के लिए दौड़ पड़ती हैं। नारी स्वातंत्र की यह बानगी कहीं मिलेगी।

'पद्मावत' जैसी सच्ची प्रेम कहानी कहने वाले सूफी कवि जायसी ने भी स्त्री के सामाजिक बंधनों को चुनौती दी है। पुरूष सत्तात्मक समाज में व्याप्त 'काम-वर्जनाओं के प्रति दो परिवारों के मध्य; तत्कालीन समाज में व्याप्त वर्जनाओं को जायसी ने उकेरा है। जब राजा अपनी पुत्री को 'नवयौवन' में प्रवेश करते समय, उठते काम-भावों को संयमित करने के लिए सतखंडा, महल में रखता है और हम उम्र सहेलियाँ (सबै नवल पिउ संग न सोई) के साथ पद्मावती पर बंधन लगाता है। तो पद्मावती का हीरामन तोते से कहा गया कथन पितृसत्तात्मक समाज में घुटती स्त्री की व्यथा-कथा कह देता है-

"एक दिवस पद्यावती रानी। हीरामन तहूँ कहा सयानी।
सुनु हीरामनि कहों बझाई। दिन दिन मदन सतावन आई।।
पिता हमार न चालै बाबा। त्रासहि बोलि सकै न माता।।
x x x
जब हीरामन समझाता है-
ऐ रानी मन देखु बिचारी। एही नैहर रहना दिन चारी।।
तब पद्यापती ससुराल को स्त्री की नियति का उल्लेख करती है-
"पुनि सासुर हम गवनव काली। कि हम, कित यह सरवर पाली।।
सासु ननद बोलिन्ह जिए लेही। दारून ससुर न निसरै देहीं।।

दो परिवारों के मध्य पिसती नारी की कामना के प्रति क्या जायसी आवाज नहीं उठाते? (मानसरोदक खंड पद्मावत)

रीतिकाल में अवश्य नारी के आंतरिक सौंदर्य की उपेक्षा हुई और वह कलात्मक वस्तु के रूप में देखी गई। किन्तु रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त कवियों के काव्य नारी से जुड़ी सभी संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्राप्त है। बस! आवश्यकता है कि इन कविताओं को श्रृंगार और भक्ति के चश्में से न देखकर लौकिक धरातल पर परखा जाये। उदाहरण के लिए मध्यकालीन स्त्री की चिंता आचार्य कवि पद्माकर के काव्य में देखी जा सकती है- "दारून दुख सहती, चुप है रहती, कछुँ न कहती गरौ भरे (पद्माकर गंथावली पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छंद १०६) ऐसे ही लोक मर्यादा के बंधन में बंधी स्त्री की पिता को बिहारी ने अभिव्यक्त किया है-

'कहत न देवर की कुवत, कुल तिय कलह डराति
पंजर-गत मंजर-ढ़िग, सुक ज्यौं सूकति जाति।। (बिहारीश्लाकर, जगन्नाथदास रत्नाकार दोहा सं. ८५)

आधुनिक काव्य में परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों तथा समाज सुधारकों के सद्प्रयास से स्त्री पक्ष के प्रति एक नई दृष्टि विकसित हुई जिसके स्वर साहित्य में स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त की 'अबला जीचन हाय तुम्हारी यही कहानी' के साथ-साथ "अबला हूँ न कुछ भी कहों या 'रे मन आज परीक्षा तेरी' या 'दीन न हो गोपी, हीन नहीं नारी कभी' या 'पुस्तक, तूली और वीणा चौथी मैं पाँचवी तू प्रवीणा' - पंक्तियों को पढ़ने से ही गुप्त की 'कथाकथित' अबला में सबला स्त्री दिखायी पड़ेगी। प्रसाद की 'श्रद्धा' को उनकी कहानियों नाटकों और उपन्यासों में स्त्री के नए संदर्भों को देखा जा सकता है। निराला की 'वह तोड़ती' पत्थर, 'कुकुरमुत्ता', 'गरम पकौड़ी' स्त्री सशक्तिकरण के नये संदर्भ प्रस्तुत करती हैं। महादेवी वर्मा की 'नीरभरी दुःख की बदली' के लहलहाते स्वरूप को अपने अस्तित्व के लिए प्रतिबद्ध प्रारूप को 'श्रृंखला की कड़ियों में देखा सुना-समझा जा सकता है। सीमोन दबुआ के समकालीन भारतीय परिवेश के अनुकूल स्त्री अस्मिता एवं सशक्तीकरण को स्वर देने में 'श्रृंखला की कड़ियों का कोई सानी नहीं है। मुझे यह कहने में तनिक संकोच नहीं है कि यदि स्वातंत्र्योत्तर नारी निशक्तीकरण की साहित्य में नीति महादेवी के आधार पर निर्धारित होती तो संभवतः आज का साहित्य अति संवेदनशीलता के साथ स्त्री के पक्ष में अहम भूमिका निभाने में समक्ष होता। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'मर्दानी' से क्या कोई सामंती सत्ता संघर्ष करने में सक्षम है।

गद्य के क्षेत्र में प्रेमचंद से लेकर सुरेन्द्र वर्मा तक और बंगमहिला से लेकर मैत्रोयी तक किसने नारी की समस्याओं को पूर्ण संपूर्णता के साथ उद्घाटित नहीं किया। समाज की कौन सी रूढ़ि और बंधन तोड़ने में नारी सक्षम नहीं होती। झुनिया बिन ब्याहे माँ बनने का साहस जुटा लेती है तो सिलियां पंडित दातादीन के बेटे से प्रेम कर उसे अपना बना लेती है। उषा प्रियंवदा की राधिका स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होती है। प्रभा खेतान की प्रिया अपने अस्तित्त्व और व्यक्त्वि को बचाने में सफल होती है और मैत्रेयी की 'अल्माकबूतरी' स्त्री को समाज की मुख्य धारा में लाने में सफल होती है।

इन सबके पश्चात् भी यदि वर्तमान साहित्य में स्त्री की अस्मिता और सशक्तीकरण के प्रति संदेह उत्पन्न होने के कई कारण गिनाये जा सकते है। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि भारतीय स्त्री को सशक्त करने के लिए भारतीय जमीन पर खाका खींचना होगा ना कि पाश्चात्य स्त्री पक्ष के ढाँचे पर। हम अपने समाज, धर्म मूल्य और संस्कृति के अनुरूप ही जब स्त्री के विकास की सीढ़िया बनायेंगे तभी वह सकुशल उस मंजिल पर पहुँचेगी जिसकी वह अधिकारी है। केवल यौनोन्मुक्ता, पुरूष प्रतिपक्ष पारिवारिक विधान, मातृत्व हीनता, आर्थिक सफलता को हम स्त्री सशक्तीकरण का प्रस्थान बिंदु मानेंगे तो अन्याय होगा।

दूर देश की पाती

[ओसाका जापान से हिंदी प्रेमियों के नाम हिंदी के प्रोफेसर तोमियोमिजोकामी का पत्र]

माननीय दिग्गज हिन्दी प्रेमियो !

गत सप्ताह (जून 2 को) वित्त मंत्री श्री अरुण जेटली जी का भाषण ओसाका विश्वविद्यालय में आयोजित हुआ था । 400 सीटों का पूरा हॉल खचाखच भरा हुआ था । भाषण अँग्रेजी में बिना दुभाषिए के हुआ था । भाषण के बाद ,<भोज > में मुझे आमंत्रण मिला और कुछ मिनट के लिए हिन्दी में बोलने का अवसर मिला था । मैंने अरुण जेटली जी और अन्य दिग्गज अतिथियों को संबोधित करके निम्नलिखित बातें बताई थीं ।

"हमारा ओसाका विश्वविद्यालय जापान का सब से बड़ा सरकारी (central) विश्वविद्यालय है और यहाँ के हिन्दी-उर्दू के अध्ययन-अध्यापन के 95 साल के लंबे इतिहास और परंपरा है । ओसाका विश्वविद्यालय पश्चिमी जापान में हिन्दी- उर्दू शिक्षण का गढ़ माना जाता है ।

सन 2001 में जब तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ओसाका पधारे थे और पाँच सितारा होटल में उनका स्वागत समारोह हुआ था तो हमारे कुछेक इच्छुक विद्यार्थियों ने उनके मनोरंजन के लिए हिन्दी में लघु नाटक प्रस्तुत करके उनका दिल जीत लिया था और जब हमारे हिन्दी नाट्य दल के विद्यार्थी भारत में हिन्दी नाटक के मंचन के लिए गए थे तो वाजपेयी जी ने सभी छात्रों को अपने निवास-स्थान पर जलपान के लिए आमंत्रित किया था और छात्रों के हिन्दी -प्रेम की प्रशंसा की थी ।

सन 2014 में जब टोक्यो में Indo-Japanese Association की ओर से आयोजित स्वागत समारोह में हिन्दी में भाषण देते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने सैंकडों श्रोताओं के बीच बैठे मुझे पहचान लिया और सभी श्रोताओं के सामने कहा-"आपने ही मुझे चिट्ठी लिखी थी न, कि मोदी जी जब आप जापान आएंगे तो हिन्दी में ही बोलें " तो मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा, मैं अभिभूत हो गया उनकी प्रखर स्मृति शक्ति से । भाषण के अंत में क्षण भर उनसे बात करने का मौका मिला तो मैंने उनसे बस इतना अनुरोध किया था कि आप अगली बार ओसाका अवश्य आएँ तो उन्होंने उत्तर दिया कि "हाँ, आऊँगा !" उसके बाद ओसाका विश्वविद्यालय के कुलपति का औपचारिक आमंत्रण -पत्र ओसाका स्थित भारत के प्रधान कोंसुलावास के माध्यम से प्रधान मंत्री कार्यालय में भिजवाया गया है । "

मैंने..प्रधान मंत्री जी के "दाहिना हाथ" कहलाने वाले जेटली जी से अनुरोध किया है--

"आपप्र धान मंत्री जी से जब मिलें तो उन्हें मेरे साथ किए गए वायदे की याद दिलाएँ और यह बताएं कि ओसाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थी आपका भाषण हिन्दी में सुनने के लिए बहुत उत्सुक और अधीर हैं । प्रधान मंत्री जी

का ओसाका विश्वविद्यालय में हिन्दी में भाषण केवल इस विश्वविद्यालय के लिए गौरव की बात नहीं है, अपितु हिन्दी के प्रचार के लिए बहुत सांकेतिक महत्त्व रखता है ।"

मुझे पता नहीं कि मेरे इस भाषण का उनपर कितना असर पड़ा होगा । लेकिन उनकी शक्ल से तो कुछ कुछ स्वीकारात्मक संकेत झलक रहे थे ।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वित्त मंत्री जी से मेरी यह भेंट प्रधान मंत्री जी के संभावी ओसाका विश्वविद्यालय-आगमन के लिए मजबूत सहायक सिद्ध हो !

आपका तोमिओ मिज़ोकामि,

मानद प्रोफेसर, ओसाका विश्वविद्यालय ,ओसाका, जापान

जून 10, 2016

तेजेन्द्र शर्मा - ब्रिटेन से

मित्रो!

ब्रिटेन के हिन्दी साहित्य को लेकर एक अलग किस्म की चिन्ता है...
यहां के अधिकतर लेखक अब वरिष्ठ या बुज़ुर्ग की स्थिति में पहुंच रहे हैं। इमिग्रेशन के माध्यम से जो पीढ़ी अब भारत से आ रही है, उनमें से बहुत कम हिन्दी साहित्य से जुड़े लोग हैं - अधिकतर कम्पयूटर, डॉक्टरी, डेन्टिस्ट्री, केमिस्ट, वकील आदि पेशों से जुड़े हैं।

ब्रिटेन में पैदा हुए बच्चों में से आजतक तो कोई साहित्यकार बना नहीं। अब भविष्य की गोद में क्या लिखा है, उसके बारे में बता पाना आसान नहीं। यानि कि ना तो भारत स नये लेखक ब्रिटेन में आकर बस रहे हैं और ना ही ब्रिटेन मे पले बढ़े बच्चे हिन्दी साहित्यकार बनने की दिशा में कोई क़दम उठा रहे हैं।

कीर्ति चौधरी, ओंकारनाथ श्रीवास्तव एवं गौतम सचदेव के निधन के बाद अब ब्रिटेन के लेखकों के आयु वर्ग कुछ इस प्रकार है :-

80 वर्ष वाला ग्रुपः महेन्द्र दवेसर, कैलाश बुधवार।

70 वर्ष वाला ग्रुपः डॉ०. सत्येन्द्र श्रीवास्तव, नरेश भारतीय, सोहन राही, प्राण शर्मा, उषा वर्मा, उषा राजे सक्सेना, ज़किया ज़ुबैरी, डॉ०. कृष्ण कुमार, डॉ०. महेन्द्र वर्मा, कादम्बरी मेहरा, रमा जोशी।

60 वर्ष वाला ग्रुपः नीना पॉल, दिव्या माथुर, अचला शर्मा, शैल अग्रवाल, अरुण सभरवाल, कविता वाचकनवी, शन्नो अग्रवाल।

50 वाला ग्रुपः मोहन राणा, जय वर्मा, पद्मेश गुप्त।

50 से कम आयुवर्गः शिखा वार्ष्णेय, वन्दना मुकेश शर्मा, अजय त्रिपाठी, कृष्ण कन्हैया।
अभी बहुत से नाम रह गये होंगे। मगर चिन्ता यह है कि जिसे भारत में प्रवासी साहित्य के नाम से स्थापित किया जा रहा है, क्या उसका भविष्य इतना अनिश्चितता से भरपूर है।
और हां, क्या अमरीका, कनाडा, युरोप और खाड़ी देशों में भी कुछ ऐसी ही चिन्ता महसूस की जा रही है।

पाठकीय प्रतिक्रिया

भाई गुणशेखर,

पिछले दिनों पारिवारिक व्यस्तता के चलते पत्रिका का अंक 'उचित ' रूप से देख- पढ़ पाया वैसे भी मुझ जैसे पुरानी पीढ़ी लेखक के लिए पत्रिका को हाथ में पकडकर पढ़ना अधिक आत्मीय सुविधात्मक होता है। सर्वप्रथम आपकी सोच एवं श्रम को सलाम करता हूँ। सम्पादकीय पत्रिका की दिशा दृष्टि एवं आवश्य्कता को सही रूप में बयान करती हैं। मुझे आपका सम्पादकीय किसी रचना से कम नहीं लगा। आपकी प्रखर भाषा एवं सोच ने अनेक विसंगतिओं पर प्रखर व्यंग्य किये हैं। साम्प्रदायिकता एवं प्रगतिशीलता पर अपने स्पष्टता से अभिव्यक्त किया है। आपने सही लिखा है -- प्रगतिशीलता बहाने स्वार्थ सिद्धि और बौद्धिक...... जीवन दर्शन बनाने की ज़रुरत है।
संपादन करते हुए मेरी भी बिवाई फटी हुई है इसलिए आपका दर्द समझ सकता हूँ |
एक बार पुनः बधाई। सप्रेम

प्रेम जन्मेजय
संपादक,व्यंग्य यात्रा

प्रिय राहुल देव,

अपने ई मेल पर तुम्हारी भेजी हुई त्रैमासिक पत्रिका 'इंदु संचेतना' पढ़ी | सबसे पहले तो चीन के एक विश्वविद्यालय से निकलने वाली इस साहित्यिक पत्रिका के उप सम्पादक चुने जाने पर मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार हो |

पत्रिका का आवरण पृष्ठ आकर्षक है, रंगों का संयोजन प्रभावक है | कविताएँ, लगभग सभी, सार्थक और सुन्दर है, सिवाय वंदना ग्रोवर की पहली कविता 'हिंसा' जो ek साधारण और इकहरी कविता है |ब्रजेश नीरज का लेख 'समकालीन कविता के सरोकार' इस अंक का सर्वाधिक सार्थक लेख है | अंक की उपलब्धि |

पृष्ठों की खाली जगहों को तुमने जिन उद्धरणों से सजाया है वे तुम्हारी चयन प्रतिभा के अच्छे प्रमाण हैं |

पत्रिका में आपलोगों ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं को प्रतिनिधित्व देकर उसे एक बहुयामी स्वरुप दिया है | अंत में 2015 में प्रकाशित कुछ चुनिंदा पुस्तकों पर एक संछिप्त समीक्षात्मक टिपण्णी देकर तुमने पत्रिका को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है |कहानियां और उपन्यास अंश अभी मैं पढ़ नहीं पाता हूँ- इसलिए उनपर कोई टिपण्णी नहीं |
कुल मिलकर इंदु संचेतना हिंदी की एक सर्वथा पठनीय, उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका बन गयी है - बधाइयां, बहुत बहुत |

सस्नेह,
रणजीत

एक पाठक की टिप्पणी

बहुत बहुत आभार आपका ..... अभी पढ़ना शुरू किया है और संपादकीय के बेबाकीपन ने मन मोह लिया ..... इस तरह का वक्तव्य देने का साहस आज शायद किसी साहित्यकार में नहीं है .... कम से कम मैंने तो नहीं देखा , सुना ...... छद्म प्रगतिशीलता के स्वभारित बोझ से दबे आज के साहित्यकारों के लिए यह आईना दिखाने जैसा है । सच्चाई को जितने साहस से संपादक जी ने अपने संपादकीय में रखा है मैं इसके लिए उनका कोटि कोटि अभिनंदन करता हूँ ...... आगे जब पूरा पढ़ लूँगा ....

आपका
नीरज कुमार नीर ,रांची

हलचल



भारत के महामहीम राष्ट्रपतिजी चीन आगमन पर अपने व्यस्ततम समय से कुछ क्षण निकाल कर रात्रिभोज पर आमंत्रित कुछ चुने हुए लोगों के साथ अपना समय बिताए | इस अवसर पर पत्रिका के मुख्य सम्पादक डॉ०। गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर' के साथ अन्य गणमान्य व्यक्ति भी यादगार पल के फोटो शूट में शामिल हुए |

उसी अवसर पर 'इंदु संचेतना। के अंक की प्रतियां भी वितरित की गई | चित्र में उपस्थित व्यक्तियों का पत्रिका के साथ संपर्क देखकर ही लगता है कि सही मायने में ये लोग ही हिंदी के कद्रदान हैं, इन जैसे रण- बांकुरों की वजह से ही हिंदी विदेशों में भी अपनी पहचान बनाए हुए है |



भारतीयों के आगमण की 171 वीं वर्षगाँठ का आयोजन



त्रिनिदाद एवं टोबेगो में भारतीयों के आगमण का 171वी वर्षगांठ मनाई गई । आज से 171 वर्ष पूर्व 30 मई को भारतीयों को यहां गन्ने की खेती करने के लिए लाया गया था । इसलिए प्रत्येक वर्ष 30 मई को इण्डियन अराईवल डे मनाया जाता है और इस दिन त्रिनिदाद एवं टोबैगो में राष्ट्रीय अवकाश रहता है । पूरे मई महीने में जगह - जगह पर इण्डियन अराईवल डे पर कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं । महात्मा गांधी सांस्कृतिक सहयोग संस्थान एवं भारतीय उच्चायोग द्वारा पूर्ण सहयोग दिया जाता है ।इस अवसर पर दिनांक 28 मई 2016 को महात्मा गांधी सांस्कृतिक सहयोग संस्थान एवं भारतीय उच्चायोग तथा चगुवॉन्स चैम्बर फॉर इंडिस्ट्री एंड कॉमर्स द्वारा इण्डियन अराईवल डे का आयोजन किया गया है । इस अवसर पर महात्मा गांधी सांस्कृतिक सहयोग संस्थान के विद्यार्थियों द्वारा भारतीय संगीत एवं नृत्य के कार्यक्रम आयोजित किए गए । इसके अलावा महात्मा गांधी सांस्कृतिक सहयोग संस्थान द्वारा फैशन शो का भी आयोजन किया गया)

पुरस्कार एवं सम्मान

असम में आयोजित 12 वें अंतराष्ट्रीय हिंदी सम्मलेन में (संयोजक जय प्रकाश मानस) हमारे समय के महत्वपूर्ण उपन्यासकार सुधाकर अदीब को उनके ऐतिहासिक उपन्यास"रंग रांची' पर प्रथम सत्या कुंद्रा पुरस्कार से डॉ० शरद पगारे एवं अन्य विद्वानों द्वारा सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार मैंने अपनी पूजनीय माता जी की स्मृति में आरम्भ किया है। सुधाकर अदीब का आभार कि उन्होंने यह पुरस्कार स्वीकार किया। मीरा पर आधारित उपन्यास "रंग रांची' पर्याप्त चर्चित एवं प्रशंसित हो चुका है।



– इस अंक के लेखकों के पते -

डॉ०0 राजेश श्रीवास्तव, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, बी-16, लेक पर्ल रेसीडेंसी, ई-8,अरेरा कालोनी, भोपाल (म0प्र0) भारत मो0- +91-9827303165 urvashibhopal@gmail|com

गिरीश पंकज,संपादक,सद्भावना दर्पण-कार्यालय -28 प्रथम तल, एकात्म परिसर, रजबंधा मैदान रायपुर|छत्तीसगढ़|(भारत)492001मोबाइल* +91-9425212720निवास-सेक्टर-3,एचआईजी-2, घर नंबर-2, दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर- 492010 1-**

सूर्य प्रकाश,मोबाइल- +91-9930991424,**ईमेल -** mail@surajprakash.com, वेबसाइट: **www.surajprakash.com**

आशीष गोरे, 80 Modern Villa,555 Gao Jin Road, Qingpu,Shanghai-201702- email: ashishgore@outlook.com

गीता पंडित(सम्पादक शलभ प्रकाशन दिल्ली),gieetika1@gmail.com,मो.+91-9810534442

बिजय कुमार रबिदास, संपर्क -16 वेस्ट कापते पाड़ा रोड,पोस्ट -आतपुर , जिला - उत्तर 24 परगना,पश्चिम बंगाल(भारत),पिन - 743128,मोबाइल -8100157970,
ई -मेल -bijaypresi@rediffmail.com

सुशील कुमार शैली,सम्प्रति- प्राध्यापक , एस.डी. कॉलेज ,बरनाला,पता - एस. डी कॉलेज, बरनाला हिन्दी विभाग, के. सी रोड़ ,बरनाला (पंजाब)(भारत) 148101, मो - +91-9914418289 ई.मेल- shellynabha01@gmail.com

मोनिका शर्मा - monikasharma.writing@gmail.com

शेखर सावंत,ई-मेल - shekharjeesahityakar@gmail.com,मोबाईल - +91-9835263144

पंकज कुमार शाह,उत्तम भवन के पास,नागडीह, रसिकपुर ,दुमका -814101 (झारखंड)(भारत)
ईमेल- pankajkrsah1987@gmail.com ,**मो.-+91-9835930691**

डॉ०.मोहसिन ख़ान,हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक,जे.एस.एम.महाविद्यालय,अलीबाग-402201,ज़िला-रायगढ़- (महाराष्ट्र)(भारत)- मोबाइल - +91-9860657970 **ई-मेल-** khanhind01@gmail.com

बलराम अग्रवाल, ईमेल- 2611ableram@gmail.com

सुशांत सुप्रिय, A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद- 201014(उ.प्र)(भारत) मो: +91-8512070086

राजेन्द्र वर्मा, 3/29 विकास नगर, लखनऊ 226 022 (भारत)(मो.+91-80096 60096)

डॉ० सुधेश,३१४ सरल अपार्टमैन्ट्स, द्वारिका , सैक्टर १०,दिल्ली १००७५(भारत),फ़ोन+91-9350974120

सपना मांगलिक,F-659 Agra (up)(भारत)- 282005 मो.+91-9548509508 email-sapna8manglik@gmail.com

रमेश उपाध्याय,107, साक्षरा अपार्टमेंट्स,ए-3, पश्चिम विहार,नयी दिल्ली-110063 ,Email : rameshupadhyaya@yahoo.co.in

मीता दास , 63 / 4 नेहरू नगर पश्चिम ,भिलाई नगर , छत्तीसगढ़. 49 00 20 ईमेल -- mita.dasroy@gmail.com

मोबाईल -- 08871649748 , 0758776261 , 09329509050

अनिल आजाद पाण्डेय - स्थानीय पता- 16 ए, शचिंगशान रोड बीजिंग, चीन ,स्थायी पता- अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत,Mobile number- 0086-15210675582,Email- anilpande2@yahoo.in

रितु दूबे -331/16B, बिलार्ड पब्लिक स्कूल के पीछे, वसुंधरा सेक्टर 16, गाजियाबाद(उत्तर प्रदेश)(भारत), मोबाइल --+91-9650450604E-mail: ritudby@yahoo.co.in

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव ,असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, ए.पी.एस.पी.जी.कॉलेज बस्ती (उ०प्र०)(भारत)

जहीर कुरव्शी- 108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने, गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ, भोपाल462001 (म.प्र.)(भारत)मो. +91-9425790565 फोनः +91-7552740081, Email- poetzaheerqureshi@gmail.com

श्याम बाबू शर्मा-वरिष्ठ अनुवादक, पूर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर-273012(भारत)मो.नं. +91-9794840674

डॉ०. एम.एल. गुप्ता 'आदित्य',निदेशक,'वैश्विक हिंदी सम्मेलन', मुंबई, **vaishwikhindisammelan@gmail.com वेबसाइट- www.vhindi.in/वेबसाइट** :वैश्विकहिंदी. भारत

एस आर हरनोट] vke Hkou] ekjy cd bLVV] fuxe fogkj] f'keyk&171002(भारत) ek0% +91-9816566611] +91-9418000224

परितोष कुमार 'पीयूष', मुहल्ला- मुंगरौड़ा, पोस्ट- जमालपुर,जिला- मुंगेर(बिहार)(भारत),मो०- +91-7310941575, +91-7870786842/ईमेल- piyuparitosh@gmail.com

आशीष गोरे,Vice President,Regional Business Unit Brake Components: Asia Pacific Automotive Aftermarket (AA-BC/RBU-AP),Bosch Trading (Shanghai) Co. Ltd,333, Fuquan Road North, IBP Changning District,Shanghai 200335 , Peoples Republic of China,Tel.: +86 21 2218 8944,Fax: +86 21 2218 2385